-ले पर पाँव रखते डरती थी। भोग और विलास को वह जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु समझती थी और उसे हृदय से लगाये रहना चाहती थी। अमरकान्त को वह घर के काम-काज की ओर खींचने का प्रयास करती रहती थी। कभी समझाती थी, कभी रूठती थी, कभी बिगडती थी। सास के न रहने से वह एक प्रकार से घर की स्वामिनी हो गई थी। बाहर के स्वामी लाला समरकान्त थे; पर भीतर का सचालन सुखदा ही के हाथो मे था। किन्तु अमरकान्त उसकी बातों को हँसी में टाल देता। उस पर अपना प्रभाव डालने की कभी चेष्टा न करता। उसकी विलासप्रियता मानो खेतों के हौए की भाँति उसे डराती रहती थी। खेत में हरियाली थी, दाने थे, लेकिन वह हौआ निश्चल भाव से दोनो हाथ फैलाये खडा उसकी ओर घूरता रहता था। अपनी आशा और दुराशा, हार और जीत को वह सुखदा से बुराई की भाँति छिपाता था। कभी कभी उसे घर लौटने में देर हो जाती, तो सुखदा व्यंग करने से बाज़ न आती थी—हाँ, यहाँ कौन अपना बैठा हुआ है। बाहर के मजे घर में कहाँ! और यह तिरस्कार, किसान की 'कडे-कडे' की भाँति हौए के भय को और भी उत्तेजित कर देती थी। वह उसकी खुशामद करता, अपने सिद्धान्तों को लम्बी-से लम्बी रस्सी देता, पर सुखदा इसे उसकी दुर्बलता समझकर ठुकरा देती थी वह पति को दया-भाव से देखती थी, उसकी त्यागमय प्रवृत्ति का अनादर न करती थी; पर इसका तथ्य न समझ सकती थी। वह अगर उससे सहानुभूति की भिक्षा माँगता, उसके सहयोग के लिए हाथ फैलाता, तो शायद वह उसकी उपेक्षा न करती। अपनी मुट्ठी बन्द करके, अपनी मिठाई आप खाकर, वह उसे रुला देता था। वह भी अपनी मुट्ठी बन्द कर लेती थी और अपनी मिठाई आ[illegible] [illegible] थी। दोनो आपस मे हँसते-बोलते थे, साहित्य और इतिहास की चर्चा कर[illegible] [illegible], लेकिन जीवन के गूढ व्यापारो में पृथक् थे। दूध और पानी का मेल नहीं [illegible] और पानी का मेल था, जो एक क्षण के लिए मिलकर पृथक् हो जाता था

अमर ने इस शिकायत की कोमलता या तो समझी नहीं, या समझकर उस[illegible] [illegible] ने [illegible] सका। लालाजी ने जो आघात किया था, अभी उसकी आत्मा उस[illegible] [illegible] रही थी। बोला—मैं भी यही उचित समझता हूँ। अब मुझे

सुखदा ने खीझकर कहा—हाँ, ज्यादा पढ लेने से सुनती हूँ, आदमी ... हो जाता है।

अमर ने लडने के लिए यहाँ भी आस्तीनें चढा लीं—तुम यह आक्षेप व्यर्थ कर रही हो। पढने से मैं जी नहीं चुराता, लेकिन इस दशा में मेरा पढना नहीं हो सकता। आज स्कूल में मुझे जितना लज्जित होना पडा, वह मैं ही जानता हूँ। अपनी आत्मा की हत्या करके पढने से मूर्ख रहना कहीं अच्छा है।

सुखदा ने भी अपने शस्त्र सँभाले। बोली—मैं तो समझती हूँ, कि घडी-दो-घडी दूकान पर बैठकर भी आदमी बहुत कुछ पढ सकता है। चरखे और जलसों में जो समय देते हो, वह दूकान पर दो, तो कोई बुराई न होगी। फिर, जब तुम किसी से कुछ कहोगे नहीं, तो कोई तुम्हारे दिल की बातें कैसे समझ लेगा। मेरे पास इस वक्त भी एक हज़ार रुपये से कम नहीं। वह मेरे रुपए हैं, मैं उन्हें उड़ा सकती हूँ। तुमने मुझसे चर्चा तक न की। मैं बुरी सही, तुम्हारी दुश्मन नहीं। आज लालाजी की बातें सुनकर मेरा रक्त खौल रहा था। ४०) के लिए इतना हंगामा! तुम्हें जितनी जरूरत हो मुझसे लो, मुझसे लेते तुम्हारे आत्म-सम्मान को चोट लगती हो, तो अम्माँ से लो। वह अपने को धन्य समझेंगी। उन्हें इसका अरमान ही रह गया कि तुम उनसे कुछ माँगते। मैं तो कहती हूँ, मुझे लेकर लखनऊ चले चलो और निश्चिन्त होकर पढो। अम्माँ तुम्हें ईंगलैंड भेज देंगी। वहाँ से अच्छी डिग्री ला सकते हो।

सुखदा ने निष्कपट भाव से यह प्रस्ताव किया था। शायद पहली बार उसने पति से अपने दिल की बात कही; पर अमरकान्त को बुरा लगा। बोला—मुझे डिग्री इतनी प्यारी नहीं है, कि उसके लिए ससुराल की रोटियाँ तोड़ूँ, अगर मैं अपने परिश्रम से धनोपार्जन करके पढ सकूँगा, तो पढूँगा, नहीं कोई धन्धा देखूँगा। मैं अब तक व्यर्थ ही शिक्षा के मोह में पड़ा हुआ था। कॉलेज के बाहर भी अध्ययनशील आदमी बहुत-कुछ सीख सकता है। मैं अभिमान नहीं करता, लेकिन साहित्य और इतिहास की जितनी पुस्तकें ... दो-तीन सालो में मैंने पढी है, शायद ही मेरे कालेज में किसी ने पढी ...

सुखदा ने इस अप्रिय विषय का अन्त करने के लिए कहा— ... तो कर लो। आज तो तुम्हारी मीटिंग है। नौ बजे के पहले ... हुआ

सी। मैं तो टॉकी मे जाऊँगी। अगर तुम ले चलो, तो मैं तुम्हारे सा
मिलने को तैयार हूँ।

अमर ने रूखेपन से कहा—मुझे टॉकी मे जाने की फुरसत नही है। तु
जा सकती हो।

'फिल्मो से भी बहुत-कुछ लाभ उठाया जा सकता है।'

'तो मैं तुम्हे मना तो नही करता।'

'तुम क्यो नहीं चलते?'

'जो आदमी कुछ उपार्जन न करता हो, उसे सिनेमा देखने का कोई अधिक
नहीं। मैं उसी सम्पत्ति को अपनी समझता हूँ, जिसे मैंने अपने परिश्रम
कमाया हो।'

कई मिनट तक दोनों गुम बैठे रहे। जब अमर जलपान करके उठा,
सुखदा ने सप्रेम आग्रह से कहा—कल से सन्ध्या समय दूकान पर बैठा करो
कठिनाइयो पर विजय पाना पुरुषार्थी मनुष्यो का काम है अवश्य, मगर कठि
नाइयो की सृष्टि करना, अनायास पाँव में काँटे चुभाना कोई बुद्धिमानी नही है

अमरकान्त इस आदेश का आशय समझ गया, पर कुछ बोला नहीं
विलासिनी संकटों से कितना डरती है! यह चाहती है, मै भी गरीबो का ख
चूसूँ, उनका गला काटूँ; यह मुझसे न होगा।

सुखदा उसके दृष्टिकोण का समर्थन करके कदाचित् उसे जीत सकती थी
उधर से हटाने की चेष्टा करके वह उसके संकल्प को और भी दृढ कर रही थी
अमरकान्त उससे सहानुभूति करके अपने अनुकूल बना सकता था; पर उ
त्याग का रूप दिखाकर उसे भयभीत कर रहा था।

——





मरकान्त मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में प्रान्त में सर्वप्रथम आया; पर अवस्था अधिक होने के कारण छात्रवृत्ति न पा सका। इससे उसे निराशा की जगह एक तरह का सन्तोष हुआ। क्योंकि वह अपने मनोविकारों को कोई टिकौना न देना चाहता था। उसने कई बडी-बडी कोठियो मे पत्र-व्यवहार करने का काम उठा लिया। धनी पिता का पुत्र था, यह काम उसे आसानी से मिल गया। लाला समरकान्त की व्यवसायनीति से प्राय: उनकी बिरादरीवाले जलते थे और पिता-पुत्र के इस वैमनस्य का तमाशा देखना चाहते थे। लालाजी पहले तो बहुत बिगड़े। उनका पुत्र उन्ही के सहवर्गियो की सेवा करे? यह उन्हें अपमानजनक जान पडा; पर अमर ने उन्हे सुझाया, कि वह यह काम केवल व्यावसायिक ज्ञानोपार्जन के भाव से कर रहा है। लालाजी ने भी समझा, कुछ-न-कुछ सीख ही जायगा। विरोध करना छोड दिया। सुखदा इतनी आसानी से माननेवाली न थी। एक दिन दोनों में इसी बात पर झौड हो गई।

सुखदा ने कहा—तुम दस-दस पाँच-पाँच रुपए के लिए दूसरों की खुशामद करते फिरते हो, तुम्हें शर्म भी नही आती!

अमर ने शान्ति-पूर्वक कहा—काम करके कुछ उपार्जन करना शर्म की बात नहीं। दूसरों का मुँह ताकना शर्म की बात है।

'तो ये धनियों के जितने लडके हैं, सभी बेशर्म हैं?'

'हैं ही, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। अब तो लालाजी मुझे खुशी से भी रुपए दें, तो न लूँ। जब तक अपनी सामर्थ्य का ज्ञान न था, तब तक उन्हें कष्ट देता था। जब मालूम हो गया, कि मैं अपने खर्च भर को कमा सकता हूँ, तो किसी के सामने हाथ क्यों फैलाऊँ?'

सुखदा ने निर्दयता के साथ कहा—तो जब तुम अपने पिता से कुछ अपमान की बात समझते हो, मैं क्यों उनकी आश्रित बनकर रहूँ? इसका

तो यही हो सकता है, कि मैं भी किसी पाठशाला में नौकरी करूँ या सीने-पिरो
का धंधा उठाऊँ।

अमरकान्त ने सकट मे पडकर कहा—तुम्हारे लिए इसकी ज़रूरत नहीं।

'क्यो ? मैं खाती-पहनती हूँ, गहने बनवाती हूँ, पुस्तके लेती हूँ, पत्रिका
मँगवाती हूँ, दूसरों ही की कमाई पर तो ? इसका तो यह आशय भी हो सकता
है, कि मुझे तुम्हारी कमाई पर भी कोई अधिकार नही। मुझे ख़ुद परिश्रम कर
कमाना चाहिये।'

अमरकान्त को संकट से निकलने की एक युक्ति सूझ गई—अगर दादा,
या तुम्हारी अम्माँजी तुमसे चिढे और मैं भी ताने दूँ, तब निस्सन्देह तुम्हें ख़ुद
धन कमाने की जरूरत पडेगी।

'कोई मुँह से न कहे, पर मन मे तो समझ सकता है। अब तक तो मैं सम
झती थी, तुम पर मेरा अधिकार है। तुमसे जितना चाहूँगी, लडकर ले लूँगी
लेकिन अब मालूम हुआ, मेरा कोई अधिकार नही। तुम जब चाहो, मुझे जवाब
दे सकते हो। यही बात है या कुछ और ?'

अमरकान्त ने हारकर कहा—तो तुम मुझे क्या करने को कहती हो ? दादा
से हर महीने रुपए के लिए लड़ता रहूँ ?

सुखदा बोली—हाँ, मैं यही चाहती हूँ। यह दूसरो की चाकरी छोड दो
और घर का धन्धा देखो। जितना समय उधर देते हो, उतना ही समय घर के
कामो में दो।

'मुझे इस लेन-देन, सूद-ब्याज से घृणा है।'

सुखदा मुसकराकर बोली—यह तो तुम्हारा अच्छा तर्क है। मरीज़ को छोड़
दो, वह आप-ही-आप अच्छा हो जायगा। इस तरह मरीज़ मर जायगा, अच्छा न
होगा। तुम दूकान पर जितनी देर बैठोगे, कम-से-कम उतनी देर तो यह घृणित
व्यापार न होने दोगे। यह भी तो सम्भव है, कि तुम्हारा अनुराग देखकर सारा काम
तुम्हीं को सौंप दें। तब तुम अपनी इच्छानुसार इसे चलाना। अगर अभी इतना
... नहीं लेना चाहते तो न लो, लेकिन लालाजी की मनोवृत्ति पर तो कुछ
... प्रभाव डाल ही सकते हो। वह वही कर रहे हैं, जो अपने-अपने ढंग
... रहा है। तुम विरक्त होकर उनके विचार और नीति

नहीं बदल सकते । और अगर तुम अपना ही राग अलापोगे, तो मैं कहे देती हूँ, मै अपने घर चली जाऊँगी । तुम जिस तरह जीवन व्यतीत करना चाहते हो, वह मेरे मन की बात नही । तुम बचपन से ठुकराये गये हो और कष्ट सहने मे अभ्यस्त हो । मेरे लिए यह नया अनुभव है ।

अमरकान्त परास्त हो गया । इसके कई दिन बाद उसे कई जवाब सूझे पर इस वक्त कुछ जवाब न दे सका । नहीं, उसे सुखदा की बाते न्याय-संगत मालूम हुई । अभी तक उसकी स्वतन्त्र कल्पना का आधार पिता की कृपणता थी । उसका अंकुर विमाता की निर्ममता ने जमाया था । तर्क या सिद्धान्त पर उसका आधार न था , और वह दिन तो अभी दूर, बहुत दूर था, जब उसके चित्त की वृत्ति ही बदल जाय । उसने निश्चय किया— पत्र-व्यवहार का काम छोड दूँगा । दूकान पर बैठने में भी उसकी आपत्ति उतनी तीव्र न रही । हाँ अपनी शिक्षा का ख़र्च वह पिता से लेने पर किसी तरह अपने मन को न दबा सका । इसके लिए उसे कोई दूसरा गुप्त मार्ग खोजना ही पडेगा । सुखदा से कुछ दिनों के लिए उसकी सन्धि-सी हो गई ।

इसी बीच मे एक और घटना हो गई, जिसने उसकी स्वतन्त्र कल्पना को भी शिथिल कर दिया ।

सुखदा इधर साल भर से मैके न गई थी । विधवा माता बार-बार बुलाती थी, लाला समरकान्त भी चाहते थे, कि दो-एक महीने के लिए हो आवे , पर सुखदा जाने का नाम न लेती थी । अमरकान्त की ओर से वह निश्चिन्त न हो सकती थी । वह ऐसे घोड़े पर सवार थी, जिसे नित्य फेरना लाज़िमी था, दस-पाँच दिन बँधा रहा, तो फिर पुट्ठे पर हाथ ही न रखने देगा । इसीलिए वह अमरकान्त को छोडकर न जाती थी ।

अत को माता ने स्वयं काशी आने का निश्चय किया । उनकी इच्छा अब काशीवास करने की भी हो गई । एक महीने तक अमरकान्त उनके स्वागत की तैयारियो मे लगा रहा । गंगातट पर बड़ी मुशकिल से पसंद का घर मिला, जो न बहुत बडा था, न बहुत छोटा । इसकी सफ़ाई और सुफेदी मे कई दिन लगे गृहस्थी की सैकडो ही चीज़े जमा करनी थीं । उसके नाम सास ने एक हज़ार बीमा भेज दिया था । उसने कतर-ब्योत से उसके आधे ही में सारा प्रबं

दिया था। पाई-पाई का हिसाब लिखा तैयार था। जब सासजी प्रयाग का स्नान करती हुई, माघ में काशी पहुँचीं, तो यहाँ का सुप्रबन्ध देखकर बहुत प्रसन्न हुईं।

अमरकान्त ने बचत के पाँच सौ रुपए उनके सामने रख दिये।

रेणुका देवी ने चकित होकर कहा—क्या पाँच सौ ही में सब कुछ हो गया? मुझे तो विश्वास नहीं आता।

'जी नहीं, ५००) ही ख़र्च हुए।'

'यह तो तुमने इनाम देने का काम किया है। यह बचत के रुपए तुम्हारे हैं।'

अमर ने झेंपते हुए कहा—जब मुझे जरूरत होगी, आपसे माँग लूँगा। अभी तो कोई ऐसी जरूरत नहीं है।

रेणुका देवी रूप और अवस्था से नहीं, विचार और व्यवहार से वृद्धा थीं। दान और व्रत में उनकी आस्था न थी; लेकिन लोकमत की अवहेलना न कर सकती थीं। विधवा का जीवन तप का जीवन है। लोकमत इसके विपरीत कुछ नहीं देख सकता। रेणुका को विवश होकर धर्म का स्वाँग भरना पड़ता था; किन्तु जीवन बिना किसी आधार के तो नहीं रह सकता। भोग-विलास, सैर-तमाशे से आत्मा उसी भाँति सन्तुष्ट नहीं होती, जैसे कोई चटनी और अचार खाकर अपनी क्षुधा को शान्त नहीं कर सकता। जीवन किसी तथ्य पर ही टिक सकता है। रेणुका के जीवन में यह आधार पशु-प्रेम था। वह अपने साथ पशु-पक्षियों का एक चिड़ियाघर लाई थीं। तोते, मैने, बंदर, बिल्ली, गायें, हिरन, मोर, कुत्ते आदि पाल रखे थे और उन्हीं के सुख-दुःख में सम्मिलित होकर जीवन में सार्थकता का अनुभव करती थीं। हर-एक का अलग-अलग नाम था, रहने का अलग-अलग स्थान था, खाने-पीने के अलग अलग बर्तन थे। अन्य रईसों की भाँति उनका पशु-प्रेम नुमायशी, फैशनेबल या मनोरंजक न था। अपने पशु-पक्षियों में उनकी जान बसती थी। वह उनके बच्चों को उसी मातृत्व-भरे स्नेह से खिलाती थीं, मानो अपने नाती-पोते हों। ये पशु भी उनकी बातें, उनके इशारे, कुछ इस तरह समझ जाते थे, कि आश्चर्य होता था।

दूसरे दिन मा-बेटी में बातें होने लगीं।

रेणुका ने कहा—तुझे ससुराल इतनी प्यारी हो गई!

सुखदा लज्जित होकर बोली—क्या करूँ अम्माँ, ऐसी उलझन में पड़

हुई हूँ, कि कुछ सूझता ही नही। बाप-बेटे मे बिलकुल नही बनती। दादाजी चाहते है, वह घर का धन्धा देखे। वह कहते हैं, मुझे इस व्यवसाय से घृणा है। मैं चली जाती, तो न-जाने क्या दशा होती। मुझे बराबर यह खटका लगा रहता है, कि वह देस-विदेस की राह न ले। तुमने मुझे कुएँ मे ढकेल दिया, और क्या कहूँ।

रेणुका चिंतित होकर बोलीं—मैंने तो अपनी समझ में घर-वर दोनो ही देख-भाल कर विवाह किया था; मगर तेरी तक़दीर को क्या करती ? लड़के से तेरी अब पटती है या वही हाल है ?

सुखदा फिर लज्जित हो गई। उसके दोनों कपोल लाल हो गये। सिर झुकाकर बोली—उन्हे अपनी किताबो और सभाओ से छुट्टी ही नही मिलती।

'तेरी जैसी रूपवती एक सीधे-सादे छोकरे को भी न सँभाल सकी ? चाल-चलन का कैसा है ?'

सुखदा जानती थी, अमरकान्त में इस तरह की कोई दुर्वासना नहीं है, पर इस समय वह इस बात को निश्चयात्मक रूप से न कह सकी। उसके नारीत्व पर धब्बा आता था। बोली—मैं किसी के दिल का हाल क्या जानूँ अम्माँ। इतने दिन हो गये, एक दिन भी ऐसा न हुआ होगा, कि कोई चीज़ लाकर देते। जैसे चाहूँ रहूँ, उनसे कोई मतलब ही नही।

रेणुका ने पूछा—तू कभी कुछ पूछती है, कुछ बनाकर खिलाती है, कभी उसके सिर में तेल डालती है ?

सुखदा ने गर्व से कहा—जब वह मेरी बात नही पूछते, तो मुझे क्या गरज़ पडी है! वह बोलते है, तो मै भी बोलती हूँ। मुझसे किसी की गुलामी नही होगी।

रेणुका ने ताडना दी—बेटी, बुरा न मानना, मुझे तो बहुत कुछ तेरा [illegible] दोष दीखता है। तुझे अपने रूप का गर्व है। तू समझती है, वह तेरे [illegible]ह पर मुग्ध होकर तेरे पैरों पर सिर रगडेगा। ऐसे मर्द होते हैं, यह मैं जान[illegible]नने, पर वह प्रेम टिकाऊ नहीं होता। न जाने तू क्यो उससे तनी रह[illegible] पाँच तो वह बडा गरीब और बहुत ही विचारशील मालूम होता है [illegible], अच्छा कहूँ, मुझे उस पर [illegible] आती है। बचपन में तो बेचारे [illegible]रा हुआ

विमाता मिली, वह डाइन। बाप हो गया शत्रु। घर को अपना घर न समझ सका। जो हृदय चिताभार से इतना दबा हुआ हो, उसे पहले स्नेह और सेवा से पोला करने के बाद तभी प्रेम का बीज बोया जा सकता है।

सुखदा चिढ़कर बोली—वह चाहते हैं, मैं उनके साथ तपस्विनी बनकर रहूँ। रूखा-सूखा खाऊँ, मोटा-झोटा पहनूँ और वह घर से अलग होकर मेहनत और मजूरी करें। मुझसे यह न होगा, चाहे सदैव के लिए उनसे नाता ही टूट जाय। वह अपने मन की करेंगे, मेरे आराम-तकलीफ़ की बिलकुल परवाह न करेंगे, तो मैं भी उनका मुँह न जोहूँगी।

रेणुका ने तिरस्कार-भरी चितवनों से देखा और बोली—और अगर आज लाला समरकान्त का दीवाला पिट जाय?

सुखदा ने इस संभावना की कभी कल्पना ही न की थी।

विमूढ़ होकर बोली—दीवाला क्यों पिटने लगा?

'ऐसा संभव तो है।'

सुखदा ने मा की सपत्ति का आश्रय न लिया। वह न कह सकी 'तुम्हारे पास जो कुछ है, वह भी तो मेरा ही है।' आत्मसम्मान ने उसे ऐसा न कहने दिया। मा के इस निर्दय प्रश्न पर झुँझलाकर बोली—जब मौत आती है, तो आदमी मर जाता है। जान-बूझकर आग में नहीं कूदा जाता।

बातों-बातों में माता को ज्ञात हो गया कि उनकी संपत्ति का वारिस आने वाला है। कन्या के भविष्य के विषय में उसे बड़ी चिन्ता हो गई थी। इस संवाद ने उस चिन्ता का शमन कर दिया।

उसने आनन्द से विह्वल होकर सुखदा को गले लगा लिया।



अमरकान्त ने अपने जीवन में माता के स्नेह का सुख न जाना था। जब उसकी माता का अवसान हुआ, तब वह बहुत छोटा था। उस दूर अतीत की कुछ धुँधली-सी और इसीलिए अत्यन्त मनोहर और सुखद स्मृतियाँ शेष थीं। उसका वेदनामय बाल-रुदन सुनकर जैसे उसकी माता ने रेणुका देवी के रूप मे स्वर्ग से आकर उसे गोद मे उठा लिया। बालक अपना रोना-धोना भूल गया और उस ममता-भरी गोद मे मुँह छिपाकर दैवी सुख लूटने लगा। अमरकान्त नहीं-नहीं करता रहता और माता उसे पकडकर उसके आगे मेवे और मिठाइयाँ रख देती। उससे इनकार न करते बनता। वह देखता, माता उसके लिए कभी कुछ पका रही है, कभी कुछ , और उसे खिलाकर कितनी प्रसन्न होती है, तो उसके हृदय मे श्रद्धा की एक लहर-सी उठने लगती। वह कालेज से लौटकर सीधे रेणुका के पास जाता। वहाँ उसके लिए जलपान रखे रेणुका उसकी बाट जोहती रहती। प्रातः का नाश्ता भी वह वहीं करता। इस मातृ-स्नेह से उसे तृप्ति ही न होती थी। छुट्टियो के दिन वह प्राय दिन भर रेणुका ही के यहाँ रहता। उसके साथ कभी-कभी नैना भी चली जाती। वह ख़ासकर पशु-पक्षियों की क्रीडा देखने जाती थी।

अमरकान्त के कोष में स्नेह आया, तो उसकी वह कृपणता जाती रही। सुखदा उसके समीप आने लगी। उसकी विलासिता से अब उसे उतना भय न रहा। रेणुका के साथ उसे लेकर वह सैर-तमाशे के लिए भी जाने लगा। रेणुका दसवें-पाँचवे उसे दस-बीस रुपए ज़रूर दे देती। उसके सप्रेम आग्रह के सामने अमरकान्त की एक न चलती। उसके लिए नये-नये सूट बने, नये-नये जूते आये, मोटर-साइकिल आई, सजावट के सामान आये। पाँच ही छ महीने में वह विलासिता का द्रोही, वह सरल जीवन का उपासक, अच्छा ख़ासा रईसज़ादा बन बैठा, रईसज़ादो के भावो और विचारो से भरा हुआ

उतना ही निर्द्वन्द्व और स्वार्थी। उसकी जेब में दस-बीस रुपए हमेशा रहते, खुद खाता, मित्रों को खिलाता और एक की जगह दो ख़र्च . वह अध्ययन-शीलता जाती रही। ताश और चौसर में ज्यादा आनन्द . हाँ जलसों मे उसे अब और अधिक उत्साह हो गया। वहाँ उसे कीर्ति का अवसर मिलता था। बोलने की शक्ति उसमें पहले भी बुरी न. अभ्यास से और भी परिमार्जित हो गई। दैनिक समाचार और . साहित्य से भी उसे रुचि थी, विशेषकर इसलिए कि रेणुका रोज़-रोज की उससे पढ़वाकर सुनती थीं।

दैनिक समाचार-पत्रों के पढ़ने से अमरकान्त के राजनैतिक ज्ञान का होने लगा। देशवासियों के साथ शासक-मण्डल की कोई अनीति . उसका खून खौल उठता था। जो संस्थाये राष्ट्रीय उत्थान के लिए उद्योग रही थीं, उनसे उसे सहानुभूति हो गई। वह अपने नगर की कांग्रेस- का मेम्बर बन गया और उसके कार्य-क्रम मे भाग लेने लगा।

एक दिन कालेज के कुछ छात्र देहातों की आर्थिक दशा की जाँच करने निकले। सलीम और अमर भी चले। अध्यापक डा० ...न्तकु उनके नेता बनाये गये। कई गाँवों की परताल करने के बाद मंडली . समय लौटने लगी तो अमर ने कहा—मैंने कभी अनुमान न किया था हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशाजनक है।

सलीम बोला—तालाब के किनारे वह जो चार-पाँच घर मल्लाहों के उनमें तो लोहे के दो-एक बरतनों के सिवा कुछ था ही नहीं। मैं समझ था, देहातियों के पास अनाज की बखारें भरी होंगी; लेकिन यहाँ तो कि घर में अनाज के मटके तक न थे।

शान्तिकुमार बोले—सभी किसान इतने गरीब नहीं होते। बड़े किसा के घर मे बखारें भी होती हैं; लेकिन ऐसे किसान गाँव में दो-चार से ज्या नहीं होते।

अमरकान्त ने विरोध किया—मुझे तो इन गाँवों में एक भी ऐसा कि न मिला। और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चूसते हैं! मैं तु हूँ, उन लोगों को इन बेचारों पर दया भी नहीं आती।

शान्तिकुमार ने मुसकराकर कहा—दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा और यह दोनो हलके पड़े। अब तो न्याय-परीक्षा का युग है।

शान्तिकुमार की अवस्था कोई ३५ की थी। गोरे-चिट्टे, रूपवान् आदमी। वेश-भूषा अँग्रेज़ी थी, और पहली नज़र मे अँग्रेज़ ही मालूम होते थे; ंकि उनकी आँखे नीली थीं और बाल भी भूरे थे। ऑक्सफ़ोर्ड से डाक्टर उपाधि प्राप्त कर लाये थे। विवाह के कट्टर विरोधी, स्वतन्त्र प्रेम के कट्टर क, बहुत ही प्रसन्न-मुख, सहृदय, सेवाशील व्यक्ति थे। मजाक़ का कोई वसर पाकर न चूकते थे। छात्रो से मित्र-भाव रखते थे। राजनैतिक न्दोलनो मे ख़ूब भाग लेते, पर गुप्त रूप से। खुले मैदान मे न आते। , सामाजिक क्षेत्र मे ख़ूब गरजते थे।

अमरकान्त ने करुण स्वर में कहा—मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं लती, जो ६ महीने से बीमार पडा था और एक पैसे की भी दवा न ली थी। स दशा मे ज़मींदार ने लगान की डिग्री करा ली और जो कुछ घर मे था ोलाम करा लिया। बैल तक बिकवा लिये। ऐसे अन्यायी संसार की नयन्ता कोई चेतन शक्ति है, मुझे तो इसमे सन्देह हो रहा है। तुमने देखा हीं सलीम, ग़रीब के बदन पर चिथडे तक न थे। उसकी वृद्धा माता कितना ूट-फूटकर रोती थी।

सलीम की आँखो मे आँसू थे। बोला—तुमने रुपये दिये, तो बुढिया ैसी तुम्हारे पैरो पर गिर पडी। मै तो अलग मुँह फेरकर रो रहा था।

मण्डली यो ही बात-चीत करती चली जाती थी। अब पक्की सडक मिल गई थी। दोनो तरफ ऊँचे वृक्षों ने मार्ग को अँधेरा कर दिया था। सडक के दाहने-बायें नीचे ऊख, अरहर आदि के खेत खडे थे। थोडी-थोडी दूर पर दो-एक मजूर या राहगीर मिल जाते थे।

सहसा एक वृक्ष के नीचे दस-बारह स्त्री-पुरुष सशङ्कित भाव से दबके हुए दिखाई दिये। सब के-सब सामनेवाले अरहर के खेत की ओर ताकते और आपस में कनफुसकियाँ कर रहे थे। अरहर के खेत की मेड़ पर दो गोरे सैनिक, हाथ मे बेत लिये, अकडे खडे थे। छात्र-मंडली को कुतूहल हुआ। सलीम ने एक [illegible] से पूछा—क्या माजरा है, तुम लोग क्यो जमा हो?

अचानक अरहर के खेत की ओर से किसी औरत का चीत्कार सुनाई पड़ा छात्रवर्ग अपने डण्डे सँभालकर खेत की तरफ़ लपका। परिस्थिति उनक समझ में आ गई थी।

एक गोरे सैनिक ने आँखें निकालकर छड़ी दिखाते हुए कहा—भा जाओ, नहीं हम ठोकर मारेगा!

इतना उसके मुँह से निकलना था, कि डा० शान्तिकुमार ने लपकर उसके मुँह पर घूँसा मारा। सैनिक के मुँह पर घूँसा पड़ा, तिलमिला उठा पर था घूँसेबाज़ी में मँजा हुआ। घूँसे का जवाब जो दिया, तो डाक्ट साहब गिर पड़े। उसी वक़्त सलीम ने अपनी हॉकी स्टिक उस गोरे के सिर प जमाई। चौंधिया गया, ज़मीन पर गिर पड़ा और जैसे मूर्च्छित हो गया दूसरे सैनिक को अमर और एक दूसरे छात्र ने पीटना शुरू कर दिया था; प वह इन दोनों युवकों पर भारी था। सलीम इधर से फ़ुरसत पाकर उस प लपका। एक के मुक़ाबले में तीन हो गये। सलीम की स्टिक ने इस सैनि को भी ज़मीन पर सुला दिया। इतने में अरहर के पौधों को चीरता हुअ तीसरा गोरा आ पहुँचा। डाक्टर शान्तिकुमार सँभलकर उस पर लपके ही थे कि उसने रिवालवर निकालकर दाग दिया। डाक्टर साहब जमीन पर गि पड़े। अब मुआमला नाजुक था। तीनों छात्र डाक्टर साहब को सँभाल लगे। यह भय भी लगा हुआ था, कि वह दूसरी गोली न चला दे। सब के प्राण नहों में समाये हुए थे।

मजूर लोग अभी तक तो तमाशा देख रहे थे। मगर डाक्टर साहब के गिरते देख उनके खून में भी जोश आया। भय की भाँति साहस भी संक्राम होता है। सब-के-सब अपनी लकड़ियाँ सँभालकर गोरे पर दौड़े। गोरे ने रिवालवर दाग़ा पर निशाना ख़ाली गया। इसके पहले कि वह तीसरी गोली चलाये, उस पर डण्डों की वर्षा होने लगी और एक क्षण में वह भी आहत होकर गिर पड़ा।

ग़नीमत यह हुई, कि ज़ख़्म डाक्टर साहब की जाँघ में था। सेवा का काम सभी जानते थे। घाव का खून बन्द किया और पट्टी बाँध दी।

उसी वक्त एक युवती खेत से निकली और मुँह छिपाये, लँगड़ाती, कपड़े सँभालती, एक तरफ चल पड़ी। अबला लज्जावश, किसी से कुछ कहे बिना, सबकी नज़रों से दूर निकल जाना चाहती थी। उसकी जिस अमूल्य वस्तु का अपहरण किया गया था, उसे कौन दिला सकता था! दुष्टों को मार डालो, इससे तुम्हारी न्याय-बुद्धि को सन्तोष होगा, उसकी तो जो चीज़ गई, वह गई। वह अपना दुःख क्यों रोये, क्यों फ़रियाद करे, सारे संसार की सहानुभूति, उसके किस काम की है।

सलीम एक क्षण तक युवती की ओर ताकता रहा। फिर स्टिक सँभालकर उन तीनों को पीटने लगा। ऐसा जान पड़ता था कि उन्मत्त हो गया है।

डाक्टर साहब ने पुकारा—क्या करते हो सलीम? इससे क्या फ़ायदा! यह इन्सानियत के खिलाफ़ है, कि गिरे हुओं पर हाथ उठाया जाय।

सलीम ने दम लेकर कहा—मैं एक शैतान को भी जिन्दा न छोड़ूँगा। मुझे फाँसी हो जाय, कोई गम नहीं। ऐसा सबक देना चाहिए, कि फिर किसी बदमाश को इसकी जुर्रत न हो।

फिर मजूरों की तरफ देखकर बोला—तुम इतने आदमी खड़े ताकते रहे और तुमसे कुछ न हो सका। तुममें इतनी गैरत भी नहीं? अपनी बहू-बेटियों की आबरू की हिफाज़त भी नहीं कर सकते! समझते होगे कौन हमारी बहू-बेटी है। इस देश में जितनी बेटियाँ है, सब तुम्हारी बेटियाँ है; जितनी बहुएँ हैं, सब तुम्हारी बहुएँ है, जितनी माएँ हैं, सब तुम्हारी माएँ हैं। तुम्हारी आँखों के सामने यह अनर्थ हुआ और तुम कायरों की तरह खड़े ताकते रहे! क्यों सब-के-सब जाकर मर नहीं गये!

सहसा उसे ख्याल आ गया, कि मैं आवेश में आकर इन ग़रीबों को फटकार बताने में अनधिकार-चेष्टा कर रहा हूँ। वह चुप हो गया और कुछ लज्जित भी हुआ।

समीप के एक गाँव से बैलगाड़ी मँगाई गई। शान्तिकुमार को लोगों ने उठाकर उस पर लेटा दिया और गाड़ी चलने को हुई, कि डाक्टर साहब ने चौंककर पूछा—और उन तीनों आदमियों को क्या यहीं छोड़ जाओगे?

सलीम ने मस्तक सिकोड़कर कहा—हम उनको लादकर ले जाने के ज़िम्मे-दार नहीं हैं। मेरा तो जी चाहता है, उन्हें खोदकर दफ़न कर दूँ।

आख़िर डाक्टर के बहुत समझाने के बाद सलीम राज़ी हुआ। तीनों गोरे भी गाड़ी पर लादे गये और गाड़ी चली। सब-के-सब मजूर अपराधियों की भाँति सिर झुकाये कुछ दूर तक गाड़ी के पीछे-पीछे चले। डाक्टर ने उनको बहुत धन्यवाद देकर विदा किया। ९ बजते-बजते समीप का रेलवे स्टेशन मिला। इन लोगों ने गोरों को तो वहीं पुलिस के चार्ज में छोड़ दिया और आप डाक्टर साहब के साथ गाड़ी पर बैठकर घर चले।

सलीम और अमर तो ज़रा देर में हँसने-बोलने लगे। इस संग्राम की चर्चा करते उनकी ज़बान न थकती थी। स्टेशन-मास्टर से कहा, गाड़ी में मुसाफ़िरों से कहा, रास्ते में जो मिला उससे कहा। सलीम तो अपने साहस और शौर्य की ख़ूब डींगें मारता था, मानो कोई क़िला जीत आया है और जनता को चाहिए कि उसे मुकुट पहनाये, उसकी गाड़ी खींचे, उसका जुलूस निकाले, किन्तु अमरकान्त चुपचाप डाक्टर साहब के पास बैठा हुआ था। आज के अनुभव ने उसके हृदय पर ऐसी चोट लगाई थी, जो कभी न भरेगी। वह मन ही-मन इस घटना की व्याख्या कर रहा था। इन टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई? यह गोरे सिपाही इंगलैंड की निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका इतना साहस कैसे हुआ? इसीलिए कि भारत पराधीन है। यह लोग जानते हैं, कि यहाँ के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है, वह जो अनर्थ चाहें, करें। कोई चूँ नहीं कर सकता। यह आतंक दूर करना होगा। इस पराधीनता की ज़ंजीर को तोड़ना होगा।

इस ज़ंजीर को तोड़ने के लिए वह तरह-तरह के मंसूबे बाँधने लगा, जिसमें यौवन का उन्माद था, लड़कपन की उग्रता थी और थी कच्ची बुद्धि की बहक।



डा० शान्तिकुमार एक महीने तक अस्पताल मे रहकर अच्छे हो गये। तीनो सैनिको पर क्या बीती; नही कहा जा सकता ; पर अच्छे होते ही पहला काम जो डाक्टर साहब ने किया, वह ताँगे पर बैठकर छावनी में जाना और उन सैनिको की कुशल पूछना था। मालूम हुआ, कि वह तीनो भी कई-कई दिन अस्पताल मे रहे, फिर तबदील कर दिये गये। रेजिमेंट के कप्तान ने डाक्टर साहब से अपने आदमियो के अपराध की क्षमा माँगी और विश्वास दिलाया, कि भविष्य मे सैनिकों पर ज्यादा कडी निगाह रखी जायगी। डाक्टर साहब की इस बीमारी में अमरकान्त ने तन-मन से उनकी सेवा की, केवल भोजन करने और रेणुका से मिलने के लिए घर जाता, बाक़ी सारा दिन और सारी रात उन्हीं की सेवा में व्यतीत करता। रेणुका भी दो-तीन बार डाक्टर साहब को देखने गई।

इधर से फ़ुरसत पाते ही अमरकान्त कांग्रेस के कामो में ज़्यादा उत्साह से शरीक होने लगा। चन्दा देने मे तो उस संस्था में कोई उसकी बराबरी न कर सकता था।

एक बार एक आम जलसे मे वह ऐसी उद्दण्डता से बोला, कि पुलीस के सुपरिटेंडेट ने लाला समरकान्त को बुलाकर लड़के को सँभालने की चेतावनी दे डाली। लालाजी ने वहाँ से लौटकर खुद तो अमरकान्त से कुछ न कहा, सुखदा और रेणुका दोनों से जड़ दिया। अमरकान्त पर अब किसका शासन है, वह ख़ूब समझते थे। इधर बेटे से वह स्नेह करने लगे थे। हर महीने पढाई का ख़र्च देना पड़ता था, तब उसका स्कूल जाना उन्हे ज़हर लगता था, काम में लगाना चाहते थे और उसके काम न करने पर बिगडते थे। अब पढ़ाई का कुछ ख़र्च न देना पडता था ; इसलिए कुछ न बोलते थे ; बल्कि कभी-कभी सन्दूक़ की कुञ्जी न मिलने या उठकर सन्दूक़ खोलने के कष्ट से

बचने के लिए, बेटे से रुपए उधार ले लिया करते। अमरकान्त न माँगते न वह देते।

सुखदा का प्रसवकाल समीप आता जाता था। उसका मुख पीला पड़ गया था, भोजन बहुत कम करती थी और हँसती-बोलती भी बहुत कम थी। वह तरह-तरह के दुःस्वप्न देखती रहती थी, इससे चित्त और भी सशंकित रहता था। रेणुका ने जनन-सम्बन्धी कई पुस्तकें उसको मँगा दी थीं। इन्हें पढ़कर वह और भी चिन्तित रहती थी। शिशु की कल्पना से चित्त में एक गर्वमय उल्लास होता था, पर इसके साथ ही हृदय में कम्पन भी होता था—न जाने क्या होगा।

उस दिन सन्ध्या समय अमरकान्त उसके पास आया, तो वह जली बैठी थी। तीक्ष्ण नेत्रों से देखकर बोली—तुम मुझे थोड़ी-सी संखिया क्यों नहीं दे देते? तुम्हारा गला भी छूट जाय, मैं भी जंजाल से मुक्त हो जाऊँ।

अमर इन दिनों आदर्श पति बना हुआ था। रूप-ज्योति से चमकती हुई सुखदा आँखों को उन्मत्त करती थी; पर मातृत्व के भार से लदी हुई यह पीले मुखवाली रोगिणी उसके हृदय को ज्योति से भर देती थी। वह उसके पास बैठा हुआ उसके रूखे केशों और सूखे हाथों से खेला करता। उसे इस दशा में लाने का अपराधी वह है; इसलिए इस भार को सह्य बनाने के लिए वह सुखदा का मुँह जोहता रहता था। सुखदा उससे कुछ फ़रमाइश करे, यही इन दिनों उसकी सबसे बड़ी कामना थी। वह एक बार स्वर्ग के तारे तोड़ लाने पर भी उतारू हो जाता। बराबर उसे अच्छी-अच्छी किताबें सुनाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता रहता था। शिशु की कल्पना से उसे जितना आनन्द होता था; उससे कहीं अधिक सुखदा के विषय में चिन्ता थी—न जाने क्या होगा। घबड़ाकर भारी स्वर में बोला—ऐसा क्यों कहती हो सुखदा, मुझसे कोई गलती हुई हो, तो बता दो।

सुखदा लेटी हुई थी। तकिये के सहारे टेक लगाकर ...
...गाँव में कहाँ-कहाँ खोंचें देते फिरते हो, इसका इसके सिवा ...है, कि तुम पकड़े जाओ और अपने साथ घर को भी ले ... के लिए बड़े अफ़सर ने ... तुम उनकी ...

ीं, उल्टे और उनके किये-कराये को धूल में मिलाने को तुले बैठे हो। मैं आप ही अपनी जान से मर रही हूँ, उस पर तुम्हारी यह चाल और भी रे डालती है। महीने भर डॉक्टर साहब के पीछे हलकान हुए, उधर से छुट्टी ली, तो यह पचडा ले बैठे। क्यों तुमसे शान्ति-पूर्वक नहीं बैठा जाता ? तुम ने मालिक नहीं हो, कि जिस राह चाहो, जाओ। तुम्हारे पाँव में बेड़ियाँ । क्या अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं ?

अमरकान्त ने अपनी सफाई दी—मैंने तो कोई ऐसी स्पीच नहीं दी, जो ड़ी कही जा सके।

'तो दादा झूठ कहते थे ?'

'इसका तो यह अर्थ है, कि मैं अपना मुँह सी लूँ।'

'हाँ, तुम्हें अपना मुँह सीना पडेगा।'

दोनो एक क्षण भूमि और आकाश की ओर ताकते रहे। तब अमरकान्त परास्त होकर कहा—अच्छी बात है। आज से अपना मुँह सी लूँगा। र तुम्हारे सामने ऐसी शिकायत आवे, तो मेरे कान पकडना।

सुखदा नर्म होकर बोली—तुम नाराज़ होकर तो यह प्रण नहीं कर रहे हो ? तुम्हारी अप्रसन्नता से थर-थर काँपती हूँ। मैं भी जानती हूँ, कि हम लोग ाधीन हैं। पराधीनता मुझे भी उतनी ही अखरती है, जितनी तुम्हें। हमारे वों में तो दोहरी बेडियाँ हैं—समाज की अलग, सरकार की अलग ; लेकिन ागे-पीछे भी तो देखना होता है। देश के साथ हमारा जो धर्म है, वह और वल रूप मे पिता के साथ है, और उससे भी प्रबल रूप में अपनी संतान के थ। पिता को दुःखी और संतान को निस्सहाय छोडकर देशधर्म को पालना सा ही है, जैसे कोई अपने घर में आग लगाकर खुले आकाश में रहे। जिस शु को मैं अपना हृदय रक्त पिला-पिलाकर पाल रही हूँ, उसे मै चाहती तुम भी अपना सर्वस्व समझो। तुम्हारे सारे स्नेह और वात्सल्य और निष्ठा -मात्र उसी को अधिकारी देखना चाहती हूँ।

सिर झुकाये यह उपदेश सुनता रहा। उसकी आत्मा लज्जित धिक्कार रही थी। उसने सुखदा और शिशु दोनो ही के ा है। शिशु का कल्पना-चित्र उसकी आँखो मे खिंच

गया। वह नवनीत सा कोमल उसकी गोद में खेल रहा था। उसकी चेतना इसी कल्पना में मग्न हो गई। दीवार पर शिशु कृष्ण का एक सु चित्र लटक रहा था। उस चित्र में आज उसे जितना मार्मिक आनन्द हु उतना और कभी न हुआ था। उसकी आँखें सजल हो गईं।

सुखदा ने उसे एक पान का बीड़ा देते हुए कहा—अम्माँ कहती हैं, को लेकर मैं लखनऊ चली जाऊँगी। मैंने कहा—अम्माँ तुम्हें बुरा लगे भला, मैं अपना बालक न दूँगी।

अमरकान्त ने उत्सुक होकर पूछा—तो बिगड़ी होंगी?

'नहीं जी, बिगड़ने की क्या बात थी। हाँ, उन्हें कुछ बुरा जरूर ल होगा; लेकिन मैं दिल्लगी में भी अपने सर्वस्व को नहीं छोड़ सकती।'

'दादा ने पुलीस कर्मचारी की बात अम्माँ से भी कही होगी?'

'हाँ, मैं जानती हूँ कही है। जाओ आज अम्माँ तुम्हारी कैसी आ लेती हैं।'

'मैं आज आऊँगा ही नहीं।'

'चलो मैं तुम्हारी वकालत कर दूँगी।'

'मुआफ कीजिये। वहाँ मुझे और भी लज्जित करोगी।'

'नहीं, सच कहती हूँ। अच्छा बताओ, बालक किसको पड़ेगा, मुझे तुम्हें? मैं कहती हूँ तुम्हें पड़ेगा?'

'मैं चाहता हूँ तुम्हें पड़े।'

'यह क्यों? मैं तो चाहती हूँ तुम्हें पड़े।'

'तुम्हें पड़ेगा, तो मैं उसे और ज्यादा चाहूँगा।'

'अच्छा उस स्त्री की कुछ खबर मिली, जिसे गोरों ने सताया था?'

'नहीं, फिर तो कोई खबर न मिली।'

'एक दिन जाकर सब कोई उसका पता क्यों नहीं लगाते, या सलाम दे ही अपने कर्तव्य से मुक्त हो गये?'

अमरकान्त ने झेंपते हुए कहा—कल जाऊँगा।

'ऐसी होशियारी से पता लगाओ कि किसी को कानों-कान खबर न हो अगर घरवालों ने उसका बहिष्कार कर दिया हो, तो उसे लाओ। अम्माँ

उन्हें अपने साथ रखने मे कोई आपत्ति न होगी, और होगी, तो मैं अपने पास रख लूँगी।'

अमरकान्त ने श्रद्धा-पूर्ण नेत्रो से सुखदा को देखा। इसके हृदय में कितनी दया, कितना सेवा-भाव, कितनी निर्भीकता है। इसका आज उसे पहली बार ज्ञान हुआ।

उसने पूछा—तुम्हें उससे ज़रा भी घृणा न होगी?

सुखदा ने सकुचाते हुए कहा—अगर मै कहूँ, न होगी, तो असत्य होगा। होगी अवश्य; पर संस्कारो को मिटाना होगा। उसने कोई अपराध नहीं किया, फिर सज़ा क्यो दी जाय?

अमरकान्त ने देखा सुखदा निर्मल नारीत्व की ज्योति मे नहा उठी है। उसका देवीत्व जैसे प्रस्फुटित होकर उससे आलिङ्गन कर रहा है।





अमरकान्त ने आम जलसों मे बोलना तो दूर रहा, शरीक होना भी छोड दिया, पर उसकी आत्मा इस बन्धन से छटपटाती रहती थी और वह कभी-कभी सामयिक पत्र-पत्रिकाओं मे अपने मनोद्गारो को प्रकट करके संतोष लाभ करता था। अब वह कभी-कभी दुकान पर भी आ बैठता। विशेषकर छुट्टियो के दिन तो वह अधिकतर दुकान पर ही रहता था। उसे अनुभव हो रहा था, कि मानवी-प्रकृति का बहुत कुछ ज्ञान दुकान पर बैठकर प्राप्त किया जा सकता है। सुखदा और रेणुका दोनो के स्नेह और प्रेम ने उसे जकड लिया था। हृदय की जलन जो पहले घरवालों से, और उसके फलस्वरूप, समाज से विद्रोह करने में अपने को सार्थक समझती थी, अब शान्त हो गई थी। रोता हुआ बालक

एक दिन अमरकान्त दुकान पर बैठा था, कि एक आसामी ने पूछा—भैया कहाँ हैं बाबूजी, बड़ा ज़रूरी काम था ?

अमर ने देखा—अधेड़, बलिष्ठ, काला, कठोर आकृति का मनुष्य नाम है काले ख़ाँ। रुखाई से बोला—वह कहीं गये हुए हैं। क्या काम है

'बड़ा ज़रूरी काम था। कुछ कह नहीं गये, कब तक आवेंगे ?'

अमर को शराब की ऐसी दुर्गन्ध आई, कि उसने नाक बन्द कर ली मुँह फेरकर बोला—क्या तुम शराब पीते हो ?

काले ख़ाँ ने हँसकर कहा—शराब किसे मयस्सर होती है लाला, रूखी रोटि तो मिलतीं नहीं। आज एक नातेदारी में गया था, उन लोगों ने पिला दी।

वह और समीप आ गया और अमर के कान के पास मुँह लाकर बोला एक रक़म दिखाने लाया था। कोई दस तोले की होगी। बाज़ार में द सौ से कम की नहीं है, लेकिन मै तुम्हारा पुराना आसामी हूँ। जो दे दोगे, ले लूँगा।

उसने कमर से एक जोड़ सोने के कड़े निकाले और अमर के सामने दिये। अमर ने कड़े को बिना उठाये हुए पूछा—यह कड़े तुमने कहाँ पाये

काले ख़ाँ ने बेहयाई से मुसकराकर कहा—यह न पूछो राजा, अल देनेवाला है।

अमरकान्त ने घृणा का भाव दिखाकर कहा—कहीं से चुरा लाये हो

काले ख़ाँ फिर हँसा—चोरी किसे कहते हैं राजा, यह तो अपनी खेती अल्लाह ने सबके पीछे हीला लगा दिया है। कोई नौकरी करके लाता है, मजूरी करता है, कोई रोज़गार करता है, देता सबको वही ख़ुदा है। तो निकालो रुपए, मुझे देर हो रही है। इन लाल पगड़ीवालों की बड़ी ख़ा करनी पड़ती है भैया, नहीं एक दिन काम न चले।

अमरकान्त को यह व्यापार इतना जघन्य जान पड़ा, कि जी में आया ख़ाँ को दुत्कार दे। लाला समरकान्त ऐसे समाज के शत्रुओं से व्यवहार र हैं, यह ख़्याल करके उसके रोयें खड़े हो गये। उसे उस दुकान से, उस म से, उस वातावरण से, यहाँ तक कि स्वयं अपने आप से घृणा होने ल बोला—मुझे इस चीज़ की ज़रूरत नहीं है, इसे ले जाओ, नहीं मैं पुलीस

इत्तला कर दूँगा। फिर इस दुकान पर ऐसी चीज़ लेकर न आना, कहे देता हूँ।

काले ख़ाँ ज़रा भी विचलित न हुआ, बोला—यह तो तुम बिलकुल नई बात कहते हो भैया। लाला इस नीति पर चलते, तो आज महाजन न होते। हज़ारों रुपए की चीज़ तो मैं ही दे गया हूँगा। अँगनू महाराज, भिखारी, हींगन, सभी से लाला का व्यवहार है। कोई चीज हाथ लगी और आँख बन्द करके यहाँ चले आये, दाम लिया और घर की राह ली। इसी दुकान से बाल-बच्चों का पेट चलता है। काँटा निकालकर तौल लो। दस तोले से कुछ ऊपर ही निकलेगा; मगर यहाँ पुरानी जजमानी है, लाओ डेढ़ सौ ही दे दो, अब कहाँ दौड़ते फिरें।

अमर ने दृढ़ता से कहा—मैंने कह दिया मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।

'पछताओगे लाला, खड़े-खड़े ढाई सौ में बेच लोगे।'

'क्यों सिर खा रहे हो, मैं इसे नहीं लेना चाहता।'

'अच्छा लाओ, सौ ही रुपये दे दो। अल्लाह जानता है, बहुत बल खाना पड़ रहा है, पर एक बार घाटा ही सही।'

'तुम व्यर्थ मुझे दिक कर रहे हो। मैं चोरी का माल न लूँगा, चाहे लाख की चीज़ धेले में मिले। तुम्हे चोरी करते शर्म भी नहीं आती। ईश्वर ने हाथ-पाँव दिये हैं, ख़ासे मोटे-ताज़े आदमी हो, मज़दूरी क्यों नहीं करते! दूसरों का माल उड़ाकर अपनी दुनिया और आक़बत दोनों ख़राब कर रहे हो!'

काले ख़ाँ ने ऐसा मुँह बनाया, मानो ऐसी बकवास बहुत सुन चुका है और बोला—तो तुम्हे नहीं लेना है?

'नहीं'।

'पचास देते हो?'

'एक कौड़ी नहीं।'

काले ख़ाँ ने कड़े उठाकर कमर में रख लिये और दुकान के नीचे उतर गया। पर एक क्षण में फिर लौटकर बोला—अच्छा ३०) ही दे दो। अल्लाह जानता है, पगड़ीवाले आधा ले लेंगे।

अमरकान्त ने उसे धक्का देकर कहा—निकल जा यहाँ से सुअर, मुझे क्यों हैरान कर रहा है !

काले ख़ाँ चला गया, तो अमर ने उस जगह को झाड़ू से साफ कराया और अगर की बत्ती जलाकर रख दी। उसे अभी तक शराब की दुर्गन्ध आ रही थी। आज उसे अपने पिता से जितनी अभक्ति हुई, उतनी कभी न हुई थी। उस घर की वायु तक उसे दूषित लगने लगी। पिता के हथकण्डों से वह कुछ-कुछ परिचित तो था; पर उनका इतना पतन हो गया है, इसका प्रमाण आज ही मिला। उसने मन मे निश्चय किया, आज पिता से इस विषय में खूब अच्छी तरह शास्त्रार्थ करेगा। उसने खड़े होकर अधीर नेत्रों से सड़क की ओर देखा। लालाजी का पता न था। उसके मन मे आया, दुकान बन्द करके चला जाय और जब पिताजी आ जायँ, तो साफ-साफ कह दे, मुझसे यह व्यापार न होगा। वह दुकान बन्द करने ही जा रहा था, कि एक बुढ़िया लाठी टेकती हुई आकर सामने खडी हो गई और बोली—लाला नहीं हैं क्या बेटा ?

बुढिया के बाल सन हो गये थे। देह की हड्डियाँ तक सूख गई थीं। जीवन-यात्रा के उस स्थान पर पहुँच गई थी, जहाँ से उसका आकार मात्र दिखाई देता था, मानो दो-एक क्षण मे वह अदृश्य हो जायगी।

अमरकान्त के जी मे पहले तो आया कि कह दे, लाला नहीं है, वह आवें तब आना, लेकिन बुढिया के पिचके हुए मुख पर ऐसी करुण-याचना, ऐसी शून्य-निराशा छाई हुई थी कि उसे उस पर दया आ गई। बोला—लालाजी से क्या काम है ? वह तो कहीं गये हुए हैं।

बुढिया ने निराश होकर कहा—तो कोई हरज नहीं बेटा, मैं फिर आ जाऊँगी।

अमर ने नम्रता से कहा—अब आते ही होंगे, माता। ऊपर चली आओ।

दुकान की कुरसी ऊँची थी। तीन सीढियाँ चढनी पडती थीं। बुढिया ने पहली पट्टी पर पाँव रखा, पर दूसरा पाँव ऊपर न उठा सकी। पैरों में [illegible] शक्ति न थी। अमर ने नीचे आकर उसका हाथ पकड लिया और उसे सहारा देकर दूकान पर चढा दिया। बुढ़िया ने आशीर्वाद देते हुए

कहा—तुम्हारी बडी उम्र हो बेटा, मै यही डरती हूँ कि लाला देर मे आये और अँधेरा हो गया, तो मै घर कैसे पहुँचूँगी। रात को कुछ नहीं सूझता बेटा।

'तुम्हारा घर कहाँ है माता ?'

बुढिया ने ज्योतिहीन आँखो से उसके मुख की ओर देखकर कहा—गोवर्द्धन की सराय पर रहती हूँ बेटा।

'तुम्हारे और कोई नहीं है ?'

'सब हैं भैया, बेटे है, पोते हैं, बहुएँ है, पोतो की बहुएँ हैं; पर जब अपना कोई नहीं, तो किस काम का। नही लेते मेरी सुध, न सहीं। हैं तो अपने। मर जाऊँगी, तो मिट्टी तो ठिकाने लगा देंगे।'

'तो वह लोग तुम्हे कुछ देते नहीं ?'

बुढ़िया ने स्नेह मिले हुए गर्व से कहा—मै किसी के आसरे-भरोसे नहीं हूँ बेटा, जीते रहे मेरे लाला समरकान्त, वह मेरी परिवरिस करते हैं। तब तो तुम बहुत छोटे थे भैया, जब मेरा सरदार लाला का चपरासी था। इसी कमाई में ख़ुदा ने कुछ ऐसी बरक्कत दी, कि घर-द्वार बना, बाल-बच्चों का ब्याह-गौना हुआ, चार पैसे हाथ मे हुए। थे तो पाँच रुपए के प्यादे, पर कभी किसी से दबे नहीं, किसी के सामने गरदन नहीं झुकाई। जहाँ लाला का पसीना गिरे, वहाँ अपना ख़ून बहाने को तैयार रहते थे। आधी रात, पिछली रात, जब बुलाया, हाज़िर हो गये। थे तो अदना से नौकर, मुदा लाला ने कभी 'तुम' कहकर नहीं पुकारा। बराबर ख़ाँ साहब कहते थे। बडे-बडे सेठिए कहते—ख़ाँ साहब, हम इससे दूनी तलब देंगे, हमारे पास आ जाओ; पर सबको यही जवाब देते, कि जिसके हो गये, उसके हो गये। जब तक वह दुत्कार न देगा, उसका दामन न छोडेंगे। लाला ने भी ऐसा निभाया, कि क्या कोई निभायेगा। उन्हे मरे आज बीसवाँ साल है, वही तलब मुझे देते जाते है। लडके पराये हो गये, पोते बात नहीं पूछते; पर अल्लाह मेरे लाला को सलामत रखे, मुझे किसी के सामने हाथ फैलाने की नौबत नहीं आई।

अमरकान्त ने अपने पिता को स्वार्थी, लोभी, भावहीन समझ रखा था

आज उसे मालूम हुआ, उनमें दया और वात्सल्य भी है। गर्व से उसका हृदय पुलकित हो उठा। बोला—तो तुम्हे पाँच रुपए मिलते हैं ?

'हाँ बेटा, पाँच रुपए महीना देते जाते हैं।'

'तो मैं तुम्हे रुपए दिये देता हूँ, लेती जाओ। लाला शायद देर में आवें।'

वृद्धा ने कानो पर हाथ रखकर कहा—नहीं बेटा, उन्हे आ जाने दो। लठिया टेकती चली जाऊँगी। अब तो यही आँख रह गई है।

'इसमें हरज क्या है, मै उनसे कह दूँगा, पठानिन रुपए ले गई। अँधेरे में कहीं गिर-गिरा पड़ोगी।'

'नहीं बेटा, ऐसा काम नहीं करती, जिसमे पीछे से कोई बात पैदा हो। फिर आ जाऊँगी।'

'नहीं, मैं बिना रुपए न जाने दूँगा।'

बुढिया ने डरते-डरते कहा—तो लाओ दे दो बेटा, मेरा नाम टाँक लेना, पठानिन।

अमरकान्त ने रुपये दे दिये। बुढिया ने काँपते हुए हाथों से रुपये लेकर गिरह बाँधे और दुआयें देती हुई, धीरे-धीरे सीढ़ियो से नीचे उतरी; मगर पचास क़दम भी न गई होगी, कि पीछे से अमरकान्त एक इक्का लिये हुए आया और बोला—बूढी माता, आकर इक्के पर बैठ जाओ, मैं तुम्हे पहुँचा दूँ।

बुढिया ने आश्चर्य-चकित नेत्रों से देखकर कहा—अरे नहीं, बेटा, तुम मुझे पहुँचाने कहाँ जाओगे। मै टेकती हुई चली जाऊँगी। अल्लाह तुम्हें सलामत रखे।

अमरकान्त इक्का ला चुका था। उसने बुढिया को गोद में उठाया और इक्के पर बैठाकर पूछा—कहाँ चलूँ ?

बुढिया ने इक्के के डण्डों को मज़बूत पकडकर कहा—गोवर्धन की सराय चलो बेटा, अल्लाह तुम्हारी उम्र दराज करे। मेरा बच्चा इस बुढिया के लिए इतना हैरान हो रहा है। इत्ती दूर से दौड़ा आया। पढने जाते हो न बेटा, अल्लाह तुम्हे बड़ा दरजा दे।

पन्द्रह-बीस मिनट में इक्का गोवर्धन की सराय पहुँच गया। सड़क के दाहने हाथ एक गली थी। वहीं बुढिया ने इक्का रुकवा दिया और उतर

पडी। इक्का आगे न जा सकता था। मालूम पड़ता था, अँधेरे ने मुँह पर तारकोल पोत लिया है।

अमरकान्त ने इक्के को लौटाने के लिए कहा, तो बुढ़िया बोली—नहीं मेरे लाल, इत्ती दूर आये हो, तो पल-भर मेरे घर भी बैठ लो, तुमने मेरा कलेजा ठण्ढा कर दिया।

गली मे बड़ी दुर्गन्ध थी। गन्दे पानी के नाले दोनो तरफ़ बह रहे थे। घर प्रायः सभी कच्चे थे। ग़रीबो का महल्ला था। शहरो के बाज़ारो और गलियो में कितना अन्तर है! एक फूल है—सुन्दर, स्वच्छ, सुगन्धमय, दूसरी जड़ है—कीचड और दुर्गन्ध से भरी, टेढी-मेढी; लेकिन क्या फूल को मालूम है कि उसकी हस्ती जड़ से है?

बुढिया ने एक मकान के सामने खडे होकर धीरे से पुकारा—सक़ीना! अन्दर से आवाज़ आई—आती हूँ अम्माँ; इतनी देर कहाँ लगाई?

एक क्षण में सामने का द्वार खुला और एक बालिका हाथ में मिट्टी के तेल की एक कुप्पी लिये द्वार पर खडी हो गई। अमरकान्त बुढिया के पीछे खडा था, उस पर बालिका की निगाह न पडी, लेकिन बुढिया आगे बढी, तो सकीना ने अमर को देखा। तुरत ओढ़नी से मुँह छिपाती हुई पीछे हट गई और धीरे से पूछा—यह कौन हैं अम्माँ?

बुढिया ने एक कोने में अपनी लकडी रख दी और बोली—लाला का लडका है, मुझे पहुँचाने आया है। ऐसा नेक और शरीफ लडका तो मैंने देखा ही नहीं।

उसने अब तक का सारा वृत्तान्त अपने आशीर्वादों से भरी भाषा मे कह सुनाया, और बोली—आँगन में खाट डाल दे बेटी, ज़रा बुला लूँ। थक गया होगा।

सकीना ने एक टूटी सी खाट आँगन में डाल दी और उस पर एक सडी-सी चादर बिछाती हुई बोली—इस खटोले पर क्या बिठाओगी अम्माँ, मुझे तो शर्म आती है।

बुढिया ने ज़रा कड़ी आँखों से देखकर कहा—शर्म की क्या बात है इसमें? हमारा हाल क्या इनसे छिपा है?

उसने बाहर जाकर अमरकान्त को बुलाया। द्वार एक परदे की दीवार में था। उस पर एक टाट का फटा-पुराना परदा पड़ा हुआ था। द्वार के अन्दर क़दम रखते ही एक आँगन था, जिसमें मुशकिल से दो खटोले पड सकते थे। सामने खपरैल का एक नीचा सायबान था और सायबान के पीछे एक कोठरी थी, जो इस वक्त अँधेरी पडी हुई थी। सायबान में एक किनारे चूल्हा बना हुआ था और टीन और मिट्टी के दो चार बरतन, एक घडा और एक मटका रखे हुए थे। चूल्हे में आग जल रही थी और तवा रखा हुआ था।

अमर ने खाट पर बैठते हुए कहा—यह घर तो बहुत छोटा है। इसमें गुजर कैसे होती है।

बुढिया खाट के पास जमीन पर बैठ गई और बोली—बेटा, अब तो दो ही आदमी है, नहीं, इसी घर मे एक पूरा कुनबा रहता था। मेरे दो बेटे, दो बहुएँ, उनके बच्चे सब इसी घर में रहते थे। इसी में सबो के शादी-ब्याह हुए और इसी सब मर भी गये। उस वक्त यह ऐसा गुलजार लगता था, कि तुमसे क्या कहूँ। अब मै हूँ और मेरी यह पोती है। और सबको अल्लाह ने बुला लिया। पकाते है, खाते हैं और पड रहते है। तुम्हारे पठान के मरते ही घर मे जैसे झाड़ू फिर गई। अब तो अल्लाह से यही दुआ है, कि मेरे जीते जी यह किसी भले आदमी के पाले पड जाय, तब अल्लाह से कहूँगी, कि अब मुझे उठा लो। तुम्हारे यार-दोस्त तो बहुत होंगे बेटा, अगर शर्म की बात न समझो, तो किसी से ज़िक्र करना। कौन जाने तुम्हारे ही हीले से कही बात-चीत ठीक हो जाय।

सकीना कुरता-पाजामा पहने, ओढनी से माथा छिपाये सायबान में खडी थी। बुढिया ने ज्योंही उसकी शादी की चर्चा छेडी, वह चूल्हे के पास जा बैठी और आटे को अँगुलियो से गोदने लगी। वह दिल में झुँझला रही थी कि अम्माँ क्यों इनसे मेरा दुखडा ले बैठीं। किससे कौन बात कहनी चाहिये, कौन बात नहीं, इसका इन्हें ज़रा भी लिहाज़ नहीं। जो ऐरा-ग़ैरा आ गया, उसी से शादी का रोना गाने लगीं। और सब बातें गईं, बस एक शादी रह गई!

उसे क्या मालूम, कि अपनी संतान को विवाहित देखना बुढापे की सबसे बडी अभिलाषा है।

अमरकान्त ने मन में मुसलमान मित्रों का सिंहावलोकन करते हुए कहा—मेरे

मुसलमान दोस्त ज़्यादा तो नहीं है, लेकिन जो दो-एक है, उनसे मैं ज़िक्र करूँगा।

वृद्धा ने चिन्तित भाव से कहा—वह लोग धनी होगे?

'हाँ, सभी ख़ुशहाल है।'

'तो भला धनी लोग हम ग़रीबो की बात क्यो पूछेंगे। हालाँकि हमारे नबी का हुक्म है कि शादी-ब्याह में अमीर-ग़रीब का खयाल न होना चाहिये; पर उनके हुक्म को कौन मानता है! नाम के मुसलमान, नाम के हिन्दू रह गये हैं। न कहीं सच्चा मुसलमान नज़र आता है, न सच्चा हिन्दू। मेरे घर का तो तुम पानी भी न पियोगे बेटा, तुम्हारी क्या ख़ातिर करूँ? (सकीना से) बेटी, तुमने जो रूमाल काढ़ा है वह लाकर भैया को दिखाओ। शायद इन्हे पसन्द आ जाय। और हमे अल्लाह ने किस लायक़ बनाया है।'

सकीना रसोई से निकली और एक ताक पर से सिगरेट का एक बडा-सा बक्स उठा लाई और उसमे से वह रूमाल निकालकर सिर झुकाये, झिझकती हुई, बुढिया के पास आ, रूमाल रख, तेज़ी से चली गई।

अमरकान्त आँखे झुकाये हुए था; पर सकीना को सामने देखकर आँखे नीची न रह सकीं। एक रमणी सामने खड़ी हो, तो उसकी ओर से मुँह फेर लेना कितनी भद्दी बात है। सकीना का रंग साँवला था और रूप-रेखा देखते हुए वह सुन्दरी न कही जा सकती थी, अङ्ग-प्रत्यंग का गठन भी कवि-वर्णित उपमाओ से मेल न खाता था, पर रङ्ग-रूप, चाल-ढाल, शील-संकोच, इन सबने मिल-जुलकर उसे आकर्पक शोभा प्रदान कर दी थी। वह बडी-बडी पलको से आँखे छिपाये, देह चुराये, शोभा की सुगन्ध और ज्योति फैलाती हुई, इस तरह निकल गई, जैसे स्वप्न-चित्र एक झलक दिखाकर मिट गया हो।

अमरकान्त ने रूमाल उठा लिया और दीपक के प्रकाश में उसे देखने लगा। कितनी सफाई से बेल-बूटे बनाये गये थे। बीच मे एक मोर का चित्र था। इस झोपडे मे इतनी सुरुचि!

चकित होकर बोला—यह तो बड़ा ख़ूबसूरत रूमाल है माताजी। सकीना काढने के काम में बहुत होशियार मालूम होती है।

बुढिया ने गर्व से कहा—यह सभी काम जानती है भैया, न-जाने कैसे

सीख लिया। महल्ले की दो-चार लड़कियाँ मदरसे पढ़ने जाती हैं। उन्हीं को काढ़ते देखकर इसने सब कुछ सीख लिया। कोई मर्द घर में होता, तो इसे कुछ काम मिल जाया करता। इन ग़रीबो के महल्लों में इन कामो की कौन क़दर कर सकता है। तुम यह रूमाल लेते जाओ बेटा, एक बेकस बेवा की नज़र है।

अमर ने रूमाल को जेब मे रखा, तो उसकी आँखें भर आईं। उसका बस होता, तो इसी वक्त सौ-दो-सौ रूमालो की फरमाइश कर देता। फिर भी यह बात उसके दिल मे जम गई। उसने खड़े होकर कहा—मैं इस रूमाल को हमेशा तुम्हारी दुआ समझूँगा। वादा तो नहीं करता; लेकिन मुझे यक़ीन है, कि मैं अपने दोस्तो से आपको कुछ काम दिला सकूँगा।

अमरकान्त ने पहले पठानिन के लिए 'तुम' का प्रयोग किया था। चलते समय तक वह तुम 'आप' मे बदल गया था। सुरुचि, सुविचार, सद्भाव, उसे सब कुछ मिला। हाँ, उस पर विपन्नता का आवरण पड़ा हुआ था। शायद ... ने यह 'आप' और 'तुम' का विवेक उत्पन्न कर दिया था।

अमर उठ खड़ा हुआ। बुढ़िया अंचल फैलाकर उसे दुआएँ देती रही।





मरकान्त नौ बजते-बजते लौटा, तो लाला समरकान्त ने पूछा—तुम दुकान बंद करके कहाँ चले गये थे? इसी तरह दुकान पर बैठा जाता है?

अमर ने सफ़ाई दी—बुढ़िया पठानिन रुपए लेने आई थी। बहुत अँधेरा हो गया था। मैंने समझा कहीं गिर-गिरा पड़े ... उसे घर तक पहुँचाने चला गया था। वह तो रुपए लेती ही न थी; ... बहुत देर हो गई, तो मैंने रोकना उचित न समझा।

'कितने रुपए दिये ?'

'पाँच ।'

लालाजी को कुछ धैर्य हुआ ।

'और कोई असामी आया था ? किसी से कुछ रुपए वसूल हुए ?'

'जी नहीं ।'

'आश्चर्य है ।'

'और कोई तो नही आया, हाँ वही बदमाश काले खाँ सोने की एक चीज़ बेचने लाया था । मैंने लौटा दिया ।'

समरकान्त की त्योरियाँ बदलीं—क्या चीज़ थी ?

'सोने के कड़े थे । दस तोले बताता था ।'

'तुमने तोला नहीं ?'

'मैंने हाथ से छुआ तक नही ।'

'हाँ क्यो छूते, उसमे पाप लिपटा हुआ था न ! कितना माँगता था ?'

'दो सौ ।'

'झूठ बोलते हो ।'

'शुरू दो सौ से किये थे ; पर उतरते-उतरते ३०) तक आया था ।'

लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई—फिर भी तुमने लौटा दिये ?

'और क्या करता । मै तो उसे सेंत मे भी न लेता । ऐसा रोज़गार करना मै पाप समझता हूँ ।'

समरकान्त क्रोध से विकृत होकर बोले—चुप भी रहो, शरमाते तो नहीं, ऊपर से बातें बनाते हो ! १५०) बैठे-बैठाये मिलते थे, वह तुमने धर्म के घमंड मे खो दिये, उस पर से अकड़ते हो ! जानते भी हो, धर्म क्या चीज़ है ? साल मे एक भी गंगा-स्नान करते हो ? एक बार भी देवताओ को जल चढ़ाते हो ? कभी राम का नाम लिया है ज़िन्दगी में ? कभी एकादशी या कोई दूसरा व्रत रखा है ? कभी कथा-पुराण पढ़ते या सुनते हो ? तुम क्या जानो धर्म किसे कहते हैं ! धर्म और चीज़ है, रोज़गार और चीज़ । छि ! साफ़ डेढ सौ फेंक दिये !

अमरकान्त धर्म की इस व्याख्या पर मन-ही-मन हँसकर बोला—आप गंगा-स्नान, पूजा-पाठ ही मुख्य धर्म समझते हैं ; मै सचाई, सेवा और परोपकार

को मुख्य धर्म समझता हूँ। स्नान-ध्यान, पूजा-व्रत धर्म के साधन-मात्र धर्म नहीं।

समरकान्त ने मुँह चिढ़ाकर कहा—ठीक कहते हो, बहुत ठीक, अब ... तुम्हीं को धर्म का आचार्य मानेगा। अगर तुम्हारे धर्म-मार्ग पर चलता, तो आज मैं भी लँगोटी लगाये घूमता होता, तुम भी यों महल में बैठकर मौज न करते होते। चार अक्षर अँग्रेजी पढ़ ली न, यह उसी की विभूति है; लेकिन मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ, जो अँग्रेजी के विद्वान् होकर अपना धर्म-कर्म निभाये जाते हैं। साफ़ डेढ़ सौ पानी में डाल दिये!

अमरकान्त ने अधीर होकर कहा—आप बार-बार उसकी चर्चा क्यों करते हैं। मैं चोरी और डाके के माल का रोज़गार न करूँगा, चाहे आप ख़ुश हों या नाराज़। मुझे ऐसे रोज़गार से घृणा होती है!

'तो मेरे काम में वैसी आत्मा की ज़रूरत नहीं। मैं ऐसी आत्मा चाहता हूँ जो अवसर देखकर, हानि-लाभ का विचार करके काम करे।'

'धर्म को मैं हानि-लाभ की तराज़ू पर नहीं तौल सकता।'

इस वज्र-मूर्खता की दवा, चाँटे के सिवा और कुछ न थी। लालाजी ख़ून का घूँट पीकर रह गये। अमर हृष्ट पुष्ट होता, तो आज उसे धर्म की निन्दा करने का मज़ा मिल जाता। बोले—बस तुम्हीं तो संसार में एक धर्म के ठीकेदार रह गये हो, और सब तो अधर्मी हैं। वही माल जो तुमने अपने घमंड में लौटा दिया, तुम्हारे किसी दूसरे भाई ने दो-चार रुपए कम-बेश देकर ले लिया होगा। उसने तो रुपए कमाये, तुम नीबू-नोन चाटकर रह गये। डेढ़ सौ रुपये तब मिलते हैं, जब डेढ़ सौ थान कपड़ा या डेढ़ सौ बोरे चीनी बिक जायँ। मुँह का कौर नहीं है। अभी कमाना नहीं पड़ा है, दूसरों की कमाई से चैन उड़ा रहे हो, जभी ऐसी बातें सूझती हैं। जब अपने सिर पड़ेगी, तब आँखें खुलेंगी।

अमर अब भी क़ायल न हुआ। बोला—मैं कभी यह रोजगार न करूँगा।

लालाजी को लड़के की मूर्खता पर क्रोध की जगह क्रोध-मिश्रित दया आ गई। बोले—तो फिर कौन रोज़गार करोगे? कौन रोज़गार है, जिसमें तुम्हारी आत्मा की हत्या न हो; लेन-देन, सूद-बट्टा, अनाज-कपड़ा, तेल-घी, सभी रोज़गारों में दाँव-घात है। जो दाँव-घात समझता है, वह नफा उठाता है; जो नहीं समझता, उसका

दिवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोज़गार बता दो, जिसमें झूठ न बोलन पड़े, बेईमानी न करनी पड़े। इतने बड़े-बड़े हाकिम है, बताओ कौन घूस नह लेता? एक सीधी-सी नक़ल लेने जाओ, तो एक रुपया लग जाता है। बिना तह ीर लिये थानेदार रपट तक नहीं लिखता। कौन वकील है, जो झूठे गवाह नह बनाता? लीडरो ही मे कौन है, जो चन्दे के रुपए मे नोच-खसोट न करता हो माया पर तो संसार की रचना हुई है, इससे कोई कैसे बच सकता है?

अमर ने उदासीन भाव से सिर हिलाकर कहा—अगर रोज़गार का यह हाल है, तो मैं रोज़गार करूँगा ही नहीं।

'तो घर-गिरस्ती कैसे चलेगी! कुएँ मे पानी की आमद न हो, तो कै दि पानी निकले।'

अमरकान्त ने इस विवाद का अन्त करने के इरादे से कहा—मैं भूखों म जाऊँगा; पर आत्मा का गला न घोटूँगा।

'तो क्या मजूरी करोगे?'

'मजूरी करने मे कोई शर्म नही है।'

समरकान्त ने हथौड़ों से काम चलते न देखकर घन चलाया—शर्म चाहे न हो, पर तुम कर न सकोगे, कहो लिख दूँ। मुँह से बक देना सहल है, क दिखाना कठिन होता है। चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब चार गंडे पैसे मिलते हैं। मजूरी करेंगे! एक घड़ा पानी तो अपने हाथों खींचा नहीं जाता, चार पैसे की भाजी लेनी होती है, तो नौकर लेकर चलते हैं, यह मजूरी करेंगे! अपने भाग्य को सराहो, कि मैंने कमाकर रख दिया है। तुम्हारा किया कुछ न होगा। तुम्हारी इन बातों से ऐसा जी जलता है, कि सारी जायदाद कृष्णार्पण कर दूँ, फिर देखूँ तुम्हारी आत्मा किधर जाती है।

अमरकान्त पर उसकी चोट का भी कोई असर न हुआ—आप ख़ुशी से अपनी जायदाद कृष्णार्पण कर दें। मेरे लिए रत्ती भर भी चिंता न करें। जिस दिन आप यह पुनीत कार्य करेंगे, उस दिन मेरा सौभाग्य-सूर्य उदय होगा। मैं इस मोह से मुक्त होकर स्वाधीन हो जाऊँगा। जब तक मैं इस बन्धन मे पड़ा रहूँगा, मेरी आत्मा का विकास न होगा।

समरकान्त के पास अब कोई शस्त्र न था। एक क्षण के लिए क्रोध ने

उनकी व्यवहार-बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया। बोले—तो क्यों इस बन्धन मे पड़े हो? क्यों अपनी आत्मा का विकास नहीं करते? महात्मा ही हो जाओ। कुछ करके दिखाओ तो। जिस चीज़ की तुम क़दर नहीं कर सकते, वह मैं तुम्हारे गले नहीं मढ़ना चाहता।

यह कहते हुए वह ठाकुरद्वारे मे चले गये, जहाँ इस समय आरती का घण्टा बज रहा था। अमर इस चुनौती का जवाब न दे सका। वे शब्द जो बाहर न निकल सके, उसके हृदय मे फोड़े की तरह टीसने लगे। मुझ पर अपनी सम्पत्ति की धौंस जमाने चले है। चोरी का माल बेचकर, जुआरियो को चार आने रुपए ब्याज पर रुपए देकर, ग़रीब मजूरों और किसानों को ठगकर रुपए जोड़े हैं, उस पर आपको इतना अभिमान है। ईश्वर न करे, कि मैं धन का ग़ुलाम बनूँ।

वह इन्हीं उत्तेजना से भरे हुए विचारो मे डूबा बैठा था, कि नैना ने आकर कहा—दादा बिगड़ रहे थे भैया?

अमरकान्त के एकान्त जीवन मे नैना ही स्नेह और सात्वना की वस्तु थी। अपना सुख-दु:ख, अपनी विजय और पराजय, अपने मंसूबे और इरादे वह उसी से कहा करता था। यद्यपि सुखदा से अब उसे उतना विराग न था, नहीं, उसे प्रेम भी हो गया था, पर नैना अब भी उससे निकटतर थी। सुखदा और नैना दोनो उसके अंतस्तल की दो कूले थीं। सुखदा ऊँची, दुर्गम और विशाल थी। लहरें उसके चरणो ही तक पहुँचकर रह जाती थीं। नैना समतल, सुलभ और समीप। वायु का थोड़ा वेग पाकर भी लहरें उसके मर्मस्थल तक जा पहुँचती थीं।

अमर अपनी मनोव्यथा को मंद मुस्कान की आड़ में छिपाता हुआ बोला—कोई नई बात नहीं थी नैना। वही पुराना पचड़ा था। तुम्हारी भाभी तो नीचे नहीं थीं?

'अभी तक तो यहीं थीं। ज़रा देर हुई ऊपर चली गईं।'

'तो आज उधर से भी शस्त्र-प्रहार होंगे। दादा ने तो आज मुझसे कह दिया, तुम अपने लिए कोई राह निकालो, और मैं भी सोचता हूँ, अब कुछ-न-कुछ करना चाहिए। यह रोज़-रोज़ की फटकार नहीं सही जाती।

में कोई बुराई करूँ तो वह मुझे दस जूते भी जमा दें, चूँ न करूँगा ; लेकिन अधर्म पर मुझसे न चला जायगा।'

नैना ने इस वक्त मीठी पकौड़ियाँ, नमकीन पकौड़ियाँ, खट्टी पकौड़ियाँ और न जाने क्या क्या पका रखे थे। उसका मन उन पदार्थों को खिलाने और खाने के आनन्द मे बसा हुआ था। यह धर्म-अधर्म के झगडे उसे व्यर्थ-से जान पडे। बोली—पहले चलकर पकौडियाँ खा लो, फिर इस विषय पर सलाह होगी।

अमर ने वितृष्णा के भाव से कहा—ब्यालू करने की मेरी इच्छा नहीं है। लात की मारी रोटियाँ कंठ के नीचे न उतरेगी। दादा ने आज फ़ैसला कर दिया।

'अब तुम्हारी यही बात मुझे अच्छी नहीं लगती। आज की सी मज़ेदार पकौडियाँ तुमने कभी न खाई होगी। तुम न खाओगे, तो मैं भी न खाऊँगी।'

नैना की इस दलील ने उसके इंकार को कई कदम पीछे ढकेल दिया—तू मुझे बहुत दिक्क करती है नैना, सच कहता हूँ, मुझे बिलकुल इच्छा नहीं है।

'चलकर थाल पर बैठो तो, पकौडियाँ देखते ही टूट न पडो, तो कहना।'

'तू जाकर खा क्यों नहीं लेती? मै एक दिन न खाने से मर तो न जाऊँगा।'

'तो क्या मैं एक दिन न खाने से मर जाऊँगी? मै तो निर्जल शिवरात्री रखती हूँ, तुमने तो कभी व्रत नहीं रखा।'

नैना के आग्रह को टालने की शक्ति अमरकान्त मे न थी।

लाला समरकान्त रात का भोजन न करते थे। इसलिए भाई, भावज, बहन साथ ही खा लिया करते थे। अमर आँगन में पहुँचा, तो नैना ने भाभी को बुलाया। सुखदा ने ऊपर ही से कहा, मुझे भूख नही है।

मनावन का भार अमरकान्त के सिर पडा। वह दबे पाँव ऊपर गया। जी में डर रहा था, कि आज मुआमला तूल खींचेगा, पर इसके साथ ही दृढ भी था। इस प्रश्न पर वह दबेगा नहीं। यह ऐसा मार्मिक विषय था, जिस पर किसी प्रकार का समझौता हो ही न सकता था।

अमरकान्त की आहट पाते ही सुखदा सँभल बैठी। उसके पीले मुख पर ऐसी करुण-वेदना झलक रही थी, कि एक क्षण के लिए अमरकान्त चंचल हो गया।

अमरकान्त ने उसका हाथ पकड़कर कहा—चलो, भोजन कर लो। आज बहुत देर हो गई।

'भोजन पीछे करूँगी, पहले मुझे तुमसे एक बात का फैसला करना है। तुम आज फिर दादाजी से लड़ पड़े?'

'दादाजी से मैं लड पडा, या उन्ही ने मुझे अकारण डाँटना शुरू किया।'

सुखदा ने दार्शनिक निरपेक्षता के स्वर मे कहा—तो उन्हें डाँटने का अवसर ही क्यों देते हो? मै मानती हूँ, कि उनकी नीति तुम्हे अच्छी नहीं लगती। मै भी उसका समर्थन नहीं करती, लेकिन अब इस उम्र मे तुम उन्हें नये रास्ते पर नहीं चला सकते। वह भी तो उसी रास्ते पर चल रहे हैं, जिस पर सारी दुनिया चल रही है। तुमसे जो कुछ हो सके, उनकी मदद करो। जब वह न रहेंगे, उस वक्त अपने आदर्शों का पालन करना। तब कोई तुम्हारा हाथ न पकड़ेगा। इस वक्त तो तुम्हे अपने सिद्धान्तो के विरुद्ध भी कोई बात करनी पडे, तो बुरा न मानना चाहिये। उन्हे कम से कम इतना सन्तोष तो दिला दो, कि उनके पीछे तुम उनकी कमाई लुटा न दोगे। मै आज तुम दोनो जनों की बातें सुन रही थी। मुझे तो तुम्हारी ही ज्यादती मालूम होती थी।

अमरकान्त उसके प्रसव-भार पर चिन्ता-भार न लादना चाहता था; पर प्रसंग ऐसा आ पडा था, कि वह अपने को निर्दोष सिद्ध करना आवश्यक समझता था। बोला—उन्होंने आज मुझसे साफ़-साफ कह दिया, तुम अपनी फ़िक्र करो। उन्हें अपना धन मुझसे ज्यादा प्यारा है।

यही काँटा था, जो अमरकान्त के हृदय मे चुभ रहा था।

सुखदा के पास जवाब तैयार था—तुम्हें भी तो अपना सिद्धान्त अपने बाप से ज्यादा प्यारा है। उन्हे तो मैं कुछ नहीं कहती। अब साठ बरस की उम्र में उन्हें उपदेश नहीं दिया जा सकता। कम-से-कम तुमको यह अधिकार नहीं है। तुम्हे धन काटता हो, लेकिन मनस्वी, वीर पुरुषो ने सदैव लक्ष्मी की उपासना की है। संसार को पुरुषार्थियों ने ही भोगा है और हमेशा भोगेंगे। त्याग गृहस्थों के लिए नहीं, संन्यासियों के लिए है। अगर तुम्हें त्यागव्रत लेना था, तो विवाह करने की ज़रूरत न थी, सिर मुड़ाकर किसी साधु-संत के चेले बन जाते। फिर मैं तुमसे झगड़ने न आती। अब ओखली में सिर डालकर तुम मूसलों से नहीं

बच सकते। गृहस्थी के चरखे मे पडकर बड़े-बडो की नीति भी स्खलित हो जाती है। कृष्ण और अर्जुन तक को एक नए तर्क की शरण लेनी पडी।

अमरकान्त ने इस ज्ञानोपदेश का जवाब देने की ज़रूरत न समझी। ऐसी दलीलों पर गंभीर विचार किया ही न जा सकता था। बोला—तो तुम्हारी सलाह है कि संन्यासी हो जाऊँ!

सुखदा चिढ गई। अपनी दलीलो का यह अनादर न सह सकी। बोली—कायरो को इसके सिवाय और सूझ ही क्या सकता है। धन कमाना आसान नहीं है। व्यवसायियो को जितनी कठिनाइयो का सामना करना पडता है, वह अगर संन्यासियो को झेलनी पडें, तो सारा सन्यास भूल जाय। किसी भले आदमी के द्वार पर जाकर पड़ रहने के लिए बल, बुद्धि, विद्या, साहस किसी की भी ज़रूरत नहीं। धनोपार्जन के लिए ख़ून जलाना पडता है, माँस सुखाना पडता है। सहज काम नहीं है। धन कहीं पड़ा नहीं है, कि जो चाहे बटोर लाये।

अमरकान्त ने उसी विनोद-भाव से कहा—मै तो दादा को गद्दी पर बैठे रहने के सिवाय और कुछ करते नही देखता। और भी जो बडे-बडे सेठ-साहूकार हैं, उन्हे भी फूलकर कुप्पा होते ही देखा है। रक्त और मास तो मज़दूर ही जलाते हैं। जिसे देखो कंकाल बना हुआ है।

सुखदा ने कुछ जवाब न दिया। ऐसी मोटी अक्ल के आदमी से ज़्यादा बकवास करना व्यर्थ था।

नैना ने पुकारा—तुम क्या करने लगे भैया? आते क्यों नहीं? फुलौड़ियाँ ठंढी हुई जाती हैं।

सुखदा ने कहा—तुम जाकर खा क्यो नहीं लेते? बेचारी ने दिन भर तैयारियाँ की है।

'मै तो तभी जाऊँगा, जब तुम भी चलोगी।'

'वादा करो कि फिर दादाजी से लडाई न करोगे।'

अमरकान्त ने गंभीर होकर कहा—सुखदा, मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मैंने इस लड़ाई से बचने के लिए कोई बात उठा नहीं रखी। इन दो सालों में मुझमें कितना परिवर्तन हो गया है, कभी-कभी मुझे इस पर स्वयं आश्चर्य होता है। मुझे जिन बातों से घृणा थी, वह सब मैंने अंगीकार कर लीं, लेकिन अब उस

सीमा पर आ गया हूँ, कि जौ भर भी आगे बढा, तो ऐसे गर्त में जा गिरूँगा जिसकी थाह नहीं है। उस सर्वनाश की ओर मुझे मत ढकेलो।

सुखदा को इस कथन मे अपने ऊपर लाञ्छन का आभास हुआ। इसे वह कै स्वीकार करती। बोली—इसका तो यह आशय है, कि मै तुम्हारा सर्वनाश करन चाहती हूँ। अगर मेरे व्यवहार का यही तत्त्व तुमने निकाला है, तो तुम्हे इससे बहु पहले मुझे विष दे देना चाहिए था। अगर तुम समझते हो कि मैं भोग-विला की दासी हूँ और केवल स्वार्थवश तुम्हे समझाती हूँ, तो तुम मेरे साथ घोरत अन्याय कर रहे हो। मै तुमको बता देना चाहती हूँ कि विलासिनी सुखदा अवस पडने पर जितने कष्ट झेलने की सामर्थ्य रखती है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं क सकते। ईश्वर वह दिन न लाये कि मैं तुम्हारे पतन का साधन बनूँ। हाँ, जल के लिए स्वयं चिता बनाना मुझे स्वीकार नहीं। मै जानती हूँ; कि तुम थोड़ बुद्धि से काम लेकर अपने सिद्धान्त और धर्म की रक्षा भी कर सकते हो और घ की तबाही को भी रोक सकते हो। दादाजी पढ़े-लिखे आदमी हैं, दुनिया दे चुके हैं। अगर तुम्हारे जीवन मे कुछ सत्य है, तो उसका उन पर प्रभाव पड़ बगैर नहीं रह सकता। आये दिन की झौड से तुम उन्हे और भी कठोर बना देते हो। बच्चे भी मार से जिद्दी हो जाते है। बूढों की प्रकृति कुछ बच्चों ही-सी होती है। बच्चो की भाँति उन्हें भी तुम सेवा और भक्ति से ही अपना सकते हो।

अमर ने पूछा—तो चोरी का माल ख़रीदा करूँ?

'कभी नहीं।'

'लडाई तो इसी बात पर हुई।'

'तुम उस आदमी से कह सकते थे—दादा आ जायँ तब लाना।'

'और अगर वह न मानता। उसे तत्काल रुपए की ज़रूरत थी।'

'आपद्धर्म भी तो कोई चीज़ है।'

'वह पाखण्डियों का पाखण्ड है।'

'तो मैं तुम्हारे निर्जीव आदर्शवाद को भी पाखण्डियो का पाखण्ड समझती हूँ।'

एक मिनट तक दोनों थके हुए योद्धाओ की भाँति दम लेते रहे। त अमरकान्त ने कहा—नैना पुकार रही है।

'मै तो तभी चलूँगी, जब तुम वह वादा करोगे।'

अमरकान्त ने अविचल भाव से कहा—तुम्हारी खातिर से कहो वादा कर लूँ, पर मैं उसे पूरा नहीं कर सकता। यही हो सकता है, कि मै घर की किसी बात से सरोकार न रखूँ।

सुखदा निश्चयात्मक रूप से बोली—यह इससे कही अच्छा है, कि रोज़ घर में लडाई होती रहे। जब तक इस घर मे हो, इस घर की हानि-लाभ का तुम्हे विचार करना पड़ेगा।

अमर ने अकडकर कहा—मैं आज इस घर को छोड़ सकता हूँ।

सुखदा ने बम-सा फेका—और मै?

अमर विस्मय से सुखदा का मुँह देखने लगा।

सुखदा ने उसी स्वर में फिर कहा—इस घर से मेरा नाता तुम्हारे आधार पर है। जब तुम इस घर में न रहोगे, तो मेरे लिए यहाँ क्या रखा है। जहाँ तुम रहोगे, वहीं मैं भी रहूँगी।

अमर ने संशयात्मक स्वर मे कहा—तुम अपनी माता के साथ रह सकती हो।

'माता के साथ क्यो रहूँ? मै किसी की आश्रित नही रह सकती। मेरा दु.ख-सुख तुम्हारे साथ है। जिस तरह रखोगे, उसी तरह रहूँगी। मै भी देखूँगी, तुम अपने सिद्धान्तों के कितने पक्के हो। मै प्रण करती हूँ कि तुमसे कुछ न माँगूँगी। तुम्हे मेरे कारण ज़रा भी कष्ट न उठाना पडेगा। मैं खुद भी कुछ पैदा कर सकती हूँ; थोडा मिलेगा, थोडे में गुज़र कर लेंगे, बहुत मिलेगा, तो पूछना ही क्या। जब एक दिन हमें अपनी झोपडी बनानी ही है, तो क्यों न अभी से हाथ लगा दें। तुम कुएँ से पानी लाना, मैं चौका-बरतन कर लूँगी। जो आदमी एक महल मे रहता है, वह एक कोठरी मे भी रह सकता है। फिर कोई धौंस तो न जमा सकेगा।'

अमरकान्त पराभूत हो गया। उसे अपने विषय मे तो कोई चिन्ता नहीं थी; लेकिन सुखदा के साथ वह यह अत्याचार कैसे कर सकता था?

खिसियाकर बोला—वह समय अभी नहीं आया है सुखदा।

सुखदा सतेज होकर बोली—डरते होगे कि यह अपने भाग्य को रोयेगी, क्यों?

अमरकान्त झेंपकर बोला—यह बात नहीं है सुखदा।

'क्यों झूठ बोलते हो? तुम्हारे मन मे यही भाव है और इससे बडा अन्याय तुम मेरे साथ नहीं कर सकते। कष्ट सहने मे, या सिद्धान्त की रक्षा के लिए स्त्रियाँ कभी पुरुषों से पीछे नहीं रहीं। तुम मुझे मजबूर कर रहे हो कि और कुछ नहीं तो लांछन से बचने के लिए मैं दादाजी से अलग रहने की आज्ञा माँगूँ। बोलो!'

अमर लज्जित होकर बोला—मुझे क्षमा करो सुखदा। मै वादा करता हूँ कि दादाजी जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा।

'इसलिए कि तुम्हे मेरे विषय मे सन्देह है?'

'नहीं, केवल इसलिए कि मुझमे अभी उतना बल नहीं है।'

इसी समय नैना आकर दोनो को पकौड़ियाँ खिलाने के लिए घसीट ले गई। सुखदा प्रसन्न थी। उसने आज बहुत बडी विजय पाई थी। अमरकान्त झेंपा हुआ था। उसके आदर्श और धर्म की आज परीक्षा हो गई थी और उसे अपनी दुर्बलता का ज्ञान हो गया था। ऊँट पहाड के नीचे आकर अपनी ऊँचाई देख चुका था।



जोवन में कुछ सार है, अमरकान्त को इसका अनुभव हो रहा है। वह एक शब्द भी मुँह से ऐसा नहीं निकालना चाहता, जिससे सुखदा को दुःख हो, क्योंकि वह गर्भवती है। उसकी इच्छा के विरुद्ध वह छोटी से छोटी बात भी नहीं करना चाहता। वह गर्भवती है। उसे अच्छी-अच्छी किताबें पढकर सुनाई जाती हैं, रामायण, महाभारत और गीता से अब अमर को विशेष प्रेम है; क्योंकि सुखदा गर्भवती है। बालक के संस्कारों का सदैव ध्यान बना रहता है। सुखदा

को प्रसन्न रखने की निरंतर चेष्टा की जाती है। उसे थियेटर, सिनेमा दिखाने में अब अमर को संकोच नहीं होता। कभी फूलो के गजरे आते हैं, कभी कोई मनोरंजन की वस्तु। सुबह-शाम वह दूकान पर भी बैठता है। सभाओं की ओर उसकी रुचि नही है। वह पुत्र का पिता बनने जा रहा है। इसकी कल्पना से उसमें ऐसा उत्साह भर जाता है, कि वह कभी-कभी एकान्त मे नत-मस्तक होकर कृष्ण के चित्र के सामने सिर झुका लेता है। सुखदा तप कर रही है। अमर अपने को नई जिम्मेदारियो के लिए तैयार कर रहा है। अब तक वह समतल भूमि पर था, बहुत सँभलकर चलने की उतनी ज़रूरत न थी। अब वह ऊँचाई पर जा पहुँचा है। वहाँ बहुत सँभलकर पाँव रखना पडता है।

लाला समरकान्त भी आज-कल बहुत ख़ुश नज़र आते हैं। बीसो ही बार अन्दर जाकर सुखदा से पूछते हैं, कि किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है। अमर पर उनकी विशेष कृपा-दृष्टि हो गई है। उसके आदर्शवाद को वह उतना बुरा नहीं समझते। एक दिन काले ख़ाँ को उन्होंने दूकान से खड़े-खड़े निकाल दिया। आसामियो पर वह उतना नहीं बिगडते, उतनी नालिशें नहीं करते। उनका भविष्य उज्ज्वल हो गया है। एक दिन उनकी रेणुका से बातें हो रहीं थीं। अमरकान्त की निष्ठा की उन्होंने दिल खोलकर प्रशंसा की।

रेणुका उतनी प्रसन्न न थी। प्रसव के कष्टों को याद करके वह भयभीत हो जाती थी। बोली—लालाजी, मैं तो भगवान् से यही मनाती हूँ कि जब हँसाया है, तो बीच मे रुलाना मत। पहलौठी मे बडा संकट रहता है। स्त्री का दूसरा जन्म होता है।

समरकान्त को ऐसी कोई शंका न थी। बोले—मैंने तो बालक का नाम सोच लिया है। उसका नाम होगा—रेणुकान्त।

रेणुका आशंकित होकर बोली—अभी नाम-वाम न रखिये लालाजी। इस संकट से उद्धार हो जाय, तो नाम सोच लिया जायगा। मै तो सोचती हूँ, दुर्गा-पाठ बैठा दीजिये। इस महल्ले मे एक दाई रहती है। उसे अभी से रख लिया जाय, तो अच्छा हो। बिटिया अभी बहुत-सी बातें नहीं समझती। दाई उसे सँभालती रहेगी।

लालाजी ने इस प्रस्ताव को हर्ष से स्वीकार कर लिया। यहाँ से जब वह

घर लौटे तो देखा—दूकान पर दो गोरे और एक मेम बैठे हुए है और कान्त उनसे बातें कर रहा है। कभी-कभी नीचे दरजे के गोरे यहाँ अपनी या कोई और चीज़ बेचने के लिए आ जाते थे। लालाजी उन्हे ख़ूब ठगते; वह जानते थे कि ये लोग बदनामी के भय से किसी दूसरी दूकान पर न जायँ। उन्होने जाते-ही-जाते अमरकान्त को हटा दिया और ख़ुद सौदा पटाने। अमरकान्त स्पष्टवादी था और यह स्पष्टवादिता का अवसर न था। मेम को सलाम करके पूछा—कहिये मेम साहब, क्या हुक्म है ?

तीनो शराब के नशे में चूर थे। मेम साहब ने सोने की एक जञ्जीर निकाल कर कहा—सेठजी, हम इसको बेचना चाहता है। बाबा बहुत बीमार है। दवाई में बहुत खरच हो गया।

समरकान्त ने जजीर लेकर देखा और हाथ मे तौलते हुए बोले—सोना तो अच्छा नहीं है मेम साहब। आपने कहाँ बनवाया था ?

मेम हँसकर बोली—ओ ! तुम बराबर यही बात कहता है। सोना बहुत अच्छा है। अँग्रेजी दूकान का बना हुआ है। आप इसको ले-ले।

समरकान्त ने अनिच्छा का भाव दिखाते हुए कहा—बडी-बडी दूकानें तो गाहकों को उलटे छूरे से मूँड़ती है। जो कपडा यहाँ बाजार मे छः आने गज़ मिलेगा, वही अँग्रेजी दूकानो पर बारह आने गज़ से नीचे न मिलेगा। तो इनके दाम दस रुपया तोले से बेसी नहीं दे सकता।

'और कुछ नहीं देगा ?'

'और कुछ नहीं। यह भी आपकी ख़ातिर है।'

यह गोरे उस श्रेणी के थे, जो अपनी आत्मा को शराब और जुए के हाथ बेच देते हैं, बेटिकट फ़र्स्ट क्लास में सफर करते है, होटलवालों को धोखा दे उड जाते हैं और जब कुछ बस नहीं चलता, तो बिगड़े हुए शरीफ़ बनकर भीख माँगते हैं। तीनों ने आपस में सलाह की और ज़ंजीर बेच डाली। रुपए लेकर दूकान से उतरे और ताँगे पर बैठे ही थे कि एक भिखारिन ताँगे के पास आकर खड़ी हो गई। यह तीनों रुपए पाने की ख़ुशी में भूले हुए थे कि सहसा भिखारिन ने छुरी निकालकर एक गोरे पर वार किया। छुरी उसके मुँह पर पड़ी थी। उसने घबड़ाकर मुँह पीछे हटाया, तो छाती में चुभ गई। वह तो

ही हाय-हाय करने लगा। शेष दोनो गोरे ताँगे से उतर पडे और दूकान आकर प्राण-रक्षा करना चाहते थे, कि भिखारिन ने दूसरे गोरे पर वार कर दिया। छुरी उसकी पसली मे पहुँच गई। दूकान पर चढने न पाया था, डाम से गिर पडा। भिखारिन लपककर दूकान पर चढ गई और मेम पर पटी कि अमरकान्त 'हाँ-हाँ' करके उसकी छुरी छीन लेने को बढा। भिखारिन उसे देखकर छुरी फेंक दी और दूकान के नीचे कूदकर खड़ी हो गई। सारे ज़ार मे हलचल पड गई—एक गोरे ने कई आदमियो को मार डाला है, लाला मरकान्त मार डाले गये, अमरकान्त को भी चोट आई है। ऐसी दशा मे किसे पनी जान भारी थी, जो वहाँ आता। लोग दूकाने बन्द करके भागने लगे।

दोनो गोरे ज़मीन पर पडे तडप रहे थे, ऊपर मेम सहमी हुई खडी थी और लाला समरकान्त अमरकान्त का हाथ पकडकर अन्दर घसीट ले जाने की चेष्टा र रहे थे। भिखारिन भी सिर झुकाये जडवत् खडी थी—ऐसी भोली-भाली, से कुछ किया ही नही है।

वह भाग सकती थी, कोई उसका पीछा करने का साहस न करता पर ागी नही। वह आत्मघात कर सकती थी। उसकी छुरी अब भी ज़मीन पर ड़ी हुई थी; पर उसने आत्मघात भी न किया। वह तो इस तरह खडी थी, ानो उसे यह सारा दृश्य देखकर विस्मय हो रहा हो।

ामने के कई दूकानदार जमा हो गये। पुलीस के दो जवान भी आ हुँचे। चारों तरफ से आवाज़ आने लगी—यही औरत है! यही औरत है! ुलीसवालो ने उसे पकड लिया।

एक दस मिनिट मे सारा शहर और सारे अधिकारी वहाँ आकर जमा हो गये। सब तरफ़ लाल पगडियाँ दीख पड़ती थीं। सिविल सर्जन ने आकर आहतों को उठवाया और अस्पताल ले चले। इधर तहकीक़ात होने लगी। भिखारिन ने अपना अपराध स्वीकार किया।

पुलीस के सुपरिन्टेन्डेन्ट ने पूछा—तेरी इन आदमियो से कोई अदावत थी?—भिखारिनी ने कोई जवाब न दिया।

सैकडो आवाज़ें आई—बोलती क्यो नही? हत्यारिनी!

भिखारिन ने दृढता से कहा—मै हत्यारिनी नहीं हूँ।

इतने मे लारी आती दिखाई दी। अमरकान्त वकीलों को इत्तला करने दौड़ा। दर्शक चारो तरफ से दौड़-दौड़कर अदालत के कमरे में आ पहुँचे। भिखारिन लारी से उतरी और कठघरे के सामने आकर खड़ी हो गई। उसके आते ही हजारों आँखे उसकी ओर उठ गईं, पर उन आँखो में एक भी ऐसी न थी, जिसमे श्रद्धा न भरी हो। उसके पीले, मुरझाये हुए मुख पर आत्मगौरव की ऐसी कान्ति थी, जो कुत्सित दृष्टि को उठने के पहले ही निराश और पराभूत करके उसमे श्रद्धा को आरोपित कर देती थी।

जज साहब साँवले रंग के नाटे, चकले, वृहदाकार मनुष्य थे। उनकी लम्बी नाक और छोटी-छोटी आँखे अनायास ही मुसकराती मालूम देती थीं। पहले यह महाशय राष्ट्र के उत्साही सेवक थे और कांग्रेस के किसी प्रान्तीय जलसे के सभापति हो चुके थे· पर इधर तीन साल से वह जज हो गये थे। अतएव अब राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक् रहते थे, पर जाननेवाले जानते थे कि वह अब भी पत्रों में नाम बदलकर अपने राष्ट्रीय विचारों का प्रतिपादन करते रहते थे। उनके विषय में कोई शत्रु भी यह कहने का साहस नहीं कर सकता था कि वह किसी दबाव या भय से न्याय-पथ से जौ भर भी विचलित हो सकते हैं। उनकी यही न्याय-परता इस समय भिखारिन की रिहाई मे बाधक हो रही थी।

जज साहब ने पूछा—तुम्हारा नाम?

भिखारिन ने कहा—भिखारिन!

'तुम्हारे पिता का नाम?'

'पिता का नाम बताकर मैं उन्हें कलंकित नहीं करना चाहती।'

'घर कहाँ है?'

भिखारिन ने दुःखी कंठ से कहा—पूछकर क्या कीजियेगा। आपको इससे क्या काम है।

'तुम्हारे ऊपर यह अभियोग है कि तुमने ३ तारीख को दो अंग्रेज़ों को छुरे से ऐसा ज़ख्मी किया कि दोनो उसी दिन मर गये। तुम्हें यह अपराध स्वीकार है?'

भिखारिन ने निश्शंक भाव से कहा—आप उसे अपराध कहते है, मैं अपराध नहीं समझती।

'तुम मारना स्वीकार करती हो?'

'गवाहो ने झूठी गवाही थोड़े ही दी होगी।'

'तुम्हे अपने विषय मे कुछ कहना है?'

भिखारिन ने स्पष्ट स्वर में कहा—मुझे कुछ नही कहना है। अपने प्राणो को बचाने के लिए मैं कोई सफाई नही देना चाहती। मै तो यह सोचकर प्रसन्न हूॅ कि जल्द जीवन का अन्त हो जायगा। मै दीन, अबला हूॅ। मुझे इतना ही याद है कि कई महीने पहले मेरा सर्वस्व लूट लिया गया और उसके लूटे जाने के बाद मेरा जीना वृथा है। मैं उसी दिन मर चुकी। मै आपके सामने खडी बोल रही हूॅ, पर इस देह मे आत्मा नही है। उसे मैं ज़िन्दा नहीं कहती, जो किसी को अपना मुॅह न दिखा सके। मेरे इतने भाई-बहन व्यर्थ मेरे लिए इतनी दौड-धूप और खरच-बरच कर रहे हैं। कलंकित होकर जीने से मर जाना कहीं अच्छा है। मै न्याय नही माँगती, दया नहीं माँगती, मै केवल प्राण-दण्ड माँगती हूॅ। हाँ, अपने भाई-बहनो से इतनी विनती करूँगी कि मेरे मरने के बाद मेरी काया का निरादर न करना, उसे छूने से घिन मत करना, भूल जाना कि यह किसी अभागिन पतिता की लाश है। जीते-जी मुझे जो चीज़ नहीं मिल सकती, वह मुझे मरने के पीछे दे देना। मैं साफ़ कहती हूॅ कि मुझे अपने किये पर रज नहीं है, पछतावा नहीं है। ईश्वर न करे कि मेरी किसी बहन की ऐसी गति हो, लेकिन हो जाय तो उसके लिए इसके सिवाय कोई राह नहीं है। आप सोचते होंगे, जब यह मरने के लिए इतनी उतावली है, तो अब तक जीती क्यों रही। इसका कारण मै आपसे क्या बताऊँ। जब मुझे होश आया और मैंने अपने सामने दो आदमियो को तडपते देखा, तो मै डर गई। मुझे कुछ सूझ ही न पडा कि मुझे क्या करना चाहिये। उसके बाद भाइयो बहनो की सज्जनता ने मुझे मोह के बन्धन में जकड दिया, और अब तक मैं अपने को इस धोखे में डाले हुए हूॅ कि शायद मेरे मुख से कालिख छूट गई और अब मुझे भी और बहनों की तरह विश्वास और सम्मान मिलेगा, लेकिन मन की मिठाई से किसी का पेट भरा है? आज अगर सरकार मुझे छोड भी दे, मेरे भाई बहनें मेरे गले में फूलों की माला भी डाल दें, मुझ पर अशर्फियो की बरखा भी की जाय, तो क्या यहाँ से मैं अपने घर जाऊँगी?

मैं विवाहिता हूँ, मेरा एक छोटा-सा बच्चा है। क्या मैं उस बच्चे को अपना कह सकती हूँ ? क्या अपने पति को अपना कह सकती हूँ ? कभी नहीं। बच्चा मुझे देखकर मेरी गोद के लिए हाथ फैलायेगा, पर मैं उसके हाथों को नीचा कर दूँगी और आँखों में आँसू भरे मुँह फेरकर चली जाऊँगी। पति मुझे क्षमा भी कर दे। मैंने उसके साथ कोई विश्वासघात नहीं किया है। मेरा मन अब भी उसके चरणों से लिपट जाना चाहता है, लेकिन मैं उसके सामने ताक नहीं सकती। वह मुझे खींच भी ले जाय, तब भी मैं उस घर मे पाँव न रखूँगी। इस विचार से मैं अपने मन को सन्तोष नहीं दे सकती कि मेरे मन मे पाप न था। इस तरह तो अपने मन को वह समझाये, जिसे जीने की लालसा हो। मेरे हृदय से यह बात नहीं जा सकती कि तू अपवित्र है, अछूत है। कोई कुछ कहे, कोई कुछ सुने। आदमी को जीवन क्यों प्यारा होता है ? इसलिए नहीं कि वह सुख भोगता है। जो सदा दुख भोगा करते हैं और रोटियो को तरसते हैं, उन्हें जीवन कुछ कम प्यारा नहीं होता। हमें जीवन इसलिए प्यारा होता है कि हमे अपनों का प्रेम और दूसरो का आदर मिलता है। जब इन दो में से एक के मिलने की भी आशा नहीं, तो जीना वृथा है। अपने मुझसे अब भी प्रेम करें, लेकिन वह दया होगी, प्रेम नहीं। दूसरे अब भी मेरा आदर करें, लेकिन वह भी दया होगी, आदर नहीं। वह आदर और प्रेम अब मुझे मरकर ही मिल सकता है। जीवन में तो मेरे लिए निन्दा और बहिष्कार के सिवा और कुछ नहीं है। यहाँ मेरी जितनी बहनें और जितने भाई हैं, उन सबसे मैं यही भिक्षा माँगती हूँ, कि उस समाज के उद्धार के लिए भगवान से प्रार्थना करें, जिसमें ऐसे नर-पिशाच उत्पन्न होते हैं।

भिखारिन का बयान समाप्त हो गया। अदालत के उस बड़े कमरे में सन्नाटा छाया हुआ था। केवल दो-चार महिलाओं की सिसकियों की आवाज सुनाई देती थी। महिलाओं के मुख गर्व से चमक रहे थे। पुरुषों के मुख लज्जा से मलिन थे। अमरकान्त सोच रहा था, गोरों को ऐसा दुस्साहस इसीलिए तो हुआ कि वह अपने को इस देश का राजा समझते हैं। शान्ति कुमार ने मन-ही-मन एक व्याख्यान की रचना कर डाली थी। जिसका विषय था—'स्त्रियों पर पुरुषों के अत्याचार।' सुखदा सोच रही थी—या

छूट जाती, तो मै इसे अपने घर मे रखती और इसकी सेवा करती। रेणुका उसके नाम पर एक स्त्री-औषधालय बनवाने की कल्पना कर रही थी।

सुखदा के समीप ही जज साहब की धर्मपत्नी बैठी हुई थीं। वह बडी देर से इस मुकदमे के सम्बन्ध में कुछ बातचीत करने को उत्सुक हो रही थी, पर अपने समीप बैठी हुई स्त्रियों की अविश्वास-पूर्ण दृष्टि देखकर—जिससे वे उसे देख रही थीं—उन्हे मुँह खोलने का साहस न होता था।

अन्त को उनसे न रहा गया। सुखदा से बोली—यह स्त्री बिलकुल निरपराध है।

सुखदा ने कटाक्ष किया—जब जज साहब भी ऐसा समझे।

'मैं तो आज उनसे साफ-साफ कह दूँगी, कि अगर तुमने इस औरत को सज़ा दी, तो मै समझूँगी, तुमने अपने प्रभुओं का मुँह देखा।'

सहसा जज साहब ने खडे होकर पञ्चों को थोड़े-से शब्दो में इस मुक़दमे में अपनी सम्मति देने का आदेश दिया और खुद कुछ काग़ज़ो को उलटने-पलटने लगे। पञ्च लोग पीछेवाले कमरे में जाकर थोडी देर बातें करते रहे और लौटकर अपनी सम्मति दे दी। उनके विचार में अभियुक्ता निरपराध थी। जज साहब ज़रा-सा मुसकराये और कल फ़ैसला सुनाने का वादा करके उठ खड़े हुए।

११

सारे शहर में कल के लिए दोनो तरह की तैयारियाँ होने लगीं—हाय-हाय की भी और वाह-वाह की भी। काली झंडियाँ भी बनीं और फूलो की डालियाँ भी जमा की गईं; पर आशावादी कम थे, निराशावादी ज्यादा। गोरो का ख़ून हुआ है। जज ऐसे मामले मे भला क्या इन्साफ़ करेगा, क्या बंधा हुआ है। शांतिकुमार और सलीम तो खुल्लम-खुल्ला कहते फिरते थे कि जज ने फाँसी की सज़ा दे दी। कोई ख़बर लाता था—फ़ौज की एक पूरी रेजिमेंट कल

अदालत में तलब की गई है। कोई फ़ौज तक न जाकर, सशस्त्र पुलीस तक ही रह जाता था। अमरकान्त को फौज के बुलाये जाने का विश्वास था।

दस बजे रात को अमरकान्त सलीम के घर पहुँचा। अभी यहाँ से घण्टे ही भर पहले गया था। सलीम ने चिंतित होकर पूछा—कैसे लौट पडे भाई, क्या कोई नई बात हो गई?

अमर ने कहा—एक बात सूझ गई। मैंने कहा तुम्हारी राय भी ले लूँ। फाँसी की सजा पर ख़ामोश रह जाना, तो बुज़दिली है। किचलू साहब (जज) को सबक़ देने की ज़रूरत होगी, ताकि उन्हें भी मालूम हो जाय, कि नौजवान भारत इंसाफ़ का ख़ून देखकर ख़ामोश नहीं रह सकता। सोशल बायकाट कर दिया जाय। उनके महाराज को मैं रख लूँगा, कोचमैन को तुम रख लेना। बचा को पानी भी न मिले। जिधर से निकले, उधर तालियाँ बजें।

सलीम ने मुसकिराकर कहा—सोचते-सोचते सोची भी तो वही बनियों की बात।

'मगर और कर ही क्या सकते हो।'

'इस बायकाट से क्या होगा। कोतवाल को लिख देगा, बीस महाराज और कोचवान हाज़िर कर दिये जायँगे।'

'दो-चार दिन परेशान तो होंगे हज़रत।'

'बिलकुल फ़ज़ूल-सी बात है। अगर सबक़ ही देना है, तो ऐसा सबक़ दो, जो कुछ दिन हज़रत को याद रहे। एक आदमी ठीक कर लिया जाय जो ऐन उस वक़्त, जब हज़रत फ़ैसला सुनकर बैठने लगें, एक जूता ऐसे निशाने से चलाये कि मुँह पर लगे।'

अमरकान्त ने क़हक़हा मारकर कहा—बड़े मसख़रे हो यार।

'इसमें मसख़रेपन की क्या बात है?'

'तो क्या सचमुच तुम जूते लगवाना चाहते हो?'

'जी हाँ, और क्या मज़ाक़ कर रहा हूँ। ऐसा सबक़ देना चाहता हूँ, कि फिर हज़रत यहाँ मुँह न दिखा सकें।'

अमरकान्त ने सोचा—कुछ भद्दा काम तो है ही; पर बुराई क्या है। बातों के देवता कहीं बातों से मानते हैं। बोला—अच्छी बात है, देखी जायगी; पर ऐसा आदमी कहाँ मिलेगा?

सलीम ने उसकी सरलता पर मुसकराकर कहा—आदमी तो ऐसे मिल सकते हैं, जो राह चलते गर्दन काट लें। यह कौन-सी बडी बात है। किसी बदमाश को दो सौ रुपये दे दो, बस। मैंने तो कालेखाँ को सोचा है।

'अच्छा वह! उसे तो मैं एक बार अपनी दूकान पर फटकार चुका हूँ।'

'तुम्हारी हिमाकत थी। ऐसे दो चार आदमियों को मिलाये रहना चाहिये। वक्त पर इनसे बडा काम निकलता है। मै और सब बातें तय कर लूँगा; पर रुपए की फिक्र तुम करना। मैं तो अपना बजट पूरा कर चुका।'

'अभी तो महीना शुरू हुआ है भाई।'

'जी हाँ, यहाँ शुरू ही मे खत्म हो जाते हैं। फिर नोच-खसोट पर चलती है। कहीं अम्मा से १०) उडा लाये, कहीं अब्बा जान से किताब के बहाने से दस-पाँच ऐंठ लिये। पर २००) की थैली ज़रा मुशकिल से मिलेगी। हाँ, तुम इन्कार कर दोगे, तो मजबूर होकर अम्माँ का गला दबाऊँगा।'

अमर ने कहा—रुपए का कोई गम नहीं। मै जाकर लिए आता हूँ।

सलीम ने इतनी रात गये रुपए लाना मुनासिब न समझा। बात कल के लिए उठा रखी गई। प्रातःकाल अमर रुपए लायेगा और कालेखाँ से बात-चीत पक्की कर ली जायगी।

अमर घर पहुँचा, तो साढ़े दस बज रहे थे। द्वार पर बिजली जल रही थी। बैठक मे लालाजी दो-तीन पण्डितो के साथ बैठे बातें कर रहे थे। अमरकान्त को शङ्का हुई, इतनी रात गये यह जग-जग किस लिए है। कोई नया शिगूफा तो नहीं खिला?

लालाजी ने उसे देखते ही डाँटकर कहा—तुम कहाँ घूम रहे हो जी! दस बजे के निकले-निकले आधी रात को लौटे हो। ज़रा जाकर लेडी डाक्टर को बुला लो, वही जो बडे अस्पताल मे रहती है। अपने साथ ही लिये हुए आना।

अमरकान्त ने डरते-डरते पूछा—क्या किसी की तबीयत...

समरकान्त ने बात काटकर कड़े स्वर मे कहा—क्या बक-बक करते हो, मै जो कहता हूँ वह करो। तुम लोगों ने तो व्यर्थ ही संसार में जन्म लिया। यह मुक़दमा क्या हो गया, सारे घर के सिर जैसे भूत सवार हो गया। चटपट जाओ!

अमर को फिर कुछ पूछने का साहस न हुआ। घर में भी न जा सका धीरे से सडक पर आया और बाइसिकिल पर बैठ ही रहा था कि भीतर से सिल्लो निकल आई। अमर को देखते ही बोली—अरे भैया, सुनो कहाँ जाते हो बहूजी बहुत बेहाल हैं कब से तुम्हें बुला रही हैं। सारी देह पसीने से तर हो रही है। देखो भैया, मैं सोने की कण्ठी लूँगी। पीछे से हीला-हवाला न करना।

अमरकान्त समझ गया। बाइसिकिल से उतर पड़ा और हवा की भाँति झपटा हुआ अन्दर जा पहुँचा। वहाँ रेणुका, एक दाई, पड़ोस की एक ब्राह्मणी और नैना आँगन में बैठी हुई थीं। बीच में एक ढोलक रखी हुई थी। कमरे में सुखदा प्रसव-वेदना से हाय-हाय कर रही थी।

नैना ने दौड़कर अमर का हाथ पकड़ लिया और रोती हुई बोली—तुम कहाँ थे भैया, भाभी बड़ी देर से बेचैन हैं!

अमर के हृदय में आँसुओं की ऐसी लहर उठी, कि वह रो पड़ा। सुखदा के कमरे के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया, पर अन्दर पाँव न रख सका। उसका हृदय फटा जाता था।

सुखदा ने वेदना-भरी आँखों से उसकी ओर देखकर कहा—अब नहीं बचूँगी। हाय! पेट में जैसे कोई बर्छी चुभो रहा है। मेरा कहा-सुना माफ करना।

रेणुका ने दौड़कर अमरकान्त से कहा—तुम यहाँ से जाओ भैया! तुम्हें देखकर वह और भी बेचैन होगी। किसी को भेज दो, लेडी डाक्टर को बुला लावे। जी कड़ा करो, समझदार होकर रोते हो।

सुखदा बोली—नहीं अम्मा, उनसे कह दो जरा यहाँ बैठ जायँ। मैं अब न बचूँगी। हाय भगवान!

रेणुका ने अमर को डाँटकर कहा—मैं तुमसे कहती हूँ, यहाँ से चले जाओ, और तुम खड़े रो रहे हो। जाकर लेडी डाक्टर को बुलवाओ।

अमरकान्त रोता हुआ बाहर निकला और जनाने अस्पताल की ओर चला; पर रास्ते में भी रह-रहकर उसके कलेजे में हूक-सी उठती रही। सुखदा की वह ...-भरी मूर्ति आँखों के सामने फिरती रही।

लेडी डाक्टर मिस हूपर को अकसर कुसमय बुलावे आते रहते थे। रात की उसकी फीस दुगुनी थी। अमरकान्त डर रहा था; कि कहीं बिगड़े न, कि इतनी रात गये क्यों आये, लेकिन मिस हूपर ने सहर्ष उसका स्वागत किया और मोटर लाने की आज्ञा देकर उससे बातें करने लगी।

'यह पहला ही बच्चा है?'

'जी हाँ।'

'आप रोयें नहीं। घबडाने की कोई बात नहीं। पहली बार ज्यादा दर्द होता है। और बहुत दुर्बल तो नहीं हैं?'

'आज-कल तो बहुत दुबली हो गई हैं।'

'आपको और पहले आना चाहिये था।'

अमर के प्राण सूख गये। वह क्या जानता था, आज ही यह आफत आनेवाली है, नहीं कचहरी से सीधे घर आता।

मेम साहबा ने फिर कहा—आप लोग अपनी लेडियों को कोई एक्सरसाइज़ नहीं करवाते। इसीलिए दर्द ज्यादा होता है। अन्दर के स्नायु बँधे रह जाते हैं न।

अमरकान्त ने सिसककर कहा—मैडम, अब तो आप ही की दया का भरोसा है।

'मै तो चलती हूँ, लेकिन शायद सिविल सर्जन को बुलाना पड़े।'

अमर ने भयातुर होकर कहा—कहिये तो उनको भी लेता चलूँ?

मेम ने उसकी ओर दया-भाव से देखा—नहीं, अभी नहीं। पहले मुझे चलकर देख लेने दो।

अमरकान्त को आश्वासन न हुआ। उसने भय-कातर स्वर मे कहा—मैडम, अगर सुखदा को कुछ हो गया, तो मैं भी मर जाऊँगा।

मेम ने चिन्तित होकर पूछा—तो क्या, हालत अच्छी नहीं है?

'दर्द बहुत हो रहा है।'

'हालत तो अच्छी है?'

'चेहरा पीला पड गया है, पसीना . '

'हम पूछते हैं हालत कैसी है? उसका जी तो नही डूब रहा है? हाथ-पाँव तो ठंडे नहीं हो गये हैं?'

मोटर तैयार हो गई। मेम साहबा ने कहा—तुम भी आकर बैठ जाओ साइकिल कल हमारा आदमी दे आयेगा।

अमर ने दीन आग्रह के साथ कहा—आप चलें, मैं ज़रा सिविल सर्जन पास होता आऊँ। बुलानाले पर लाला समरकान्त का मकान .

'हम जानते हैं।'

मेम साहबा तो उधर चलीं, अमरकान्त सिविल सर्जन को बुलाने चला ग्यारह बज गये थे। सड़कों पर भी सन्नाटा था। और पूरे तीन मील मंज़िल थी। सिविल सर्जन छावनी में रहता था। वहाँ पहुँचते-पहुँचते बा का अमल हो आया। सदर फाटक खुलवाने, फिर साहब को इत्तला कर में एक घंटे से ज्यादा लग गया। साहब उठे तो; पर जामे से बाहर। गर हुए बोले—हम इस वक्त नहीं जा सकता।

अमर ने निश्शंक होकर कहा—आप अपनी फ़ीस ही तो लेंगे।

'हमारा रात का फ़ीस १००) है।'

'कोई हरज़ नहीं।'

'तुम फ़ीस लाया है?'

अमर ने डाँट बताई—आप हरेक से पेशगी फीस नहीं लेते। ला समरकान्त उन आदमियों में नहीं हैं जिन पर १००) का भी विश्वास न कि जा सके। वह इस शहर के सबसे बड़े साहूकार हैं। मैं उनका लड़का हूँ।

साहब कुछ ठंढे पड़े। अमर ने उनको सारी कैफ़ियत सुनाई, तो च पर तैयार हो गये। अमर ने साइकिल वहीं छोड़ी और साहब के साथ मो में जा बैठा। आध घण्टे में मोटर बुलानाले जा पहुँची। अमरकान्त कुछ दूर से ही शहनाई की आवाज सुनाई दी। बन्दूकें छूट रही थीं। उ हृदय आनन्द से फूल उठा।

द्वार पर मोटर रुकी, तो लाला समरकान्त ने आकर डाक्टर को किया और बोले—हुज़ूर के अक़बाल से सब चैन-चान है। पोते ने जन्म लि

डाक्टर और लेडी हूपर में कुछ बातें हुईं, तब डाक्टर ने फीस ले व चल दिये।

उनके जाने के बाद लालाजी ने अमरकान्त को आड़े हाथों लिया। मुफ्त मे १००) की चपत पडी। अमरकान्त ने झल्लाकर कहा—आप मुझसे रुपये ले लीजियेगा। आदमी से भूल हो ही जाती है। ऐसे अवसर पर मै रुपए का मुह नहीं देखता।

किसी दूसरे अवसर पर अमरकान्त इस फटकार पर घण्टो बिसूरा करता, पर इस वक्त उसका मन उत्साह और आनन्द से भरा हुआ था। भरे हुए गेंद पर ठोकरो का क्या असर। उसके जी मे तो आ रहा था, इस वक्त क्या लुटा दूॅ। वह अब एक पुत्र का पिता है! अब कौन उससे हेकडी जता सकता है! वह नवजात शिशु जैसे स्वर्ग से उसके लिए आशा और अमरता का आशीर्वाद लेकर आया है। उसे देखकर अपनी आँखे शीतल करने के लिए वह विकल हो रहा था। ओहो! इन्हीं आँखों से वह उस देवता के दर्शन करेगा!

लेडी हूपर ने उसे प्रतीक्षा-भरी आँखो से ताकते देखकर कहा—बाबूजी, आप यो बालक को नहीं देख सकेंगे। आपको बडा सा इनाम देना पड़ेगा।

अमर ने सम्पन्न नम्रता के साथ कहा—बालक तो आपका है। मै तो केवल आपका सेवक हूॅ। ज़च्चा की तबीयत कैसी है?

'बहुत अच्छी। अभी सो गई है।'

'बालक खूब स्वस्थ है?'

'हाँ, अच्छा है। बहुत सुन्दर। गुलाब का पुतला-सा।'

यह कहकर सौरगृह मे चली गई। महिलाऍ तो गाने-बजाने में मगन थीं। महल्ले की पचासों स्त्रियाँ जमा हो गई थीं और उनका सयुक्त स्वर, जैसे एक रस्सी की भाँति स्थूल होकर अमर के गले को बाँधे लेता था। उसी वक्त लेडी हूपर ने बालक को गोद मे लेकर उसे सौरगृह की तरफ आने का इशारा किया। [अमर] उमंग से भरा हुआ चला; पर सहसा उसका मन एक विचित्र भय से [कातर] हो उठा। वह आगे न बढ सका। वह पापी मन लिये हुए इस वरदान [को] कैसे ग्रहण कर सकेगा। वह इस वरदान के योग्य है ही कब? उसने इसके [लिए] कौन सी तपस्या की है? यह ईश्वर की अपार दया है, जो उन्होंने यह [वरदान] तो ठहे उसे प्रदान की। तुम कैसे दयालु हो भगवान!

श्यामल क्षितिज के गर्भ से निकलनेवाली बाल-ज्योति की भाँति अमरकान्त को अपने अन्तःकरण की सारी क्षुद्रता, सारी कलुषता के भीतर से एक प्रकाश-सा निकलता हुआ जान पड़ा, जिसने उसके जीवन को रजत शोभा प्रदान कर दी। दीपकों के प्रकाश मे, संगीत के स्वरों मे, गगन की तारिकाओं में, उसी शिशु की छवि थी, उसी का माधुर्य था, उसी का नृत्य था।

सिल्लो आकर रोने लगी। अमर ने पूछा—तुझे क्या हुआ है? क्यों रोती है?

सिल्लो बोली—मेम साहब ने मुझे भैया को नहीं देखने दिया। दुत्कार दिया। क्या मैं बच्चे को नजर लगा देती। मेरे बच्चे थे, मैंने भी बच्चे पाले है। मैं ज़रा देख लेती तो क्या होता।

अमर ने हँसकर कहा—तू कितनी पागल है सिल्लो! उसने इसलिए मना किया होगा कि कहीं बच्चे को हवा न लग जाय। इन अँग्रेज़ डाक्टरनियों के नखरे भी तो निराले होते हैं। समझती-समझाती नहीं, तरह-तरह के नखरे बघारती हैं; लेकिन उनका राज तो आज ही के दिन है न? फिर तो अकेली दाई रह जायगी। तू ही तो बच्चे को पालेगी। दूसरा कौन पालने वाला बैठा हुआ है।

सिल्लो की आँसू-भरी आँखें मुसकिरा पड़ीं। बोली—मैंने दूर से देख लिया। बिलकुल तुमको पड़ा है। रग बहूजी का है। मैं कंठी ले लूँगी, कहे देती हूँ!

दो बज रहे थे। उसी वक्त लाला समरकान्त ने अमर को बुलाया और बोले—नींद तो अब क्या आयेगी। बैठकर कल के उत्सव का एक तख़मीना बना लो। तुम्हारे जन्म मे तो कारबार फैला न था, नैना कन्या थी। २५ वर्ष के बाद भगवान ने यह दिन दिखाया है। कुछ लोग नाच-मुजरे का विरोध करते हैं। मुझे तो इसमे कोई हानि नहीं दीखती। ख़ुशी के यही अवसर है, चार भाई-बंद, यार-दोस्त आते हैं, गाना-बजाना सुनते हैं, प्रीति भोजन में शरीक होते हैं। यही जीवन के सुख हैं। और इस संसार में क्या रखा है।

अमर ने आपत्ति की—लेकिन रण्डियो का नाच तो ऐसे शुभ अवसर पर कुछ शोभा नहीं देता।

लालाजी ने प्रतिवाद किया—तुम अपना विज्ञान यहाँ न घुसेड़ो। मैं तुमसे सलाह नहीं पूछ रहा हूँ। कोई प्रथा चलती है, तो उसका आधार भी होता है। श्रीरामचन्द्र के जन्मोत्सव मे अप्सराओ का नाच हुआ था। हमारे समाज मे इसे शुभ माना गया है।

अमर ने कहा—अँग्रेजों के समाज में तो इस तरह के जलसे नहीं होते।

लालाजी ने बिल्ली की तरह चूहे पर झपटकर कहा—अँग्रेजों के यहाँ रण्डियाँ नहीं, घर की बहू-बेटियाँ नाचती है, जैसे हमारे चमारो में होता है। बहू-बेटियो को नचाने से तो यह कहीं अच्छा है, कि रण्डियाँ नाचें। कम-से-कम मैं और मेरी तरह के और बुड्ढे अपनी बहू बेटियो को नचाना कभी न पसन्द करेंगे।

अमरकान्त को कोई जवाब न सूझा। सलीम और दूसरे ... आयेंगे। ख़ासी चहल-पहल रहेगी। उसने जिद भी की तो ... अमरकान्त लालाजी मानने के नहीं। फिर एक उसके करने से तो नाच ... का उसके पास नहीं जाता।

वह बैठकर तख़मीना लिखने लगा।

१२

स... ...ते—आज इस लौंडे ...ऊँ। इतने दिनो तक ...ब फ़ैसले का दिन आया ... जाने हम लोगों मे अपनी ...ा, इस जन्मोत्सव में क्या रखा है। ...शियाँ मनाना, तो विलासियो का काम ...लीम ने मामूल से ~आदमी वह है, जो जीवन का एक लक्ष्य और रात का ग़र्क़ पड़ा रहे। कभी कर्तव्य से मुँह न मोड़े। रक़म कुछ ...रह जिधर हवा उड़ा ले जाय, उधर चला ... कहा—मैयप को तैयार हो? हमें और कुछ नहीं करना है। ...पर पचास गिनकर लगाऊँ। भिखारिन को जुलूस के साथ गंगा-तट तक खाना ...बच्चों के खाने-पीने के लिए ...ान करेंगे और अपने घर चले जायँगे। सज़ा हो

गई, तो उसे बधाई देकर विदा करना होगा। आज ही शाम को 'तालीमी इसलाह' पर मेरी स्पीच होगी। उसकी भी फ़िक्र करनी है। तुम भी कुछ बोलोगे ?

सलीम ने सकुचाते हुए कहा—मै ऐसे मसले पर क्या बोलूँगा ?

'क्यों, हर्ज क्या है। मेरे ख्यालात तुम्हे मालूम हैं। यह किराये की तालीम हमारे कैरेक्टर को तबाह किये डालती है। हमने तालीम को भी एक व्यापार बना लिया है। व्यापार मे ज्यादा पूँजी लगाओ, ज्यादा नफ़ा होगा। तालीम मे भी ज़्यादा ख़र्च करो, ज्यादा ऊँचा ओहदा पाओगे। मै चाहता हूँ, ऊँची-से-ऊँची तालीम सबके लिए मुआफ हो, ताकि ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी ऊँची-से-ऊँची लियाकत हासिल कर सके और ऊँचे-से ऊँचा ओहदा पा सके। युनिवर्सिटी के दरवाज़े मैं सबके लिए खुले रखना चाहता हूँ। सारा ख़र्च, गवर्नमेंट पर पडना चाहिये। मुल्क को तालीम की उससे कहीं ज्यादा ज़रूरत है, जितनी फौज की।'

सलीम ने शंका की—फौज न हो, तो मुल्क की हिफाजत कौन करे ?

डाक्टर साहब ने गभीरता के साथ कहा—मुल्क की हिफाजत करेंगे हम और तुम मुल्क के दस करोड जवान, जो अब भी बहादुरी और हिम्मत में दुनिया की किसी क़ौम से पीछे नहीं हैं। उसी तरह, जैसे हम और तुम रात को चोरों के आ जाने पर पुलीस को नहीं पुकारते, बल्कि अपनी-अपनी लकड़ियाँ लेकर घरो से निकल पड़ते हैं।

सलीम ने पीछा छुडाने के लिए कहा—मै बोल तो न सकूँगा; लेकिन आऊँगा ज़रूर।

सलीम ने मोटर मँगवाई और दोनो आदमी कचहरी चले। आज वहाँ और दिनों से कहीं ज़्यादा भीड थी, पर जैसे बिन दूल्हा की बारात हो। कहीं कोई शृंखला न थी। सौ-सौ पचास-पचास की टोलियाँ जगह-जगह खड़ी या बैठी शून्य दृष्टि से ताक रही थीं। कोई बोलने लगता था, तो सौ-दो सौ आदमी इधर-उधर से आकर उसे घेर लेते थे। डाक्टर साहब को देखते ही हज़ारों आदमी उनकी तरफ़ दौड़े। डाक्टर साहब मुख्य कार्य-कर्त्ताओ को यह व्यवस्था समझाकर वकालतख़ाने की तरफ चले, तो देखा लाला सम है।

निमंत्रण-पत्र बाँट रहे हैं। वह उत्सव उस समय वहाँ सबसे आकर्षक विषय था। लोग बड़ी उत्सुकता से पूछ रहे थे, कौन-कौन-सी तवायफ़ें बुलाई गई है? भाँड भी है या नही? मासाहारियो के लिए भी कुछ प्रबन्ध है? एक जगह दस-बारह सज्जन नाच पर वाद-विवाद कर रहे थे। डाक्टर साहब को देखते ही एक महाशय ने पूछा—कहिये, आप उत्सव मे आयेंगे, या आपको कोई आपत्ति है?

डाक्टर शान्तिकुमार ने उपेक्षा-भाव से कहा—मेरे पास इससे ज़्यादा ज़रूरी काम है।

एक साहब ने पूछा— आख़िर आपको नाच से क्यो एतराज़ है?

डाक्टर ने अनिच्छा से कहा—इसलिए कि आप और हम नाचना ऐब समझते है। नाचना विलास की वस्तु नहीं, भक्ति और आध्यात्मिक आनन्द की वस्तु है, पर हमने इसे लज्जास्पद बना रखा है। देवियो को विलास और भोग की वस्तु बनाना अपनी माताओं और बहनो का अपमान करना है। हम सत्य से इतनी दूर हो गये हैं, कि उसका यथार्थ रूप भी हमे नहीं दिखाई देता। नृत्य जैसे पवित्र...

सहसा एक युवक ने समीप आकर डाक्टर साहब को प्रणाम किया। लम्बा-सा दुबला-पतला आदमी था, मुख सूखा हुआ, उदास, कपड़े मैले और जीर्ण, बालों पर गर्द पड़ी हुई। उसकी गोद मे एक साल भर का हृष्ट-पुष्ट बालक था, बड़ा चंचल, लेकिन कुछ डरा हुआ।

डाक्टर ने पूछा—तुम कौन हो? मुझसे कुछ काम है?

युवक ने इधर-उधर सशय-भरी आँखो से देखा, मानो इन आदमियो के सामने वह अपने विषय में कुछ कहना नहीं चाहता, और बोला—मैं तो ठाकुर हूँ। यहाँ से छः-सात कोस पर एक गाँव है महुली, वहीं रहता हूँ।

डाक्टर साहब ने उसे तीव्र नेत्रों से देखा, और समझ गये। बोले—अच्छा वही गाँव, जो सड़क के पश्चिम तरफ है। आओ मेरे साथ।

डाक्टर साहब उसे लिये हुए पासवाले बग़ीचे में चले गये और एक बेंच पर बैठकर उसकी ओर प्रश्न की निगाहों से देखा, कि अब वह उसकी कथा कहने को तैयार है।

युवक ने सकुचाते हुए कहा—इस मुकदमे में जो औरत है, वह इ
बालक की मा है। घर मे हम दो प्राणियो के सिवा और कोई नहीं है।
खेती-बारी करता हूँ। वह बाजार से कभी-कभी सौदा-सुलफ़ लाने चली जा
थी। उस दिन गाँववालो के साथ अपने लिए एक साड़ी लेने गई थी
लौटती बेर यह वारदात हो गई; गाँव के सब आदमी छोड़कर भाग गये। उ
दिन से वह घर नहीं गई। मैं कुछ नहीं जानता कहाँ घूमती रही। मैंने
उसकी खोज नहीं की। अच्छा ही हुआ कि वह उस समय घर नहीं गई, न
तो हम दोनों मे एक की या दोनो की जान जाती। इस बच्चे के लिए मु
विशेष चिन्ता थी। बार-बार मा को खोजता, पर मै इसे बहलाता रहता था
इसी की नींद सोता और इसी की नींद जागता। पहले तो मालूम होता थ
बचेगा ही नहीं, लेकिन भगवान् की दया थी। धीरे-धीरे मा को भूल गया
पहले मै इसका बाप था, अब तो मा बाप दोनों मैं ही हूँ। बाप कम,
ज्यादा। मैंने मन में समझा था, वह कहीं डूब मरी होगी। गाँव के लो
कभी कभी कहते—उसकी तरह की एक औरत छावनी की ओर है, पर मैं का
उन पर विश्वास न करता।

जिस दिन मुझे खबर मिली; कि लाला समरकान्त की दूकान पर एक और
ने दो गोरो को मार डाला और उस पर मुक़दमा चल रहा है, तब मै सम
गया कि वही है। उस दिन से हर पेशी मे आता हूँ और सबके पीछे ख
रहता हूँ। किसी से कुछ कहने की हिम्मत नहीं होती। आज मैंने समझा
अब उससे सदा के लिए नाता टूट रहा है; इसलिए बच्चे को लेता आया, कि
इसके देखने की उसे लालसा न रह जाय। आप लोगो ने तो बहुत खरच-खर
किया; पर भाग्य मे जो लिखा था, वह कैसे टलता। आपसे यही कहना है
कि जज साहब फैसला सुना चुकें, तो एक छिन के लिए उससे मेरी भेट क
दीजियेगा। मैं आपसे सत्य कहता हूँ बाबूजी, वह अगर बरी हो जाय तो
उसके चरण धो-धोकर पिऊँ और घर ले जाकर उसकी पूजा करूँ। मेरे भाई-ब
अब भी नाक-भौं सिकोडेंगे, पर जब आप लोगों जैसे बडे-बड़े आदमी मेरे प
में हैं, तो मुझे बिरादरी की परवाह नहीं।

शान्तिकुमार ने पूछा—जिस दिन उसका बयान हुआ, उस दिन तुम थे?

युवक ने सजल-नेत्र होकर कहा—हाँ बाबूजी, था। सबके पीछे द्वार पर
ा रो रहा था। यही जी मे आता था, कि दौडकर उसके चरणो से लिपट
ऊँ और कहूँ—मुन्नी, मैं तेरा सेवक हूँ, तू अब तक मेरी स्त्री थी, आज से मेरी
ी है। मुन्नी ने मेरे पुरखो को तार दिया बाबूजी, और क्या कहूँ।

शान्तिकुमार ने फिर पूछा—मान लो, आज वह छूट जाय, तो तुम उसे घर
जाओगे?

युवक ने पुलकित कंठ से कहा—यह पूछने की बात नही है बाबूजी। मैं
े आँखो पर बैठाकर ले जाऊँगा और जब तक जिऊँगा, उसका दास बना रहकर
पना जन्म सुफल करूँगा।

एक क्षण के बाद उसने बडी उत्सुकता से पूछा—क्या छूटने की कुछ आशा
बाबूजी?

'औरो को तो नहीं है, पर मुझे है।'

युवक डाक्टर साहब के चरणो पर गिरकर रोने लगा। चारो ओर निराशा
बातें सुनने के बाद आज उसने आशा का शब्द सुना है और यह निधि पाकर
सके हृदय की समस्त भावनाएँ मानो मगलगान कर रही हैं। और हर्ष के
तिरेक में मनुष्य क्या आँसुओ को संयत रख सकता है?

मोटर का हार्न सुनते ही दोनो ने कचहरी की तरफ़ देखा। जज साहब
ा गये। जनता का वह अपार सागर चारो ओर से उमडकर अदालत के कमरे
सामने जा पहुँचा। फिर भिखारिन लाई गई। जनता ने उसे देखकर
य-घोष किया। किसी-किसी ने पुष्प-वर्षा भी की। वकील, बैरिस्टर, पुलिस,
र्मचारी, अफ़सर सभी आ-आकर यथास्थान बैठ गये।

सहसा जज साहब ने एक उडती हुई निगाह से जनता को देखा। चारों
रफ़ सन्नाटा हो गया। असख्य आँखें जज साहब की ओर ताकने लगीं,
ानो कह रही थीं—आप ही हमारे भाग्य के विधाता हैं।

जज साहब ने संदूक़ से टाइप किया हुआ फैसला निकाला और एक बार
ाँसकर उसे पढने लगे। जनता सिमटकर और समीप आ गई। अधिकाश
ाग फैसले का एक शब्द भी न समझते थे; पर कान सभी लगाये हुए थे।
ावल और बताशों के साथ न जाने कब रुपए भी लूट में मिल जायँ।

कोई पन्द्रह मिनट तक जज साहब फैसला पढ़ते रहे, और जनता प्रतीक्षा से तन्मय होकर सुनती रही।

अन्त मे जज के मुख से निकला—यह सिद्ध है, कि मुन्नी ने हत्या की..

कितनो ही के दिल बैठ गये। एक दूसरे की ओर पराधीन नेत्रों देखने लगे।

जज ने वाक्य की पूर्ति की—'लेकिन यह भी सिद्ध है, कि उसने यह ह मानसिक अस्थिरता की दशा में की—इसलिए मैं उसे मुक्त करता हूँ।'

वाक्य का अन्तिम शब्द आनन्द की उस तूफ़ानी उमंग में डूब गया आनन्द, महीनों चिन्ता के बंधनों मे पडे रहने के बाद आज जो छूटा, तो छु हुए बछड़े की भाँति कुलाँटें मारने लगा। लोग मतवाले हो-होकर एक-दू के गले मिलने लगे। घनिष्ट मित्रों मे धौल-धप्पा होने लगा। कुछ लोगों अपनी-अपनी टोपियाँ उछालीं। जो मसख़रे थे, उन्हे जूते उछालने की सूझ सहसा मुन्नी, डाक्टर शान्तिकुमार के साथ, गभीर हास्य से अलंकृत, बा निकली, मानो कोई रानी अपने मंत्री के साथ आ रही है। जनता की वह उद्दडता शान्त हो गई। रानी के सम्मुख बेअदबी कौन कर सकता है!

प्रोग्राम पहले ही निश्चित था। पुष्प-वर्षा के पश्चात् मुन्नी के गले जयमाल डालना था। यह गौरव जज साहब की धर्मपत्नी को प्राप्त हुआ, इस फैसले के बाद जनता की श्रद्धा-पात्री हो चुकी थीं। फिर बैंड बजने लगा सेवा-समिति के दो सौ युवक केशरिये बाने पहने जुलूस के साथ चलने के लि तैयार थे। राष्ट्रीय सभा के सेवक भी ख़ाकी वर्दियाँ पहने झंडियाँ लिये ज हो गये। महिलाओं की सख्या एक हजार से कम न थी। निश्चित कि गया था, कि जुलूस गगा-तट तक जाय, वहाँ एक विराट सभा हो, मुन्नी को ए थैली भेंट दी जाय और सभा भग हो जाय।

मुन्नी कुछ देर तक तो शात भाव से यह समारोह देखती रही, फिर शान्ति कुमार से बोली—बाबूजी, आप लोगो ने मेरा जितना सम्मान किया, मैं उसके योग्य नही थी, अब मेरी आप से यही विनती है, कि मुझे हरद्वार या किसी दूसरे तीर्थ-स्थान भेज दीजिये। वहीं भिक्षा माँगकर यात्रियों की सेवा करके दि दूँगी। यह जुलूस और यह धूम-धाम मुझ-जैसी अभागिन के लिए शोभा

हीं देता। इन सभी भाई-बहनो से कह दीजिये अपने-अपने घर जायें। धूल मे पडी हुई थी। आप लोगो ने मुझे आकाश पर चढ़ा दिया। उससे ऊपर जाने की मुझमे सामर्थ्य नही है, मेरे सिर मे चक्कर आ जायगा। के यहीं से स्टेशन भेज दीजिये। आपके पैरो पड़ती हूँ।

शान्तिकुमार इस आत्म-दमन पर चकित होकर बोले—यह कैसे हो सकता बहन ; इतने स्त्री-पुरुष जमा है, इनकी भक्ति और प्रेम का तो विचार कीजिये। प जुलूस में न जायँगी, तो इन्हे कितनी निराशा होगी। मैं तो समझता कि यह लोग आपको छोड़कर कभी न जायँगे।

'आप लोग मेरा स्वाँग बना रहे हैं।'

'ऐसा न कहो बहन। तुम्हारा सम्मान करके हम अपना सम्मान कर रहे। और तुम्हे हरद्वार जाने की ज़रूरत क्या है। तुम्हारा पति तुम्हे अपने थ ले जाने के लिए आया हुआ है।'

मुन्नी ने आश्चर्य से डाक्टर की ओर देखा—मेरा पति! मुझे अपने साथ जाने के लिए आया हुआ है? आपने कैसे जाना?

'मुझसे थोड़ी देर पहले मिला था।'

'क्या कहता था?'

'यही कि मैं उसे अपने साथ ले जाऊँगा और उसे अपने घर की देवी मझूँगा।'

'उसके साथ कोई बालक भी था?'

'हाँ, तुम्हारा छोटा बच्चा उसकी गोद मे था।'

'बालक बहुत दुबला हो गया होगा?'

'नहीं, मुझे तो वह हृष्ट-पुष्ट दीखता था।'

'प्रसन्न भी था?'

'हाँ, खूब हँस रहा था।'

'अम्माँ-अम्माँ तो न करता होगा?'

'मेरे सामने तो नहीं रोया।'

'अब तो चाहे चलने लगा हो।'

'गोद में था ; पर ऐसा मालूम होता था, कि चलता होगा।'

'अच्छा, उसके बाप की क्या हालत थी? बहुत दुबले हो गये है?'

'मैंने उन्हें पहले कब देखा था। हाँ दु:खी ज़रूर थे। यहीं कहीं होगे कहो, तो तलाश करूँ। शायद ख़ुद आते हो।'

मुन्नी ने एक क्षण के बाद सजल-नेत्र होकर कहा—उन दोनो को मेरे पा न आने दीजियेगा बाबूजी। मैं आपके पैरो पड़ती हूँ। इन आदमियों कह दीजिये अपने-अपने घर जायँ। मुझे आप स्टेशन पहुँचा दीजिये। मैं आज ही यहाँ से चली जाऊँगी। पति और पुत्र के मोह मे पड़कर उनका सर्व नाश न करूँगी। मेरा यह सम्मान देखकर पतिदेव मुझे ले जाने पर तैया हो गये होगे; पर उनके मन मे क्या है, यह मै जानती हूँ। वह मेरे साथ रहकर सन्तुष्ट नहीं रह सकते। मैं अब इसी योग्य हूँ कि किसी ऐसी जगह चली जाऊँ, जहाँ मुझे कोई न जानता हो। वही मजूरी करके या भिक्षा माँगक अपना पेट पालूँगी।

वह एक क्षण चुप रही। शायद देखती थी, कि डाक्टर साहब क्या जवाब देते हैं। जब डाक्टर साहब कुछ न बोले, तो उसने ऊँचे, पर काँपते हुए स्वर मे लोगो से कहा—बहनो और भाइयो! आपने मेरा जो सत्कार किया है, इसके लिए आपकी कहाँ तक बड़ाई करूँ। आपने एक अभागिनी को तार दिया। अब मुझे जाने दीजिये। मेरा जुलूस निकालने के लिए हठ न कीजिये। मै इसी योग्य हूँ, कि अपना काला मुँह छिपाये किसी कोने में पड़ी रहूँ। इस योग्य नहीं हूँ, कि मेरी दुर्गति का महात्म्य किया जाय।

जनता ने बहुत शोर-गुल मचाया, लीडरो ने समझाया, देवियो ने आग्र किया; पर मुन्नी जुलूस पर राज़ी न हुई और बराबर यही कहती रही, कि मु स्टेशन पर पहुँचा दो। आख़िर मजबूर होकर डाक्टर साहब ने जनता को वि किया और मुन्नी को मोटर पर बैठाया।

मुन्नी ने कहा—अब यहाँ से चलिये और किसी दूर के स्टेशन पर ले चलि जहाँ यह लोग एक भी न हो।

शान्तिकुमार ने इधर-उधर प्रतीक्षा की आँखो से देखकर कहा—इत [illegible] न करो बहन, तुम्हारा पति आता ही होगा। जब यह लोग चले जायँ [illegible] वह ज़रूर आवेगा।

मुन्नी ने अशान्त भाव से कहा—मै उनसे नहीं मिलना चाहती बावूजी, कभी नहीं। उनके मेरे सामने आते ही मारे लज्जा के मेरे प्राण निकल जायँगे। मै सच कहती हूँ, मै मर जाऊँगी। आप मुझे जल्दी से ले चलिये। अपने बालक को देखकर मेरे हृदय में मोह की ऐसी आँधी उठेगी, कि मेरा सारा विवेक और विचार उसमे तृण के समान उड जायगा। उस मोह मे मै भूल जाऊँगी कि मेरा कलंक उसके जीवन का सर्वनाश कर देगा। मेरा मन न-जाने कैसा हो रहा है। आप मुझे जल्दी यहाँ से ले चलिये। मैं उस बालक को देखना नहीं चाहती, मेरा देखना उसका विनाश है।

शान्तिकुमार ने मोटर चला दी, पर दस ही बीस गज़ गये होंगे कि पीछे से मुन्नी का पति बालक को गोद मे लिये दौडता और 'मोटर रोको। मोटर रोको!' पुकारता चला आता था। मुन्नी की उस पर नज़र पडी। उसने मोटर की खिडकी से सिर निकालकर हाथ से मना करते हुए चिल्लाकर कहा—नहीं, नहीं, तुम मत आओ, मेरे पीछे मत आओ! ईश्वर के लिए मत आओ!

फिर उसने दोनों बाहे फैला दीं, मानो बालक को गोद में ले रही हो और मूर्च्छित होकर गिर पडी।

मोटर तेज़ी से चली जा रही थी, युवक ठाकुर बालक को लिये खड़ा रो रहा था और कई हज़ार स्त्री-पुरुष मोटर की तरफ़ ताक रहे थे।

१३

मुन्नी के बरी होने का समाचार आनन-फ़ानन सारे शहर में फैल गया। इस फैसले की आशा बहुत कम आदमियों को थी। कोई कहता था—जज साहब की स्त्री ने पति से लडकर यह फैसला लिखाया। रूठकर मैके चली जा रही थी। स्त्री जब किसी बात पर अड जाय, तो पुरुष कैसे 'नहीं' कर दे। कुछ लोगों का कहना था—सरकार ने जज साहब को हुक्म देकर यह फैसला

कराया है ; क्योंकि भिखारिन को सज़ा देने से शहर में दंगा हो जाने का भय था। अमरकान्त उस समय भोज के सरंजाम करने में व्यस्त था, पर यह ख़बर पा ज़रा देर के लिए सब कुछ भूल गया और इस फ़ैसले का सारा श्रेय ख़ुद लेने लगा। भीतर जाकर रेणुका देवी से बोला—आपने देखा अम्माँजी, मैं कहता न था, उसे बरी कराके दम लूँगा, वही हुआ। वकीलों और गवाहों के साथ कितनी माथा-पच्ची करनी पड़ी है, कि मेरा दिल ही जानता है। बाहर आकर मित्रों से और सामने के दूकानदारों से भी उसने यही डींग मारी।

एक मित्र ने कहा—पर औरत है बड़ी धुन की पक्की। शौहर के साथ न गई, न गई। बेचारा पैरों पड़ता रह गया।

अमरकान्त ने दार्शनिक विवेचना के भाव से कहा—जो काम ख़ुद न देखो, वही चौपट हो जाता है। मैं तो इधर फँस गया। उधर किसी से इतना भी न हो सका कि उस औरत को समझाता। मैं होता, तो मजाल थी कि वह यों चली जाती। मै जानता कि यह हाल होगा, तो सौ काम छोड़कर जाता और उसे समझाता। मैंने तो समझा डाक्टर साहब और वैसे ही आदमी है, मेरे न रहने से ऐसा क्या घी का घड़ा लुढ़का जाता है, लेकिन वहाँ किसी को क्या परवाह! नाम तो हो गया। काम हो या जहन्नुम मे जाय।

लाला समरकान्त ने नाच-तमाशे और दावत मे ख़ूब दिल खोलकर ख़र्च किया, वही अमरकान्त जो इन मिथ्या व्यवहारों की आलोचना करते कभी न थकता था, अब मुँह तक न खोलता था, बल्कि उलटे और बढ़ावा देता था—जो सम्पन्न हैं, वह ऐसे शुभ अवसर पर न ख़र्च करेंगे, तो कब करेंगे। धन की यही शोभा है। हाँ, घर फूँककर तमाशा न देखना चाहिये।

अमरकान्त को अब घर से विशेष घनिष्टता होती जाती थी। अब वह विद्यालय तो जाने लगा था, पर जलसों और सभाओं से जी चुराता रहता था। अब उसे लेन-देन से उतनी घृणा न थी। शाम-सवेरे बराबर दुकान पर आ बैठता और बड़ी तनदेही से काम करता। स्वभाव में कुछ कृपणता भी आ गई थी। दुःखी जनों पर उसे अब भी दया आती थी, पर वह दुकान की हुई कौड़ियो का अतिक्रमण न करने पाती। इस अल्पकाय शिशु ने

ऊँट के नन्हे-से नकेल की भाँति उसके जीवन का सचालन अपने हाथ में ले लिया था। मन-दीपक के सामने एक भुनगे ने आकर उसकी ज्योति को संकुचित कर दिया था।

तीन महीने बीत गये थे। संध्या का समय था। बच्चा पालने मे सो रहा था। सुखदा हाथ में पंखिया लिये एक मोढे पर बैठी हुई थी। कृशागी गर्भिणी विकसित मातृत्व के तेज और शक्ति से जैसे खिल उठी थी। उसके माधुर्य मे किशोरी की चपलता न थी, गर्भिणी की आलस्यमय कातरता न थी, माता का शान्त-तृप्त मंगलमय विलास था।

अमरकान्त कालेज से सीधे घर आया और बालक को सचिन्त नेत्रो से देखकर बोला—अब तो ज्वर नहीं है?

सुखदा ने धीरे से शिशु के माथे पर हाथ रखकर कहा—नहीं, इस समय तो नहीं जान पडता। अभी गोद मे सो गया था, तो मैने लिटा दिया।

अमर ने कुर्ते के बटन खोलते हुए कहा—मेरा तो आज वहाँ बिलकुल जी न लगा। मैं तो ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ, कि मुझे ससार की और कोई वस्तु न चाहिये, यह बालक कुशल से रहे। देखो कैसा मुसकरा रहा है।

सुखदा ने मीठे तिरस्कार से कहा—तुम्हीं ने देख देखकर नज़र लगा दी है।

'मेरा जी तो चाहता है, इसका चुम्बन ले लूँ।'

'नहीं-नहीं, सोते हुए बच्चों का चुम्बन न लेना चाहिये।'

सहसा किसी ने ड्योढी मे आकर पुकारा। अमर ने जाकर देखा, तो बुढिया पठानिन, लठिया के सहारे खडी है। बोला—आओ पठानिन, तुमने तो सुना होगा घर मे बच्चा हुआ है।

पठानिन ने भीतर आकर कहा—अल्लाह करे जुग-जुग जिये और मेरी उम्र पाये। क्यो बेटा, सारे शहर का नेवता हुआ और हम पूछे तक न गये? क्या हमीं सबसे गैर थे? अल्लाह जानता है, जिस दिन यह खुशखबरी सुनी, दिल से दुआ निकली कि अल्लाह इसे सलामत रखे।

अमर ने लज्जित होकर कहा—हाँ, यह ग़लती मुझसे हुई पठानिन, मुआफ करो। आओ, बच्चे को देखो। आज इसे न जाने क्यो बुख़ार हो आया है।

बुढ़िया दबे पाँव आँगन से होती हुई सामने के बरामदे मे पहुँची और बह को दुआएँ देती हुई बच्चे को देखकर बोली—कुछ नहीं बेटा, नज़र का फसाद है। मै एक ताबीज़ दिये देती हूँ, अल्लाह चाहेगा, तो अभी हँसने-खेलने लगेगा।

सुखदा ने मातृत्व-जनित नम्रता से बुढ़िया के पैरो को अंचल मे स्पर्श कि और बोली—चार दिन भी अच्छी तरह नही रहता माता। घर में कोई बड़ बूढी तो है नहीं। मैं क्या जानूँ, कैसे क्या होता है। मेरी अम्माँ हैं, वह रोज़ तो यहाँ नहीं आ सकती, न मै ही रोज़ उनके पास जा सकती हूँ।

बुढ़िया ने फिर आशीर्वाद दिया और बोली—जब काम पडे, मुझे बु लिया करो बेटा, मै और किस दिन के लिए जीती हूँ। ज़रा तुम मेरे सा चले चलो भैया, मै तावीज़ दे दूँ।

बुढिया ने अपने सलूके की जेब से एक रेशमी कुरता और टोपी निका और शिशु के सिरहाने रखते हुए बोली—यह मेरे लाल की नज़र है बेटा, इ मंज़ूर करो। मै और किस लायक़ हूँ। सकीना कई दिन से सीकर रखे हु थी। चला नहीं जाता बेटा, आज बडी हिम्मत करके आई हूँ।

सुखदा के पास सम्बन्धियो से मिले हुए कितने ही अच्छे-से-अच्छे कपडे र हुए थे; पर इस सरल उपहार से उसे जो हार्दिक आनन्द प्राप्त हुआ, वह औ किसी उपहार से न हुआ था, क्योंकि इसमें अमीरी का गर्व, दिखावे की इच्छ या प्रथा की शुष्कता न थी। इसमें एक शुभ-चिन्तक की आत्मा थी, प्रेम और आशीर्वाद था।

बुढिया चलने लगी, तो सुखदा ने उसे एक पोटली मे थोडी-सी मिठाई द पान खिलाये और बरौठे तक उसे विदा करने आई। अमरकान्त ने बाह आकर एक एक्का किया और बुढिया के साथ बैठकर तावीज़ लेने चला। गंं तावीज़ पर उसे विश्वास न था, पर वृद्धजनों के आशीर्वाद पर था, और उ तावीज़ को वह केवल आशीर्वाद समझ रहा था।

रास्ते में बुढिया ने कहा—मैंने तुमसे कुछ कहा था, वह तुम भूल गये बेटा

अमर सचमुच भूल गया था। शर्माता हुआ बोला—हाँ पठानिन, मु याद नहीं आया। मुआफ़ करो।

'वही सकीना के बारे में।'

अमर ने माथा ठोककर कहा—हाँ माता, मुझे बिलकुल ख़याल न रहा।

'तो अब ख़याल रखो बेटा। मेरे और कौन बैठा हुआ है, जिससे कहूँ। इधर सकीना ने और कई रूमाल बनाये हैं। कई टोपियों के पल्ले भी काढ़े हैं; पर जब चीज़ बिकती नहीं, तो दिल नहीं बढ़ता।'

'मुझे वह सब चीज़ें दे दो। मैं बिकवा दूँगा।'

'तुम्हें तकलीफ़ न होगी बेटा!'

'कोई तकलीफ नहीं। भला इसमें क्या तकलीफ़।'

अमरकान्त को बुढ़िया घर में ले गई। इधर उसकी दशा और भी हीन हो गई थी। रोटियों के भी लाले थे। घर की एक-एक अंगुल ज़मीन पर उसकी दरिद्रता अंकित हो रही थी। उस घर में अमर को क्या ले जाती। बुढ़ापा निस्संकोच होने पर भी कुछ परदा रखना ही चाहता है। वह उसे एक्के ही पर छोड़कर अन्दर गई, और थोड़ी देर में तावीज़ और रूमालों की बक़ची लेकर आ पहुँची।

'तावीज़ उसके गले में बाँध देना। फिर कल मुझसे हाल कहना।'

'कल मेरी तातील है। दो-चार दोस्तों से बातें करूँगा। शाम तक बन पड़ा, तो आऊँगा, नहीं फिर किसी दिन आ जाऊँगा।'

घर आकर अमर ने तावीज़ बच्चे के गले में बाँधी और दूकान पर जा बैठा। लालाजी ने पूछा—कहाँ गये थे? दूकान के वक्त कहीं मत जाया करो। अमर ने क्षमा-प्रार्थना के भाव से कहा—आज पठानिन आ गई थी। बच्चे के लिए एक तावीज़ देने कहा था। वही लेने चला गया था।

'मैंने अभी देखा। अब तो अच्छा मालूम होता है। दुष्ट ने मेरी मूँछें पकड़कर खींच लीं। मैंने भी कसकर एक घूँसा जमाया बच्चा को! हाँ, खूब याद आई। तुम बैठो, मैं ज़रा शास्त्रीजी के पास से जन्म-पत्र लेता आऊँ। आज उन्होंने देने का वादा किया था।'

लालाजी चले गये, तो अमर फिर घर में जा पहुँचा और बच्चे को गोद में लेकर बोला—क्यों जी, तुम हमारे बाप की मूँछें उखाड़ते हो! खबरदार, जो फिर उनकी मूँछें छुईं, नहीं दाँत तोड़ दूँगा!

बालक ने उसकी नाक पकड ली और उसे निगल जाने की चेष्टा कर लगा, जैसे हनुमान सूर्य को निगल रहे हों।

सुखदा हँसकर बोली—पहले अपनी नाक बचाओ, फिर बाप की मूँछे बचान

सलीम ने इतने ज़ोर से पुकारा, कि सारा घर हिल उठा।

अमरकान्त ने बाहर आकर कहा—तुम बड़े शैतान हो यार, ऐसा चिल्ला कि मैं घबरा गया। किधर से आ रहे हो? आओ, कमरे में चलो।

दोनो आदमी बग़लवाले कमरे में गये। सलीम ने रात को एक ग़ज़ कही थी। वही सुनाने आया था। ग़ज़ल कह लेने के बाद जब तक अमर वे सुना न ले, उसे चैन न आता था।

अमर ने कहा—मगर मैं तारीफ़ न करूँगा, यह समझ लो।

'शर्त तो जब है, कि तुम तारीफ न करना चाहो, फिर भी करो—

यही दुनियाये उलफत में, हुआ करता है होने दो,
तुम्हें हँसना मुबारक हो, कोई रोता है रोने दो।'

अमर ने झूमकर कहा—लाजवाब शेर है भई! बनावट नहीं, दिल कहता हूँ। कितनी मजबूरी है—वाह!

सलीम ने दूसरा शेर पढा—

कसम ले लो जो शिकवा हो तुम्हारी बेवफाई का,
किये को अपने रोता हूँ, मुझे जी भर के रोने दो।

अमर—बडा दर्दनाक शेर है, रोंगटे खडे हो गये। जैसे कोई अप तीती गा रहा हो।

इस तरह सलीम ने पूरी गजल सुनाई और अमर ने झूम-झूमकर सुनी।

फिर बातें होने लगीं। अमर ने पठानिन के रूमाल दिखाने शुरू किये।

'एक बुढिया रख गई है। ग़रीब औरत है। जी चाहे दो-चार ले लो

सलीम ने रूमालो को देखकर कहा—चीज़ तो अच्छी है यार, लाओ ए दर्जन लेता जाऊ। किसने बनाये हैं?

'उसी बुढ़िया की एक पोती है।'

'अच्छा, वही तो नहीं, जो एक बार कचहरी में पगली के मुक़दमे में गई माशूक़ तो यार तुमने अच्छा छाँटा।'

अमरकान्त ने अपनी सफ़ाई दी—क़सम ले लो, जो मैंने उसकी तरफ़ देखा भी हो।

'मुझे क़सम लेने की जरूरत! तुम्हे वह मुबारक हो, मै तुम्हारा रक़ीब नहीं बनना चाहता। रूमाल कितने दरजन के है?'

'जो मुनासिब समझो दे दो।'

'इसकी कीमत बनानेवाले के ऊपर मुनहसर है। अगर उस हसीना ने बनाये हैं, तो फी रूमाल ५)। बुढिया या किसी और ने बनाये है, तो फी रूमाल ।)।'

'तुम मज़ाक़ करते हो। तुम्हे लेना मंज़ूर नही।'

'पहले यह बताओ, किसने बनाये हैं?'

'बनाये तो हैं सकीना ही ने।'

'अच्छा, उनका नाम सकीना है। तो मै फ़ी रूमाल ५) दे दूँगा। शर्त यह है कि तुम मुझे उनका घर दिखा दो।'

'हाँ शौक़ से, लेकिन तुमने कोई शरारत की, तो मै तुम्हारा जानी दुश्मन हो जाऊँगा। अगर हमदर्द बनकर चलना चाहो, चलो। मैं तो चाहता हूँ, उसकी किसी भले आदमी से शादी हो जाय। है कोई तुम्हारी निगाह मे ऐसा आदमी? बस यही समझ लो कि उसकी तकदीर खुल जायगी। मैंने ऐसी हयादार और सलीकेमन्द लडकी नही देखी। मर्द को लुभाने के लिए औरत मे जितनी बातें हो सकती है, वह सब उसमे मौजूद है।'

सलीम ने मुसकराकर कहा—मालूम होता है, तुम ख़ुद उस पर रीझ चुके। हुस्न में तो वह तुम्हारी बीवी के तलवों के बराबर भी नही।

अमरकान्त ने आलोचक के भाव से कहा—औरत मे रूप ही सबसे प्यारी चीज नहीं है। मैं तुमसे सच कहता हूँ, अगर मेरी शादी न हुई होती और मजहब की रुकावट न होती, तो मै उससे शादी करके अपने को भाग्यवान समझता।

'आख़िर उसमे ऐसी क्या बात है, जिस पर तुम इतने लट्टू हो?'

'यह तो मै ख़ुद नहीं समझ रहा हूँ। शायद उसका भोलापन हो। तुम ख़ुद क्यो नहीं कर लेते? मै यह कह सकता हूँ कि उसके साथ तुम्हारी जिन्दगी जन्नत बन जायगी।'

सलीम ने सन्दिग्ध भाव से कहा—मैंने अपने दिल में जिस औरत का नक़्शा खींच रखा है, वह कुछ और ही है। शायद वैसी औरत मेरी ख़याली दुनिया के बाहर कही होगी भी नही। मेरी निगाह मे कोई आदमी आयेगा, तो बताऊँगा। इस वक्त तो मै ये रूमाल लिये लेता हूँ। पाँच रुपए से कम क्या दूँ। सकीना कपडे भी सी लेती होगी। मुझे उम्मीद है कि मेरे घर से उसे काफी काम मिल जायगा। तुम्हे भी एक दोस्ताना सलाह देता हूँ। मैं तुमसे बदगुमानी नहीं करता, लेकिन वहाँ बहुत आमदोरफ्त न रखना, नहीं बदनाम हो जाओगे। तुम चाहे कम बदनाम हो, उस ग़रीब की तो जिन्दगी ही ख़राब हो जायगी। ऐसे भले आदमियो की कमी भी नहीं है, जो इस मुआमले को मज़हबी रग देकर तुम्हारे पीछे पड जायँगे। उसकी मदद तो कोई न करेगा; लेकिन तुम्हारे ऊपर उँगली उठानेवाले बहुतेरे निकल आवेंगे।

अमरकान्त में उद्दण्डता न थी, पर इस समय वह झल्लाकर बोला—मुझे ऐसे कमीने आदमियो की परवाह नहीं है। अपना दिल साफ रहे, तो किसी बात का ग़म नहीं।

सलीम ने ज़रा भी बुरा न मानकर कहा—तुम जरूरत से ज्यादह सीधे हो यार, मुझे ख़ौफ है किसी आफत में न फँस जाओ।

दूसरे दिन अमरकान्त ने दूकान बढाकर जेब में पाँच रुपये रखे, पठानिन के घर पहुँचा और आवाज़ दी। वह सोच रहा था—सकीना रुपए पाकर कितनी ख़ुश होगी।

अन्दर से आवाज़ आई—कौन है?

अमरकान्त ने अपना नाम बतलाया।

द्वार तुरन्त खुल गये और अमरकान्त ने अन्दर कदम रखा, पर देखा तो चारो तरफ अँधेरा। पूछा—आज दिया नही जलाया, अम्माँ?

सकीना बोली—अम्माँ तो एक जगह सिलाई का काम लेने गई है।

'अँधेरा क्यों है? चिराग़ में तेल नहीं है?'

सकीना धीरे से बोली—तेल तो है।

'फिर दिया क्यो नहीं जलातीं, दियासलाई नहीं है?'

'दियासलाई भी है।'

'तो फिर चिराग़ जलाओ। कल जो रूमाल मैं ले गया था, वह पाँच रुपए पर बिक गये है, ये रुपए ले लो। चटपट चिराग़ जलाओ।'

सकीना ने कोई ज़वाब न दिया। उसकी सिसकियों की आवाज़ सुनाई दी। अमर ने चौंककर पूछा—क्या बात है सकीना? तुम रो क्यो रही हो?

सकीना ने सिसकते हुए कहा—कुछ नही, आप जाइये। मै अम्माँ को रुपए दे दूँगी।

अमर ने व्याकुलता से कहा—जब तक तुम बता न दोगी, मैं न जाऊँगा। तेल न हो मै ला दूँ, दियासलाई न हो मै ला दूँ, कल एक लैम्प लेता आऊँगा। कुप्पी के सामने बैठकर काम करने से आँखे ख़राब हो जाती हैं। घर के आदमी से क्या परदा। मै अगर तुम्हे ग़ैर समझता, तो इस तरह बार-बार क्यो आता।

सकीना सामने के सायबान मे जाकर बोली—मेरे कपडे गीले हैं। आपकी आवाज़ सुनकर मैंने चिराग़ बुझा दिया।

'तो गीले कपडे क्यो पहन रखे हैं?'

'कपडे मैले हो गये थे। साबुन लगाकर रख दिये थे। अब और कुछ न पूछिये। कोई दूसरा होता, तो मै किवाड न खोलती।'

अमरकान्त का कलेजा मसोस उठा। उफ़! इतनी घोर दरिद्रता! पहनने को कपडे तक नहीं। अब उसे ज्ञात हुआ कि कल पठानिन ने जो रेशमी कुरता और टोपी उपहार मे दी थी, उसके लिए कितना त्याग किया था। दो रुपए से कम क्या ख़र्च हुए होगे। दो रुपए में दो पाजामे बन सकते थे। इन ग़रीब प्राणियो मे कितनी उदारता है। जिसे ये अपना धर्म समझते है, उसके लिए कितना कष्ट झेलने को तैयार रहते हैं।

उसने सकीना से काँपते हुए स्वर में कहा—तुम चिराग़ जला लो। मैं अभी आता हूँ।

गोवरधनसराय से चौक तक वह हवा के वेग से गया, पर बाजार बन्द हो चुका था। अब क्या करे। सकीना अभी तक गीले कपड़े पहने बैठी होगी। आज इन सबो ने जल्द क्यों दूकान बन्द कर दी? वह यहाँ से उसी वेग के साथ घर पहुँचा। सुखदा के पास पचासो साडियाँ हैं। कई मामूली भी हैं। क्या वह उनमें से साडियाँ न दे देगी? मगर वह पूछेगी—क्या करोगे, तो क्या

जवाब देगा। साफ़-साफ़ कहने से तो वह शायद सन्देह करने लगे। न
इस वक्त सफ़ाई देने का अवसर न था। सकीना गीले कपड़े पहने उस
प्रतीक्षा कर रही होगी। सुखदा नीचे थी। वह चुपके से ऊपर चला गय
गठरी खोली और उसमें से चार साड़ियाँ निकालकर दबे पाँव चल दिया।

सुखदा ने पूछा—अब कहाँ जा रहे हो? भोजन क्यों नहीं कर लेते?

अमर ने बरोठे से जवाब दिया—अभी आता हूँ।

कुछ दूर जाने पर उसने सोचा—कल कहीं सुखदा ने अपनी गठरी खो
और साड़ियाँ न मिलीं, तो बड़ी मुशकिल पड़ेगी। नौकरों के सिर जायगी
क्या वह उस वक्त यह कहने का साहस रखता था, कि वे साड़ियाँ मैंने ए
ग़रीब औरत को दे दी है? नहीं, वह यह नहीं कह सकता। तो क्या साड़ि
ले जाकर रख दे? मगर वहाँ सकीना गीले कपड़े पहने बैठी होगी। फि
ख़याल आया—सकीना इन साड़ियों को पाकर कितनी प्रसन्न होगी। इ
ख़याल ने उसे उन्मत्त कर दिया। जल्द-जल्द क़दम बढ़ाता हुआ, सकी
के घर जा पहुँचा।

सकीना ने उसकी आवाज सुनते ही द्वार खोल दिया। चिराग़ ज
रहा था। सकीना ने इतनी देर में आग जलाकर कपड़े सुखा लिये थे औ
कुरता पाजामा पहने, ओढ़नी ओढ़े खड़ी थी। अमर ने साड़ियाँ खाट प
रख दीं और बोला—बाज़ार में तो न मिली, घर जाना पड़ा। हमदर्दों
परदा न रखना चाहिये।

सकीना ने साड़ियों को लेकर देखा और सकुचाती हुई बोली—बाबूज
आप नाहक़ साड़ियाँ लाये। अम्माँ देखेंगी, तो जल उठेंगी। फिर शाय
आपका यहाँ आना मुश्किल हो जाय। आपकी शराफ़त और हमदर्दी क
जितनी तारीफ़ अम्माँ करती थीं, उससे कहीं ज़्यादा पाया। आप यहाँ ज़्याद
आया भी न करें, नहीं, ख़्वाहम-ख़्वाह लोगों को शुबहा होगा। मेरी वजह
आपके ऊपर कोई शुबहा करे, यह मैं नहीं चाहती।

आवाज़ कितनी मीठी थी। भाव में कितनी नम्रता, कितना विश्वास
उसमें वह हर्ष न था, जिसकी अमर ने कल्पना की थी। अगर बुढ़िया इ
स्नेह को सन्देह की दृष्टि से देखे, तो निश्चय ही उसका आना-जाना ब

ा जायगा। उसने अपने मन को टटोलकर देखा, इस प्रकार के सन्देह का ोई कारण है। उसका मन स्वच्छ था। वहाँ किसी प्रकार की कुत्सित ावना न थी। फिर भी सकीना से मिलना बंद हो जाने की संभावना उसके लए असह्य थी। उसका शासित, दलित पुरुषत्व यहाँ अपने प्रकृत रूप मे ्रकट हो सकता था। सुखदा की प्रतिभा, प्रगल्भता और स्वतन्त्रता, जैसे उसके सेर पर सवार रहती थी। वह उसके सामने अपने को दबाये रखने पर मजबूर था। आत्मा मे जो एक प्रकार के विकास और व्यक्तीकरण की आकांक्षा होती है, वह अपूर्ण रहती थी। सुखदा उसे पराभूत कर देती थी, सकीना उसे गौरवान्वित करती थी। सुखदा उसका दफ्तर थी, सकीना घर। वहाँ वह दास था, यहाँ स्वामी।

उसने साड़ियाँ उठा लीं और व्यथित कण्ठ से बोला—अगर यह बात है, तो मैं इन साड़ियों को लिये जाता हूँ सकीना, लेकिन मै कह नहीं सकता, मुझे इससे कितना रञ्ज होगा। रहा मेरा आना-जाना, अगर तुम्हारी इच्छा है कि मैं न आऊँ, तो मैं भूलकर भी न आऊँगा, लेकिन पड़ोसियो की मुझे परवाह नहीं है।

सकीना ने करुण स्वर मे कहा—बाबूजी, मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ, ऐसी बात मुँह से न निकालिये। जब से आप आने-जाने लगे हैं, मेरे लिए दुनिया कुछ और हो गई है। मै अपने दिल मे एक ऐसी ताक़त, ऐसी उमङ्ग पाती हूँ, जिसे एक तरह का नशा कह सकती हूँ; लेकिन बदगोई से तो डरना ही पड़ता है।

अमर ने उन्मत्त होकर कहा—मै बदगोई से नहीं डरता सकीना, रत्ती भर भी नहीं।

लेकिन एक ही पल मे वह समझ गया—मै बहका जाता हूँ। बोला—मगर तुम ठीक कहती हो। दुनिया और चाहे कुछ न करे बदनाम तो कर ही सकती है।

दोनों एक मिनट तक शान्त बैठे रहे, तब अमर ने कहा—और रूमाल बना लेना। कपड़ो का प्रबन्ध भी हो रहा है। अच्छा अब चलूँगा। लाओ साड़ियाँ लेता जाऊँ।

सकीना ने अमर की मुद्रा देखी। मालूम होता था, रोया ही चाहता है उसके जी में आया साड़ियाँ उठाकर छाती से लगा ले; पर संयम ने हाथ उठाने दिया। अमर ने साड़ियाँ उठा लीं और लड़खड़ाता हुआ द्वार से नि गया, मानो अब गिरा, अब गिरा।

१४

अमरकान्त का मन फिर घर से उचाट होने लगा। स उसकी आँखों में बसी हुई थी। सकीना के ये शब्द उ कानों में गूँज रहे थे—'...मेरे लिए दुनिया कुछ और गई है। मैं अपने दिल में ऐसी ताक़त, ऐसी उ पाती हूँ...' इन शब्दों में उसकी पुरुष-कल्पना को ऐसी आनन्द-प्रद उत्ते मिलती थी, कि वह अपने को भूल जाता था। फिर दूकान से उसकी घटने लगी। रमणी की नम्रता और सलज्ज अनुरोध का स्वाद पा जा बाद अब सुखदा की प्रतिभा और गरिमा उसे बोझ-सी लगती थी। वहाँ हरे पत्तों मे रूखी-सूखी सामग्री थी, यहाँ सोने-चाँदी के थालों में नाना व्य सजे हुए थे। वहाँ सरल स्नेह था, यहाँ गर्व का दिखावा था। वह स्नेह का प्रसाद उसे अपनी ओर खींचता था, यह अमीरी ठाठ अपनी ओ हटाता था। बचपन में ही वह माता के स्नेह से वञ्चित हो गया जीवन के पन्द्रह साल उसने शुष्क शासन मे काटे। कभी माँ डाटतीं, बाप बिगड़ता, केवल नैना की कोमलता उसके भग्न हृदय पर फाहा र रहती थी। सुखदा भी आई, तो वही शासन और गरिमा लेकर, स्नेह प्रसाद उसे यहाँ भी न मिला। वह चिरकाल की स्नेह-तृष्णा किसी पक्षी की भाँति, जो कई सरोवरों के सूखे तट से निराश लौट आया हो, स्नेह यह शीतल छाया देखकर विश्राम और तृप्ति के लोभ से उसकी शरण में आ

यहाँ शीतल छाया ही न थी, जल भी था। पक्षी यहीं रम जाय, तो कोई आश्चर्य है !

उस दिन सकीना की घोर दरिद्रता देखकर वह आहत हो उठा था। वह विद्रोह जो कुछ दिनों उसके मन मे शान्त हो गया था, फिर दूने वेग से उठा। वह धर्म के पीछे लाठी लेकर दौडने लगा। धन के बन्धन का उसे बचपन ही से अनुभव होता आता था। धर्म का बन्धन उससे कही कठोर, कहीं असह्य, कहीं निरर्थक था। धर्म का काम संसार मे मेल और एकता पैदा करना होना चाहिए। यहाँ धर्म ने विभिन्नता और द्वेष पैदा कर दिया है। क्यो खान-पान मे, रस्म-रिवाज मे धर्म अपनी टाँगें अडाता है ? मैं चोरी करूँ, खून करूँ, धोखा दूँ, धर्म मुझे अलग नही कर सकता। अछूत के हाथ से पानी पी लूँ, धर्म छू-मन्तर हो गया। अच्छा धर्म है ! हम धर्म के बाहर किसी से आत्मा का सम्बन्ध भी नही कर सकते। आत्मा को भी धर्म ने बाँध रखा है, प्रेम को भी जकड रखा है। यह धर्म नहीं, धर्म का कलङ्क है।

अमरकान्त इसी उधेड-बुन मे पडा रहता। बुढिया हर महीने, और कभी-कभी महीने में दो-तीन बार, रूमालो की पोटलियाँ बनाकर लाती और अमर उसे मुँह माँगे दाम देकर ले लेता। रेणुका उसको जेबखर्च के लिए जो रुपये देती, वह सब-के-सब रूमालो में जाते। सलीम का भी इस व्यवसाय मे साझा था। उनके मित्रों में ऐसा कोई न था, जिसने एक-आध दर्जन रूमाल न लिये हों। सलीम के घर से सिलाई का काम भी मिल जाता। बुढिया का सुखदा और रेणुका से भी परिचय हो गया था। चिकन की साड़ियाँ और चादरें बनाने का काम भी मिलने लगा, लेकिन उस दिन से अमर बुढिया के घर न गया। कई बार वह मजबूत इरादा करके चला; पर आधे रास्ते मे लौट आया।

विद्यालय में एक बार 'धर्म' पर विवाद हुआ। अमर ने उस अवसर पर जो भाषण किया, उसने सारे शहर मे धूम मचा दी। वह अब क्रान्ति ही में देश का उद्धार समझता था—ऐसी क्रान्ति मे, जो सर्व-व्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धान्तों का, परिपाटियों का अन्त कर दे। जो एक नये युग की प्रवर्तक हो, एक नई सृष्टि खडी कर दे; जो मिट्टी के असंख्य

अमर ने आँखों मे आँसू भरकर कहा—मैं कुछ नहीं कह सकता, मेरी क्यों ऐसी हालत हो रही है सलीम ; पर जब से मैने यह ख़बर सुनी है, मेरे जिगर में जैसे आरा-सा चल रहा है।

'आख़िर तुम चाहते क्या हो ? तुम उससे शादी तो नहीं कर सकते।'

'क्यो नहीं कर सकता ?'

'बिलकुल बच्चे न बन जाओ। ज़रा अक्ल से काम लो।'

'तुम्हारी यही तो मंशा है, कि वह मुसलमान है, मैं हिन्दू हूँ। मैं प्रेम के सामने मज़हब की हक़ीक़त नहीं समझता, कुछ भी नहीं।'

सलीम ने अविश्वास के भाव से कहा—तुम्हारे ख़यालात तक़रीरों में सुन चुका हूँ, अख़बारों में पढ चुका हूँ। ऐसे ख़यालात बहुत ऊँचे, बहुत पाकीज़ा, दुनिया में इन्क़लाब पैदा करनेवाले हैं और कितनों ही ने इन्हे ज़ाहिर करके नामवरी हासिल की है, लेकिन इल्मी बहस दूसरी चीज़ है, उस पर अमल करना दूसरी चीज है। बगावत पर इल्मी बहस कीजिये, लोग शौक से सुनेंगे। बग़ावत करने के लिए तलवार उठाइये और आप सारी सोसायटी के दुश्मन हो जायँगे। इल्मी बहस से किसी को चोट नहीं लगती। बग़ावत से गरदनें कटती हैं। मगर तुमने सकीना से भी पूछा, वह तुमसे शादी करने पर राजी है ?

अमर कुछ झिझका। इस तरफ़ उसने ध्यान ही न दिया था। उसने शायद दिल में समझ लिया था, मेरे कहने की देर है, वह तो राजी ही है। उन शब्दों के बाद अब उसे कुछ पूछने की ज़रूरत न मालूम हुई।

'मुझे यकीन है कि वह राजी है।'

'यक़ीन कैसे हुआ ?'

'उसने ऐसी बातें की हैं, जिनका मतलब इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता।'

'तुमने उससे कहा—मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ।'

'उससे पूछने की मैं ज़रूरत नहीं समझता।'

'तो एक ऐसी बात को, जो तुमसे उसने एक हमदर्द के नाते कही थी, तुमने शादी का वादा समझ लिया। वाह री आपकी अक्ल। मैं कहता हूँ, तुम भंग नहीं खा गये हो, या बहुत पढने से तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं ख़राब हो गया

है ? परी से ज्यादा हसीन बीवी, चाँद सा बच्चा और दुनिया की सारी नेमतों को आप तिलांजलि देने पर तैयार हैं, उस जुलाहे की नमकीन और शायद सलीकेदार छोकरी के लिए! तुमने इसे भी कोई तक़रीर या मजमून समझ रखा है! सारे शहर मे तहलका पड़ जायगा जनाब, भोंचाल आ जायगा, शहर ही मे नहीं, सूबे भर में, बल्कि शुमाली हिन्दोस्तान भर मे। आप हैं किस फेर में ? जान से हाथ धोना पड़े, तो ताज्जुब नहीं।'

अमरकान्त इन सारी बाधाओ को सोच चुका था। इनसे वह ज़रा भी विचलित न हुआ था। और अगर इसके लिए समाज उसे दण्ड देता है, तो उसे परवाह नहीं। वह अपने हक़ के लिए मर जाना इससे कहीं अच्छा समझता है, कि उसे छोड़कर कायरों की ज़िन्दगी काटे। समाज उसकी ज़िन्दगी को तबाह करने का कोई हक नहीं रखता। बोला—मै यह सब जानता हूँ सलीम, लेकिन मैं अपनी आत्मा को समाज का ग़ुलाम नहीं बनाना चाहता। नतीजा जो कुछ भी हो, उसके लिए तैयार हूँ। यह मुआमला मेरे और सकीना के दरमियान है। सोसाइटी को हमारे बीच में दखल देने का कोई हक़ नहीं।

सलीम ने सन्दिग्ध भाव से सिर हिलाकर कहा--सकीना कभी मंज़ूर न करेगी, अगर उसे तुमसे मुहब्बत है। हाँ, अगर वह तुम्हारी मुहब्बत का तमाशा देखना चाहती है, तो शायद मंज़ूर कर ले; मगर मैं पूछता हूँ, उसमे ऐसी क्या ख़ूबी है, जिसके लिए तुम ख़ुद इतनी बडी क़ुर्बानी करने और कई ज़िन्दगियों को ख़ाक मे मिलाने पर आमादा हो ?

अमर को यह बात अप्रिय लगी। मुँह सिकोड़कर बोला—मैं कोई क़ुरबानी नहीं कर रहा हूँ और न किसी की ज़िन्दगी को ख़ाक मे मिला रहा हूँ। मैं सिर्फ़ उस रास्ते पर जा रहा हूँ, जिधर मेरी आत्मा मुझे ले जा रही है। मैं किसी रिश्ते या दौलत को अपनी आत्मा के गले की जंजीर नहीं बना सकता। मैं उन आदमियो मे नहीं हूँ, जो ज़िन्दगी की ज़ंजीरों को ही ज़िन्दगी समझते है। मैं ज़िन्दगी की आरज़ुओं को ज़िन्दगी समझता हूँ। मुझे ज़िन्दा रखने के लिए एक ऐसे दिल की ज़रूरत है, जिसमें आरज़ुएँ हों, दर्द हो, त्याग हो, सौदा हो। जो मेरे साथ रो सकता हो, मेरे साथ जल सकता हो। मैं महसूस करता हूँ, कि मेरी ज़िन्दगी पर रोज़-बरोज़ ज़ंग लगता जा रहा है। इन चन्द

सालों मे मेरा कितना रूहानी जवाल हुआ है, इसे मैं ही समझता हूँ। मैं
जंजीरों में जकड़ा जा रहा हूँ। सकीना ही मुझे आज़ाद कर सकती है, उसी के
साथ मैं रूहानी बलन्दियों पर उड़ सकता हूँ, उसी के साथ मैं अपने को पा
सकता हूँ। तुम कहते हो—पहले उससे पूछ लो। तुम्हारा ख़याल है—वह
कभी मंजूर न करेगी। मुझे यक़ीन है—मुहब्बत जैसी अनमोल चीज़ पाकर
कोई उसे रद्द नहीं कर सकता।

सलीम ने पूछा—अगर वह कहे तुम मुसलमान हो जाओ?

'वह यह नहीं कह सकती।'

'मान लो, कहे।'

'तो मैं उसी वक़्त एक मौलवी को बुलाकर कलमा पढ़ लूँगा। मुझे इसलाम मे ऐसी कोई बात नहीं नजर आती, जिसे मेरी आत्मा स्वीकार न करती हो। धर्म तत्त्व सब एक हैं। हज़रत मुहम्मद को ख़ुदा का रसूल मानने में मुझे कोई आपत्ति नहीं। जिस सेवा, त्याग, दया, आत्म-शुद्धि पर हिन्दू धर्म की बुनियाद कायम है, उसी पर इसलाम की बुनियाद भी क़ायम है। इसलाम मुझे बुद्ध और कृष्ण और राम की ताजीम करने से नहीं रोकता। मैं इस वक्त अपनी इच्छा से हिन्दू नहीं हूँ, बल्कि इसलिए कि हिन्दू घर मे पैदा हुआ हूँ। तब भी मैं अपनी इच्छा से मुसलमान न हूँगा; बल्कि इसलिए कि सकीना की मरजी है। मेरा अपना ईमान यह है, कि मज़हब आत्मा के लिए बन्धन है। मेरी अक़्ल जिसे कबूल करे, वही मेरा मजहब है। बाकी सब ख़ुराफ़ात!'

सलीम इस जवाब के लिए तैयार न था। इस जवाब ने उसे निरुत्तर कर दिया। ऐसे मनोद्गारों ने उसके अन्तःकरण को कभी स्पर्श न किया था। प्रेम को वह वासना मात्र समझता था। उस ज़रा-से उद्गार को इतना वृहद् रूप देना, उसके लिए इतनी क़ुरबानियाँ करना, सारी दुनिया में बदनाम होना और चारों ओर एक तहलका मचा देना, उसे पागलपन मालूम होता था।

उसने सिर हिलाकर कहा—सकीना कभी मंजूर न करेगी।

अमर ने शान्त भाव से कहा—तुम ऐसा क्यों समझते हो?

'इसलिए कि अगर उसे ज़रा भी अक़्ल है, तो वह एक ख़ानदान को तबाह न करेगी।'

'इसके यह माने है, कि उसे मेरे खानदान की मुहब्बत मुझसे ज्यादा है। र मेरी समझ मे नहीं आता कि मेरा ख़ानदान क्यो तबाह हो जायगा। दादा । और सुखदा को दौलत मुझसे ज्यादा प्यारी है। बच्चे को तब भी मै इसी ह प्यार कर सकता हूँ। ज़्यादा-से-ज्यादा इतना होगा कि म घर मे न ाऊँगा और उनके घडे-मटके न छुऊँगा।'

सलीम ने पूछा—डाक्टर शान्तिकुमार से भी इसका जिक्र किया है?

अमर ने जैसे मित्र की मोटी अक़्ल से हताश होकर कहा—नहीं, मैंने उनसे क्र करने की ज़रूरत नहीं समझी। तुमसे भी सलाह लेने नहीं आया हूँ, र्फ़ दिल का बोझ हलका करने के लिए। मेरा इरादा पक्का हो चुका है। गर सकीना ने मायूस कर दिया, तो ज़िन्दगी का ख़ातमा कर दूँगा। राज़ी ई, तो हम दोनों चुपके से कहीं चले जायँगे। किसी को खबर भी न होगी। ।-चार महीने बाद घरवालो को सूचना दे दूँगा। न कोई तहलक़ा मचेगा, कोई तूफान आयेगा। यह है मेरा प्रोग्राम। मै इसी वक़्त उसके पास जाता ; अगर उसने मंज़ूर कर लिया, तो लौटकर फिर यहीं आऊँगा, और मायूस क्या, तो तुम मेरी सूरत न देखोगे।

यह कहता हुआ वह उठ खडा हुआ और तेज़ी से गोवर्धनसराय की तरफ ला। सलीम उसे रोकने का इरादा करके भी न रोक सका। शायद वह मझ गया था, कि इस वक़्त इसके सर भूत सवार है, किसी की न सुनेगा।

माघ की रात। कडाके की सर्दी। आकाश पर धुआँ छाया हुआ था। मरकान्त अपनी धुन मे मस्त चला जाता था। सकीना पर क्रोध आने लगा। झे पत्र तक न लिखा। एक कार्ड भी न डाला। फिर उसे एक विचित्र यं उत्पन्न हुआ। सकीना कहीं बुरा न मान जाय। उसके शब्दो का आशय ह तो नहीं था कि वह उसके साथ कहीं जाने पर तैयार है। सम्भव है, उसकी ज़ामन्दी से बुढिया ने विवाह ठीक किया हो। सम्भव है, उस आदमी की उसके हाँ आमद-रफ्त भी हो। वह इस समय वहाँ बैठा न हो। अगर ऐसा हुआ, ो अमर वहाँ से चुपचाप चला आयेगा। बुढिया आ गई होगी, तो उसके ामने उसे और भी संकोच होगा। वह सकीना से एकान्त-वार्तालाप का अवसर ाहता था।

सकीना के द्वार पर पहुँचा, तो उसका दिल धड़क रहा था। उसने एक क्षण कान लगाकर सुना। किसी की आवाज न सुनाई दी। आँगन में प्रकाश था। शायद सकीना अकेली है। मुँह-माँगी मुराद मिली। आहिस्ता से ज़ंजीर खटखटाई। सकीना ने पूछकर तुरन्त द्वार खोल दिया, और बोली—अम्माँ तो आप ही के यहाँ गई हुई हैं।

अमर ने खड़े-खड़े जवाब दिया—हाँ, मुझसे मिली थीं, और उन्होंने जो ख़बर सुनाई, उसने मुझे दीवाना बना रखा है। अभी तक मैंने अपने दिल का राज तुमसे छिपाया था सकीना, और सोचा था, कि उसे कुछ दिन और छिपाये रहूँगा; लेकिन इस ख़बर ने मुझे मजबूर कर दिया है, कि तुमसे वह राज कहूँ। तुम सुनकर जो फ़ैसला करोगी, उसी पर मेरी ज़िन्दगी का दारोमदार है। तुम्हारे पैरों पर पड़ा हुआ हूँ, चाहे ठुकरा दो, या उठाकर सीने से लगा लो। कह नहीं सकता यह आग मेरे दिल में क्योंकर लगी; लेकिन जिस दिन तुम्हें पहली बार देखा, उसी दिन से एक चिनगारी-सी अन्दर पैठ गई और अब वह एक शोला बन गई है। और अगर उसे जल्द बुझाया न गया, तो मुझे जलाकर ख़ाक कर देगी। मैंने बहुत ज़ब्त किया है सकीना, घुट-घुटकर मर गया हूँ; मगर तुमने मना कर दिया था, आने का हौसला न हुआ। तुम्हारे क़दमों पर मैं अपना सब कुछ कुरबान कर चुका हूँ। वह घर मेरे लिए जेलख़ाने से बदतर है। मेरी हसीन बीबी मुझे संगमरमर की मूरत-सी लगती है, जिसमें दिल नहीं, दर्द नहीं। तुम्हें पाकर मैं सब कुछ पा जाऊँगा।

सकीना जैसे घबरा गई। जहाँ उसने एक चुटकी आटे का सवाल किया था, वहाँ दाता ने ज्योनार का एक भरा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटे-से पात्र में इतनी जगह कहाँ है? उसकी समझ में नहीं आता, कि उस विभूति को कैसे समेटे। अंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी। आँखें सजल हो गईं, हृदय उछलने लगा। सिर झुकाकर संकोच-भरे स्वर में बोली—बाबूजी, ख़ुदा जानता है, मेरे दिल में तुम्हारी कितनी इज़्ज़त और कितनी मुहब्बत है। मैं तो तुम्हारी एक निगाह पर कुरबान हो जाती। तुमने तो भिखारिन को जैसे तीनों लोक का राज्य दे दिया लेकिन भिखारिन राज लेकर क्या करेगी। उसे तो

कुडा चाहिये। मुझे तुमने इस लायक समझा, यही मेरे लिए बहुत है। मै अपने को इस लायक नहीं समझती। सोचो मै कौन हूँ? एक ग़रीब मुसल-मान औरत, जो मज़दूरी करके अपनी जिन्दगी बसर करती है। मुझमे न वह नफ़ासत है, न वह सलीक़ा, न वह इल्म। मै सुखदा देवी के क़दमो की बरा-बरी भी नहीं कर सकती। मेढुकी उडकर ऊँचे दरख़्त पर तो नही जा सकती। मेरे कारण आपकी रुसवाई हो, उसके पहले मै जान दे दूँगी। मैं आपकी जिन्दगी में दाग़ न लगाऊँगी।

ऐसे अवसरों पर हमारे विचार कुछ कवितामय हो जाते है। प्रेम की गहराई कविता की वस्तु है और साधारण बोल-चाल मे व्यक्त नही हो सकती। सकीना ज़रा दम लेकर बोली—तुमने एक यतीम, ग़रीब लडकी को ख़ाक से उठाकर आसमान पर पहुँचाया—अपने दिल मे जगह दी—तो मै भी जब तक जिऊँगी इस मुहब्बत के चिराग को अपने दिल के ख़ून से रोशन रखूँगी।

अमर ने ठढी साँस खींचकर कहा—इस खयाल से मुझे तस्कीन न होगी सकीना। वह चिराग हवा के झोके से बुझ जायगा और वहाँ दूसरा चिराग़ रोशन होगा। फिर तुम मुझे कब याद करोगी। यह मैं नही देख सकता। तुम इस ख़याल को दिल से निकाल डालो कि मैं कोई बहुत बडा आदमी हूँ और तुम बिलकुल नाचीज़ हो। मै अपना सब कुछ तुम्हारे क़दमों पर निसार कर चुका और अब मै तुम्हारे पुजारी के सिवा और कुछ नहीं। बेशक सुखदा तुमसे ज़्यादा हसीन है, लेकिन तुममें कुछ बात तो है, जिसने मुझे उधर से हटा-कर तुम्हारे क़दमो पर गिरा दिया। तुम किसी गैर की हो जाओ, यह मै नही देख सकता। जिस दिन यह नौबत आयेगी, तुम सुन लोगी, कि अमर इस दुनिया में नहीं है; अगर तुम्हे मेरी वफा के सबूत की जरूरत हो, तो उसके लिए ख़ून की यह बूँदें हाजिर हैं।

यह कहते हुए उसने जेब से छुरी निकाल ली। सकीना ने झपटकर छुरी उसके हाथ से छीन ली और मीठी झिडकी के साथ बोली—सबूत की ज़रूरत उन्हें होती है, जिन्हे यकीन न हो, जो कुछ बदले मे चाहते हों। मै तो सिर्फ़ तुम्हारी पूजा करना चाहती हूँ। देवता मुँह से कुछ नहीं बोलता, तो क्या पुजारी

के दिल में उसकी भक्ति कुछ कम होती है? मुहब्बत खुद अपना इनाम है। नहीं जानती ज़िन्दगी किस तरफ़ जायगी, लेकिन जो कुछ भी हो जिस्म चाहे किसी का हो जाय, यह दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा। इस मुहब्बत को गरज से पाक रखना चाहती हूँ। सिर्फ़ यह यक़ीन कि मैं तुम्हारी हूँ, मेरे लिए काफ़ी है। मैं तुमसे सच कहती हूँ प्यारे, इस यक़ीन ने मेरे दिल को इतना मज़बूत कर दिया है, कि वह बड़ी-से-बड़ी मुसीबत भी हँसकर झेल सकता है। मैंने तुम्हें यहाँ आने से रोका था। तुम्हारी बदनामी के सिवा, मुझे अपनी बदनामी का भी खौफ़ था, पर अब मुझे ज़रा भी ख़ौफ नहीं है। मैं अपनी ही तरफ़ से बेफ़िक्र नहीं हूँ, तुम्हारी तरफ़ से भी बेफ़िक्र हूँ। मेरी जान रहते कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

अमर की इच्छा हुई कि सकीना को गले लगाकर प्रेम से छक जाय, पर सकीना के ऊँचे प्रेमादर्श ने उसे शान्त कर दिया। बोला—लेकिन तुम्हारी शादी तो होने जा रही है?

'मैं अब इन्कार कर दूँगी।'

'बुढ़िया मान जायगी?'

'मैं कह दूँगी—अगर तुमने मेरी शादी का नाम भी लिया, तो मैं ज़हर खा लूँगी।'

'क्यों न इसी वक़्त हम और तुम कहीं चले जायँ?'

'नहीं, वह ज़ाहिरी मुहब्बत है। अस्ली मुहब्बत वह है, जिसकी जुदाई में भी विसाल है, जहाँ जुदाई है ही नहीं, जो अपने प्यारे से एक हज़ार कोस पर होकर अपने को उसके गले से मिला हुआ देखती है।'

सहसा पठानिन ने द्वार खोला। अमर ने बात बनाई—मैंने तो समझा था, तुम अब तो आ गई होगी। बीच में कहाँ रह गईं?

बुढ़िया ने खट्टे मन से कहा—तुमने तो आज ऐसा रूखा जवाब दिया बेटा कि मैं रो पड़ी। तुम्हारा ही तो मुझे भरोसा था और तुम्हीं ने मुझे ऐसा जवाब दिया; पर अल्लाह का फ़ज़्ल है, बहूजी ने मुझसे वादा किया—जितने रुपये चाहना ले जाना। वहीं देर हो गई। तुम मुझसे किसी बात पर नाराज़ तो नहीं हो बेटा?

अमर ने उसकी दिलजोई की—नहीं अम्माँ, आपसे भला क्या नाराज़ होता। उस वक़्त दादा से एक बात पर झक-झक हो गई थी, उसी का खुमार था। मैं बाद को ख़ुद शर्मिन्दा हुआ और तुमसे मुआफी माँगने दौड़ा। मेरी ख़ता मुआफ करती हो?

बुढ़िया रोकर बोली—बेटा, तुम्हारे टुकड़ों पर तो ज़िन्दगी कटी, तुमसे नाराज़ होकर ख़ुदा को क्या मुँह दिखाऊँगी। इस खाल से तुम्हारे पाँव की जूतियाँ बनें, तो भी दरेग न करूँ।

'बस, मुझे तस्कीन हो गई अम्माँ। इसीलिए आया था।'

अमर द्वार पर पहुँचा, तो सकीना ने द्वार बन्द करते हुए कहा—कल ज़रूर आना।

अमर पर एक गैलन का नशा चढ़ गया—ज़रूर आऊँगा।

'मैं तुम्हारी राह देखती रहूँगी।'

'कोई चीज़ तुम्हारी नज़र करूँ, तो नाराज़ तो न होगी?'

'दिल से बढ़कर भी कोई नज़र हो सकती है?'

'नज़र के साथ कुछ शीरीनी होनी जरूरी है।'

'तुम जो कुछ दो वह सिर और आँखों पर।'

अमर इस तरह अकड़ता हुआ जा रहा था, गोया दुनिया की बादशाही पा गया है।

सकीना ने द्वार बन्द करके दादी से पूछा—तुम नाहक़ दौड़धूप कर रही हो अम्माँ। मैं शादी न करूँगी।

'तो क्या योंही बैठी रहेगी?'

'हाँ, जब मेरी मर्ज़ी होगी, तब कर लूँगी।'

'तो क्या मैं हमेशा बैठी रहूँगी?'

'जब तक मेरी शादी न हो जायगी, आप बैठी रहेंगी।'

'हँसी मत कर। मैं सब इन्तज़ाम कर चुकी।'

'नहीं अम्माँ, मैं शादी न करूँगी और मुझे दिक करोगी तो ज़हर खा लूँगी। शादी के ख़याल से मेरी रूह फना हो जाती है।'

'तुझे हो क्या गया सकीना?'

'मैं शादी नहीं करना चाहती, बस। जब तक कोई ऐसा आदमी न हो, जिसके साथ मुझे आराम से ज़िन्दगी बसर होने का इत्मीनान हो, मैं य दर्द-सर नहीं लेना चाहती। तुम मुझे ऐसे घर में डालने जा रही हो, जहाँ मे ज़िन्दगी तल्ख हो जायगी। शादी का मंशा यह नहीं है, कि आदमी रो-रोके दिन काटे।'

पठानिन ने अँगीठी के सामने बैठकर सिर पर हाथ रख लिया और सोचने लगी—लड़की कितनी बेशर्म है।

सकीना बाजरे की रोटियाँ मसूर की दाल के साथ खाकर, टूटी खाट प लेटी और पुराने फटे हुए लिहाफ में सर्दी के मारे पाँव सिकोड़ लिये; पर उस हृदय आनन्द से परिपूर्ण था। आज उसे जो विभूति मिली थी, उसके साम्ने संसार की संपदा तुच्छ थी, नगण्य थी।

१५

अमरकान्त के जीवन में एक नई स्फूर्ति का संचार होने लगा अब तक घरवालों ने उसके हरेक काम की अवहेलना ही क थी। सभी उसकी लगाम खींचते रहते थे। घोड़े में न वह दम रहा, न वह उत्साह; लेकिन अब एक प्राणी बढ़ा देता था; उसकी गरदन पर हाथ फेरता था। जहाँ उपेक्षा, या अधिक-से-अधिक शुष्क उदासीनता थी, वहाँ अब एक रमणी का प्रोत्साहन था, जो पर्वतों को हि सकता है, मुर्दों को जिला सकता है। उसकी साधना, जो बन्धनों में पड़ संकुचित हो गई थी, प्रेम का आश्रय पाकर प्रबल और उग्र हो गई। अपने अन्दर ऐसी आत्मशक्ति उसने कभी न पाई थी। सकीना अपने प्रेमस्रोत से उसकी साधना को सींचती रहती है। वह स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकती, पर उसका प्रेम उस ऋषि का वरदान है, जो आप भिक्षा माँगकर भी दूसरों पर विभूतियों की वर्षा करता है। अमर बिना किसी प्रयोजन के सकीना के घर भी जाता। उसमें वह उद्दण्डता भी अब नहीं रही। समय और प्रवृ

देखकर काम करता है। जिन वृक्षों की जडें गहरी होती हैं, उन्हे बार-बार सींचने की ज़रूरत नहीं होती। वह ज़मीन से ही आर्द्रता खींचकर बढते और फूलते-फलते हैं। सकीना और अमर का प्रेम वही वृक्ष है। उसे सजग रखने के लिए बार बार मिलने की ज़रूरत नहीं।

डिग्री की परीक्षा हुई पर अमरकान्त उसमे बैठा नहीं। अध्यापको को विश्वास था, उसे छात्रवृत्ति मिलेगी। यहाँ तक कि डा० शान्तिकुमार ने भी उसे बहुत समझाया ; पर वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की ज़रूरत है, डिग्री की नही। हमारी डिग्री है—हमारा सेवा-भाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागरित नहीं हुई, तो काग़ज़ की डिग्री व्यर्थ है। उसे इस शिक्षा ही से घृणा हो गई थी। जब वह अपने अध्यापको को फैशन की ग़ुलामी करते, स्वार्थ के लिए नाक रगडते, कम-से-कम काम करके अधिक-से-अधिक लाभ के लिए हाथ पसारते देखता, तो उसे घोर मानसिक वेदना होती थी। और इन्हीं महानुभावों के हाथ में राष्ट्र की बागडोर है। यही क़ौम के विधाता है। इन्हे इसकी परवाह नहीं कि भारत की जनता दो आने पैसे पर गुज़र करती है। एक साधारण आदमी को साल भर में पचास रुपए से ज़्यादा नहीं मिलते। हमारे अध्यापको को पचास रुपए रोज़ चाहिये। तब अमर को उस अतीत की याद आती, जब हमारे गुरुजन झोंपडो में रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्त्विक जीवन के आदर्श, निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम-से-कम लेकर अधिक-से-अधिक देते थे। वह वास्तव मे देवता थे। और एक यह अध्यापक हैं, जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य-कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी वही दम्भ है, वही धन-मद है, वही अधिकार-मद है। हमारे विद्यालय क्या है, राज्य के विभाग हैं, और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंग है। वे ख़ुद अन्धकार में पड़े हुए हैं, प्रकाश क्या फैलावेंगे। वे आप अपने मनोविकारों के क़ैदी हैं, आप अपनी इच्छाओं के ग़ुलाम हैं, और अपने शिष्यों को भी उसी क़ैद और ग़ुलामी में डालते हैं। अमर की युवक-कल्पना फिर अतीत का स्वप्न देखने लगती। परिस्थितियों को वह बिलकुल भूल जाता। उसके कल्पित राष्ट्र के

कर्मचारी सेवा के पुतले होते, अध्यापक झोपड़ों में रहनेवाले, वल्कलधारी, क मूल-फल भोगी संन्यासी, जनता द्वेष और लोभ से रहित; न यह आये-दि टंटे, न बखेड़े। इतनी अदालतों की जरूरत क्या? यह बड़े-बड़े महकमे लिए? ऐसा मालूम होता है, गरीबों की लाश नोचनेवाले गिद्धों का समूह जिसके पास जितनी ही बड़ी डिग्री है, उसका स्वार्थ भी उतना ही बढ़ा हुआ मानो लोभ और स्वार्थ ही विद्वत्ता का लक्षण है। ग़रीबों को रोटियाँ मयस्स हों, कपड़ों को तरसता हो, पर हमारे शिक्षित भाइयों को मोटर चाहिये, बँ चाहिये, नौकरों की एक पलटन चाहिये। इस संसार को अगर मनुष्य ने है, तो अन्यायी है; ईश्वर ने रचा है, तो उसे क्या कहें!

यही भावनायें अमर के अन्तस्तल में लहरों की भाँति उ रहती थीं।

वह प्रातःकाल उठकर शान्तिकुमार के सेवाश्रम में पहुँच जाता और दो तक वहाँ लड़कों को पढ़ाता रहता। शाला डाक्टर साहब के बँगले में थी। बजे तक डाक्टर साहब भी पढ़ाते थे। फीस बिलकुल न ली जाती थी, भी लड़के बहुत कम आते थे। सरकारी स्कूलों में जहाँ फीस और जुरमाने चन्दों की भरमार रहती थी, लड़कों को बैठने की जगह न मिलती यहाँ कोई झाँकता भी न था। मुश्किल से दो-ढाई सौ लड़के आते थे। छोटे भोले-भाले, निष्कपट बालकों का कैसे स्वाभाविक विकास हो, कैसे वे सा सन्तोषी, सेवाशील, नागरिक बन सकें, यही मुख्य उद्देश्य था। सौंदर्य-बोध मानव-प्रकृति का प्रधान अंग है, कैसे दूषित वातावरण से अलग रहकर अ पूर्णता पाये, संघर्ष की जगह सहानुभूति का विकास कैसे हो, दोनों मित्र सोचते रहते थे। उनके पास शिक्षा की कोई बनी-बनाई प्रणाली न थी। उ को सामने रखकर ही वह साधनों की व्यवस्था करते थे। आदर्श महापुरु चरित्र, सेवा और त्याग की कथायें, भक्ति और प्रेम के पद, यही शिक्षा के आ थे। उनके दो सहयोगी और थे। एक आत्मानन्द संन्यासी थे, जो संस विरक्त होकर सेवा में जीवन सार्थक करना चाहते थे, दूसरे एक संगीत के आ थे, जिनका नाम था ब्रजनाथ। इन दोनों सहयोगियों के आ जाने से शाल उपयोगिता बहुत बढ़ गई थी।

एक दिन अमर ने शान्तिकुमार से कहा—आप आखिर कब तक प्रोफ़ेसरी करते चले जायेंगे? जिस संस्था को हम जड़ से काटना चाहते हैं, उसी से चिमटे रहना तो आपको शोभा नहीं देता।

शान्तिकुमार ने मुसकराकर कहा—मैं ख़ुद यही सोच रहा हूं भाई, पर सोचता हूँ, रुपए कहाँ से आयेंगे। कुछ ख़र्च नहीं है, तो भी पाँच सौ से तो सन्देह है ही नहीं।

'आप इसकी चिन्ता न कीजिये। कहीं-न-कहीं से रुपए आ ही जायेंगे। फिर रुपए की जरूरत क्या है?'

'मकान का किराया है, लड़कों के लिए कितावें हैं, और बीसों ही खर्च हैं। क्या-क्या गिनाऊँ?'

'हम किसी वृक्ष के नीचे दो लड़कों को पढ़ा सकते हैं।'

'तुम आदर्श की धुन में व्यावहारिकता का बिलकुल विचार नहीं करते। कोरा आदर्शवाद, ख़याली पुलाव है।'

अमर ने चकित होकर कहा—मैं तो समझता था, आप भी आदर्शवादी हैं।

शान्तिकुमार ने मानो इस चोट को ढाल पर रोककर कहा—मेरे आदर्शवाद में व्यावहारिकता का भी स्थान है।

'इसका अर्थ यह है कि आप गुड़ खाते हैं, गुलगुने से परहेज करते हैं।'

'जब तक मुझे रुपए कहीं से मिलने न लगें, तुम्हीं सोचो, मैं किस आधार पर नौकरी का परित्याग कर दूं। पाठशाला मैंने खोली है। इसके सञ्चालन का दायित्व मुझ पर है। इसके बन्द हो जाने पर मेरी बदनामी होगी। अगर तुम इसके सञ्चालन का कोई स्थायी प्रबन्ध कर सकते हो, तो मैं आज इस्तीफ़ा दे सकता हूँ, लेकिन बिना किसी आधार के मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं इतना पक्का आदर्शवादी नहीं।'

अमरकान्त ने अभी सिद्धान्त से समझौता करना न सीखा था। कार्यक्षेत्र में कुछ दिन रह जाने और संसार के कड़वे अनुभव हो जाने के बाद हमारी प्रकृति में जो ढीलापन आ जाता है, उस परिस्थिति में वह न पड़ा था। नव-दीक्षितों को सिद्धान्त में जो अटल भक्ति होती है, वह उसमें भी थी। डाक्टर साहब में उसे जो श्रद्धा थी, उसे ज़ोर का धक्का लगा। उसे मालूम हुआ,

वह केवल बातों के वीर हैं, कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। जिसका खुले शब्दों यह आशय है, कि वह संसार को धोखा देते हैं। ऐसे मनुष्य के साथ वह कै सहयोग कर सकता है?

उसने जैसे धमकी दी—तो आप इस्तीफ़ा नहीं दे सकते?

'उस वक्त तक नहीं, जब तक धन का कोई प्रबन्ध न हो।'

'तो ऐसी दशा में मैं यहाँ काम नहीं कर सकता।'

डाक्टर साहब ने नम्रता से कहा—देखो अमरकान्त, मुझे संसार का तुम ज़्यादा तजरबा है, मेरा इतना जीवन नये-नये परीक्षणों में ही गुज़रा है। मैं जो तत्व निकाला है, यह है कि हमारा जीवन समझौते पर टिका हुआ है अभी तुम मुझे जो चाहे समझो; पर एक समय आयेगा, जब तुम्हारी आँखें खुलेंगी और तुम्हें मालूम होगा कि जीवन में यथार्थ का महत्व आदर्श से ढ़ भर भी कम नहीं।

अमर ने जैसे आकाश में उड़ते हुए कहा—मैदान में मर जाना मैदा छोड़ देने से कहीं अच्छा है। और उसी वक्त वहाँ से चल दिया।

पहले सलीम से मुठभेड़ हुई। सलीम इस शाला को मदारी का तमा कहा करता था, जहाँ जादू की लकड़ी छुआ देने ही से मिट्टी सोना बन जा है। वह एम० ए० की तैयारी कर रहा था। उसकी अभिलाषा थी कि कै अच्छा सरकारी पद पा जाय और चैन से रहे। सुधार और संगठन और रा आन्दोलन से उसे विशेष प्रेम न था। उसने यह खबर सुनी; तो खुश हो कहा—तुमने बहुत अच्छा किया, निकल आये। मैं डाक्टर साहब को खूब जान हूँ। वह उन लोगों में हैं, जो दूसरों के घर में आग लगाकर अपना हाथ से हैं। क़ौम के नाम पर जान देते हैं, मगर ज़बान से।

सुखदा भी खुश हुई। अमर का शाला के पीछे पागल हो जाना न सुहाता था। डाक्टर साहब से उसे चिढ़ थी। वही अमर को उँगलि पर नचा रहे हैं। उन्हीं के फेर में पड़कर अमर घर से फिर उदा हो गया है।

पर जब सन्ध्या समय अमर ने सकीना से ज़िक्र किया, तो उसने डा साहब का पक्ष लिया—मैं समझती हूँ, डाक्टर साहब का ख़याल ठीक

भूखे पेट खुदा की याद भी नहीं हो सकती। जिसके सिर रोजी की फिक्र सवार है, वह क़ौम की क्या ख़िदमत करेगा, और करेगा तो अमानत में खयानत करेगा। आदमी भूखा नहीं रह सकता। फिर मदरसे का ख़र्च भी तो है। माना कि दरख्तों के नीचे ही मदरसा लगे, लेकिन वह बाग कहाँ है? कोई ऐसी जगह तो चाहिये ही जहाँ लड़के बैठकर पढ़ सकें। लड़कों को किताबें, काग़ज़ चाहिये, बैठने को फर्श चाहिये, डोल-रस्सी चाहिये। या तो चन्दे से आये, या कोई कमाकर दे। सोचो, जो आदमी अपने उसूल के खिलाफ नौकरी करके एक काम की बुनियाद डालता है, वह उसके लिए कितनी बड़ी कुरबानी कर रहा है। तुम अपने वक्त की कुरबानी करते हो। वह अपने ज़मीर तक को कुरबान कर देता है। मैं तो ऐसे आदमी को कहीं ज्यादा इज्ज़त के-लायक़ समझती हूँ।

पठानिन ने कहा—तुम इस छोकरी की बातों में न आओ बेटा, जाकर घर का धन्धा देखो, जिससे गृहस्ती का निबाह हो। यह सैलानीपन उन लोगों को चाहिये, जो घर के निखट्टू हैं। तुम्हें अल्लाह ने इज्ज़त दी है, मरतबा दिया है, बाल-बच्चे दिये हैं। तुम इन खुराफातों में न पड़ो।

अमर को अब टोपियाँ बेचने से फ़ुर्सत मिल गई थी। बुढ़िया को रेणुका देवी के द्वारा चिकन का काम इतना ज्यादा मिल जाता था कि टोपियाँ कौन काढ़ता। सलीम के घर से भी कोई-न-कोई काम आता ही रहता था। उनके ज़रिये से और घरों से भी काफ़ी काम मिल जाता था। सकीना के घर में कुछ खुशहाली नज़र आती थी। घर की पुताई हो गई थी, द्वार पर नया परदा पड़ गया था, दो खाटें नई आ गई थीं, खाटों पर दरियाँ भी नई थीं, कई बरतन नये आ गये थे। कपड़े-लत्ते की भी कोई शिकायत न थी। उर्दू का एक अखबार भी खाट पर रखा हुआ था। पठानिन को अपने अच्छे दिनों में भी इससे ज्यादा समृद्धि न हुई थी। बस उसे अगर कोई ग़म था, तो यह कि सकीना शादी करने पर राजी न होती थी।

अमर वहाँ से चला, तो अपनी भूल पर लज्जित था। सकीना के एक ही वाक्य ने उसके मन की सारी शंका शान्त कर दी थी। डाक्टर साहब में उसकी श्रद्धा फिर उतनी ही गहरी हो गई थी। सकीना की बुद्धिमत्ता, विचार-सौष्ठव,

सूझ और निर्भीकता ने उसे चकित और मुग्ध कर दिया था। सकीना से उसका परिचय जितना ही गहरा होता था, उतना ही उसका असर भी गहरा होता था। सुखदा अपनी प्रतिभा और गरिमा से उस पर शासन करती थी। वह शासन उसे अप्रिय था। सकीना अपनी नम्रता और मधुरता से उस पर शासन करती थी। यह शासन उसे प्रिय था। सुखदा में अधिकार का गर्व था। सकीना में समर्पण की दीनता थी। सुखदा अपने को पति से बुद्धिमान और कुशल समझती थी। सकीना समझती थी मैं इनके आगे क्या हूँ!

डाक्टर साहब ने मुसकराकर पूछा—तो तुम्हारा यही निश्चय है कि मैं इस्तीफ़ा दे दूँ? वास्तव में मैंने इस्तीफा लिख रखा है और कल दे दूँगा। तुम्हारा सहयोग मैं नहीं खो सकता। मैं अकेला कुछ भी न कर सकूँगा। तुम्हारे जाने के बाद मैंने ठण्डे दिल से सोचा तो मालूम हुआ, मैं व्यर्थ के मोह मे पड़ा हुआ हूँ। स्वामी दयानन्द के पास क्या था जब उन्होंने आर्यसमाज की बुनियाद डाली?

अमरकान्त भी मुसकराया नहीं, मैंने ठण्डे दिल से सोचा, तो मालूम हुआ कि मैं ग़लती पर था। जब तक रुपए का कोई माक़ूल इन्तज़ाम न हो जाय, आपको इस्तीफ़ा देने की जरूरत नहीं।

डाक्टर साहब ने विस्मय से कहा—तुम व्यंग कर रहे हो।

'नहीं, मैंने आपसे बेअदबी की थी उसे क्षमा कीजिये।'

———

१६

इधर कुछ दिनों से अमरकान्त म्युनिसिपल बोर्ड का मेम्बर हो गया था। लाला समरकान्त का नगर मे इतना प्रभाव था और जनता अमरकान्त को इतना चाहती थी कि उसे धेला भी ख़र्च न करना पडा और वह चुन लिया गया। उसके मुक़ाबिले में एक नामी वकील साहब खड़े थे। उन्हे उसके चौथाई वोट भी न मिले। सुखदा और लाला समरकान्त दोनो ही ने उसे मना किया। दोनों ही उसे घर के कामों में फँसाना चाहते थे। अब वह पढना छोड चुका था और लालाजी उसके माथे सारा भार डालकर खुद अलग हो जाना चाहते थे। इधर-उधर के कामों में पड़कर वह घर का काम क्या कर सकेगा। एक दिन घर में छोटा-मोटा तूफ़ान आ गया। लालाजी और सुखदा एक तरफ थे, अमर दूसरी तरफ़ और नैना मध्यस्थ थी।

लाला ने तोंद पर हाथ फेरकर कहा—धोबी का कुत्ता, घर का न घाट का। भोर से पाठशाले जाओ, साँझ हो, तो कांग्रेस मे बैठो, अब यह नया रोग और बेसाहने को तैयार हो। घर में लगा दो आग।

सुखदा ने समर्थन किया—हाँ, अब तुम्हें घर का काम-धन्धा देखना चाहिये या व्यर्थ के कामों में फँसना। अब तक तो यह था कि पढ रहे है। अब तो पढ-लिख चुके हो। अब तुम्हे अपना घर सँभालना चाहिये। इस तरह के काम तो वे उठावें, जिनके घर दो चार आदमी हों। अकेले आदमी को घर से ही फ़ुर्सत नहीं मिल सकती। ऊपर के काम कहाँ से करे।

अमर ने कहा—जिसे आप लोग रोग, और ऊपर का काम और व्यर्थ का झंझट कह रहे हैं, मैं उसे घर के काम से कम ज़रूरी नहीं समझता। फिर जब तक आप हैं, मुझे क्या चिंता। और सच तो यह है कि मैं इस काम के लिए बनाया ही नहीं गया। आदमी उसी काम में सफल होता है, जिसमें उसका

लेन-देन, बनिज-व्यापार में मेरा जी बिलकुल नहीं लगता। ...ता है, कि कहीं बना-बनाया काम बिगाड़ न बैठूँ।

...लालाजी को यह कथन सार-हीन जान पड़ा। उनका पुत्र बनिज व्यवसा...म में कच्चा हो यह असंभव था। पोपले मुँह में पान चबाते हुए बोले—यह सब तुम्हारी मुटमरदी है और कुछ नहीं। मैं न होता, तो तुम क्या अपने बाल-बच्चों का पालन-पोसन न करते? तुम मुझी को पीसना चाहते हो। एक लड़के वह होते हैं, जो घर सँभालकर बाप को छुट्टी दे देते हैं। एक तुम हो कि बाप की हड्डियाँ तक नहीं छोड़ना चाहते।

बात बढ़ने लगी। सुखदा ने मामला गर्म होते देखा, तो चुप हो गई। नैना उँगलियों से दोनों कान बन्द करके घर में जा बैठी। यहाँ दोनों पहलवानों में मल्लयुद्ध होता रहा। युवक में चुस्ती थी, फुरती थी, लचक थी; बूढ़े में पेच था, दम था, रोब था। पुराना फिकैत बार-बार उसे दबाना चाहता था; पर जवान पट्ठा नीचे से सरक जाता था। कोई हाथ, कोई घात न चलता था।

अन्त में लालाजी ने जामे से बाहर होकर कहा—तो बाबा तुम अपने बाल-बच्चे लेकर अलग हो जाओ, मैं तुम्हारा बोझ नहीं सँभाल सकता। इस घर में रहोगे, तो किराया और घर में जो कुछ खर्च पड़ेगा, उसका आधा चुपके से निकालकर रख देना पड़ेगा। मैंने तुम्हारी जिन्दगी भर का ठेका नहीं लिया है। घर को अपना समझो, तो तुम्हारा सब कुछ है। ऐसा नहीं समझते, तो यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं है। जब मैं मर जाऊँ, तो जो कुछ हो आकर ले लेना।

अमरकान्त पर बिजली-सी गिर पड़ी। जब तक बालक न हुआ था, और वह घर से फटा फटा रहता था, तब उसे इस आघात की शंका दो-एक बार हुई थी, पर बालक के जन्म के बाद से लालाजी के व्यवहार और स्वभाव में वात्सल्य की स्निग्धता आ गई थी। अमर को अब इस कठोर आघात की बिलकुल शंका न रही थी। लालाजी को जिस खिलौने की अभिलाषा थी, उन्हें वह खिलौना देकर अमर निश्चिन्त हो गया था, पर आज उसे मालूम हुआ, वह खिलौना माया की जंजीरों को न तोड़ सका।

पिता, पुत्र की टालमटोल पर नाराज़ हो, घुड़के-झिड़के, मुँह फुलाये, यह तो उसकी समझ में आता था; लेकिन पिता, पुत्र से घर का किराया और रोटियों का

मांगे, यह तो माया-लिप्सा की—निर्मम माया-लिप्सा की—पराकाष्ठा इसका एक ही जवाब था, कि वह आज ही सुखदा और उसके बालक को कहीं और जा टिके। और फिर पिता से कोई सरोकार न रखे। और सुखदा आपत्ति करे, तो उसे भी तिलाजलि दे दे।

उसने स्थिर भाव से कहा—अगर आपकी यही इच्छा है, तो यही सही।

लालाजी ने कुछ खिसियाकर पूछा—सास के बल पर कूद रहे होगे!

अमर ने तिरस्कार-भरे स्वर मे कहा—दादा, आप, घाव पर नमक न ें। जिस पिता ने जन्म दिया, जब उसके घर में मेरे लिए स्थान नही क्या आप समझते हैं, मै सास और ससुर की रोटियाँ तोड़ूंगा? आपकी से इतना नीच नही हूँ। मजदूरी कर सकता हूँ और पसीने की कमाई खा ा हूँ। मैं किसी प्राणी से दया की भिक्षा माँगना अपने आत्म-सम्मान ाए घातक समझता हूँ। ईश्वर ने चाहा, तो मैं आपको दिखा दूँगा, कि जदूरी करके भी जनता की सेवा कर सकता हूँ।

समरकान्त ने समझा, अभी इसका नशा नहीं उतरा। महीना-दो-महीना थी के चरखे में पडेगा, तो आँखे खुल जायँगी। चुपचाप बाहर चले और अमर उसी वक्त एक मकान की तलाश करने चला।

उसके चले जाने के बाद लालाजी फिर अन्दर गये। उन्हे आशा थी कि दा उनके घाव पर मरहम रखेगी; पर सुखदा उन्हे अपने द्वार के सामने कर भी बाहर न निकली। कोई पिता इतना कठोर हो सकता है, इसकी कल्पना भी न कर सकती थी। आखिर यह लाखों की सम्पत्ति किस काम ेगी! अमर घर के काम-काज से अलग रहता है, यह सुखदा को खुद मालूम होता था। लालाजी इसके लिए पुत्र को ताड़ना देते हैं, यह भी त ही था; लेकिन घर का और भोजन का खर्च माँगना यह तो नाता ही ना था। तो जब वह नाता तोड़ते हैं, तो वह रोटियों के लिए उनकी ामद न करेगी। घर मे आग लग जाय, उससे कोई मतलब नहीं। उसने ने सारे गहने उतार डाले। आखिर यह गहने भी तो लालाजी ही ने दिये मा की दी हुई चीजें भी उसने उतार फेंकीं। मा ने भी जो कुछ दिया दहेज की पुरौती ही में तो दिया था। उसे भी लालाजी ने अपनी बही में

टाँक लिया होगा। वह इस घर से केवल एक साड़ी पहनकर जायगी। भगवान उसके लाल को कुशल से रखे, उसे किसी की क्या परवाह! यह अमूल्य रत्न तो कोई उससे छीन नहीं सकता।

अमर के प्रति इस समय उसके मन में सच्ची सहानुभूति उत्पन्न हुई। आखिर म्युनिसिपैलिटी के लिए खड़े होने में क्या बुराई थी? मान और प्रतिष्ठा किसे प्यारी नहीं होती! इसी मेम्बरी के लिए लोग लाखों ख़र्च करते हैं। क्या वहाँ जितने मेम्बर हैं, वह सब घर के निखट्टू ही हैं! कुछ नाम करने की, कुछ काम करने की लालसा प्राणी-मात्र को होती है। अगर वह स्वार्थ साधन पर अपना समर्पण नहीं करते, तो कोई ऐसा काम नहीं करते, जिसक यह दण्ड दिया जाय। कोई दूसरा आदमी पुत्र के इस अनुराग पर अपने को धन्य मानता, अपने भाग्य को सराहता।

सहसा अमर ने आकर कहा—तुमने आज दादा की बातें सुन लीं! अ क्या सलाह है?

'सलाह क्या है, आज ही, यहाँ से विदा हो जाना चाहिये। यह फटका पाने के बाद तो मै इस घर में पानी पीना भी हराम समझती हूँ। कोई घ ठीक कर लो।'

'घर तो ठीक कर आया। छोटा-सा मकान है, साफ़-सुथरा, नीचीबाग़ में

१०) किराया है।'

'मैं भी तैयार हूँ।'

'तो एक ताँगा लाऊँ?'

'कोई ज़रूरत नहीं। पाँव-पाँव चलेंगे।'

'सन्दूक़, बिछावन यह सब तो ले चलना ही पड़ेगा।'

'इस घर में हमारा कुछ नहीं है। मैंने तो सब गहने भी उतार दिये मज़दूरों की स्त्रियाँ गहने पहनकर नहीं बैठा करतीं।'

स्त्री कितनी अभिमानिनी है, यह देखकर अमरकान्त चकित हो गया बोला—लेकिन गहने तो तुम्हारे हैं। उन पर किसी का दावा नहीं है। पि ।थे से ज्यादा तो तुम अपने साथ लाई थीं।

'अम्माँ ने जो कुछ दिया, दहेज की पुरौती में दिया। लालाजी ने जो कुछ दिया, वह यह समझकर दिया कि घर ही में तो है। एक-एक चीज़ उनकी बही में दर्ज है। मैं गहनो को भी दया की भिक्षा समझती हूँ। अब तो हमारा उसी चीज़ पर दावा होगा जो हम अपनी कमाई से बनवायेंगे।'

अमर गहरी चिन्ता में डूब गया। यह तो इस तरह नाता तोड रही है, कि एक तार भी बाकी न रहे। गहने औरतों को कितने प्रिय होते हैं, यह वह जानता था। पुत्र और पति के बाद अगर उन्हें किसी वस्तु से प्रेम होता है, तो वह गहने हैं। कभी-कभी तो गहनों के लिए वह पुत्र और पति से भी तन बैठती हैं। अभी घाव ताजा है, कसक नहीं है। दो चार दिन के बाद यह वितृष्णा जलन और असन्तोष के रूप में प्रकट होगी। फिर तो बात-बात पर ताने मिलेंगे, बात-बात पर भाग्य का रोना होगा। घर में रहना मुश्किल हो जायगा।

बोला—मैं तो यह सलाह न दूँगा सुखदा। जो चीज़ अपनी है, उसे अपने साथ ले चलने में मैं कोई बुराई नहीं समझता।

सुखदा ने पति को सगर्व दृष्टि से देखकर कहा—तुम समझते होगे, मैं गहनों के लिए कोने मे बैठकर रोऊँगी और अपने भाग्य को कोसूँगी। स्त्रियाँ अवसर पड़ने पर कितना त्याग कर सकती हैं, यह तुम नहीं जानते। मैं इस फटकार के बाद इन गहनों की ओर ताकना भी पाप समझती हूँ, इन्हें पहनना तो दूसरी बात है। अगर तुम डरते हो, कि मैं कल ही से तुम्हारा सिर खाने लगूँगी, तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अगर गहनों का नाम मेरी ज़बान पर आये तो ज़बान काट लेना। मैं यह भी कहे देती हूँ, कि मैं तुम्हारे भरोसे पर नहीं जा रही हूँ। अपनी गुजर भर को आप कमा लूँगी। रोटियो में ज़्यादा ख़र्च नहीं होता। ख़र्च होता है आडम्बर में। एक बार अमीरी की शान छोड़ दो, फिर चार आने पैसों में काम चलता है।

नैना भाभी को गहने उतारकर रखते देख चुकी थी। उसके प्राण निकले जा रहे थे, कि अकेली इस घर में कैसे रहेगी। बच्चे के बिना तो वह घड़ी भर भी नहीं रह सकती। उसे पिता, भाई, भावज सभी पर क्रोध आ रहा था। दादा को क्या सूझी? इतना धन तो घर में भरा हुआ है, वह क्या होगा! भैया ही घड़ी भर दूकान पर बैठ जाते, तो क्या बिगड़ा जाता था। भाभी को

भी न जाने क्या सनक सवार हो गई। वह न जातीं, तो भैया दो-चार दिन मे फिर लौट ही आते। भाभी के साथ वह भी चली जाय, तो दादा को भोजन कौन देगा। किसी और के हाथ का बनाया खाते भी तो नहीं। वह भाभी को समझाना चाहती थी; पर कैसे समझाये। यह दोनों तो उसकी तरफ़ आँखें उठाकर देखते भी नहीं। भैया ने अभी से आँखें फेर लीं। बच्चा भी कैसा खुश है। नैना के दुःख का वारापार नहीं है।

उसने जाकर बाप से कहा—दादा, भाभी तो सब गहने उतारकर रखे जाती है।

लालाजी चिन्तित थे। कुछ बोले नहीं। शायद सुना ही नहीं।

नैना ने जरा और ज़ोर से कहा—भाभी अपने सब गहने उतारकर रखे देती हैं।

लालाजी ने अनमने भाव से सिर उठाकर देखा—गहने क्या कर रही है?

'उतार-उतारकर रखे देती हैं।'

'तो मैं क्या करूँ?'

'तुम उनसे जाकर कहते क्यो नहीं?'

'वह नहीं पहनना चाहती, तो मै क्या करूँ।'

'तुम्हीं ने उनसे कहा होगा, गहने मत ले जाना। क्या तुम उनके ब्याह के गहने भी ले लोगे?'

'हाँ, मैं सब ले लूँगा। इस घर मे उसका कुछ नहीं है।'

'यह तुम्हारा अन्याय है।'

'जा अन्दर बैठ, बक-बक मत कर।'

'तुम जाकर उन्हें समझाते क्यो नहीं?'

'तुझे बड़ा दर्द है, तू ही क्यो नहीं समझाती।'

'मैं कौन होती हूँ समझानेवाली। तुम अपने गहने ले रहे हो, तो मेरे कहने से क्यों पहनने लगीं।'

दोनों कुछ देर तक चुप-चाप रहे। फिर नैना ने कहा—मुझसे यह अन्याय नहीं देखा जाता। गहने उनके है। ब्याह के गहने तुम उनसे नहीं ले सकते।

'तू यह कानून कब से जान गई?'

'न्याय क्या है, और अन्याय क्या है, यह सिखाना नहीं पड़ता। बच्चे
ा भी बेक़सूर सज़ा दो, तो वह चुपचाप न सहेगा।'

'मालूम होता है, भाई से यही विद्या सीखती है।'

'भाई से अगर न्याय-अन्याय का ज्ञान सीखती हूँ, तो कोई बुराई नहीं।'

'अच्छा भाई, सिर मत खा, कह दिया अन्दर जा। मैं किसी को मनाने-मझाने नहीं जाता। मेरा घर है, इसकी सारी सम्पदा मेरी है। मैंने इनके ाए जान खपाई है। किसी को क्यों ले जाने दूँ?'

नैना ने सहसा सिर झुका लिया और जैसे दिल पर ज़ोर डालकर कहा—ो फिर मैं भी भाभी के साथ चली जाऊँगी।

लालाजी की मुद्रा कठोर हो गई—चली जा, मैं नहीं रोकता। ऐसी न्तान से बे-सन्तान रहना ही अच्छा। खाली कर दो मेरा घर, आज ही ाली कर दो। खूब टाँगें फैलाकर सोऊँगा। कोई चिन्ता तो न होगी। ाज यह नहीं है, आज वह नहीं है, यह तो न सुनना पड़ेगा। तुम्हारे रहने । कौन सुख था मुझे।

नैना लाल आँखें किये सुखदा से जाकर बोली—भाभी, मैं भी तुम्हारे ाथ चलूँगी।

सुखदा ने अविश्वास के स्वर में कहा—हमारे साथ! हमारा तो अभी हीं घर-द्वार नहीं है। न पास पैसे हैं, न बरतन-भाँडे, न नौकर-चाकर। ्मारे साथ कैसे चलोगी? इस महल में कौन रहेगा?

नैना की आँखें भर आईं—जब तुम्हीं जा रही हो, तो मेरा यहाँ क्या है।

पगली सिल्लो आई और ठठा मारकर बोली—तुम सब जने चले जाओ, अर मैं इस घर की रानी बनूँगी। इस कमरे में इसी पलंग पर मजे से ोऊँगी। कोई भिखारी द्वार पर आयेगा, तो झाड़ू लेकर दौड़ूँगी।

अमर पगली के दिल की बात समझ रहा था; पर इतना बड़ा खटला नेकर कैसे जाय। घर में एक ही तो रहने लायक कोठरी है। वहाँ नैना कहाँ रहेगी और यह पगली तो जीना मुहाल कर देगी। नैना से बोला—तुम हमारे ाथ चलोगी, तो दादा को खाना कौन बनायेगा नैना? फिर हम कहीं दूर तो

नहीं जाते। मैं वादा करता हूँ, एक बार रोज तुमसे मिलने आया करूँगा। तुम और सिल्लो दोनो रहो। हमें जाने दो।

नैना रो पडी—तुम्हारे बिना मैं इस घर में कैसे रहूँगी भैया, सोचो। दिन भर पडे-पडे क्या करूँगी। मुझसे तो छिन भर भी न रहा जायगा। मन्नू को याद कर-करके रोया करूँगी। देखती हो भाभी, मेरी ओर ताकता भी नहीं।

अमर ने कहा—तो मन्नू को छोड़े जाऊँ। तेरे ही पास रहेगा।

सुखदा ने विरोध किया—वाह! कैसी बात कर रहे हो। रो-रोकर जान दे देगा। फिर मेरा जी भी तो न मानेगा।

शाम को तीनो आदमी घर से निकले। पीछे पीछे सिल्लो भी हँसती हुई चली जाती थी। सामने के दूकानदारो ने समझा कहीं नेवते जाती हैं; पर क्या बात है, किसी के देह पर छल्ला भी नहीं! न चादर, न धराऊ कपड़े।

लाला समरकान्त अपने कमरे मे बैठे हुक्का पी रहे थे। आँख उठाकर भी न देखा।

एक घण्टे के बाद वह उठे, घर मे ताला डाल दिया और फिर कमरे में आकर लेट रहे।

एक दूकानदार ने आकर पूछा—भैया और बीबी कहाँ गये लालाजी!

लालाजी ने मुँह फेरकर जवाब दिया—मुझे नहीं मालूम—मैंने घर से निकाल दिया। मैंने धन इसलिए नहीं कमाया है कि लोग मौज उडावें। जो धन को धन समझे, वह मौज उडावे। जो धन को मिट्टी समझे, उसे धन का मूल्य सीखना होगा। मै आज भी अठारह घण्टे रोज काम करता हूँ। इसलिए नहीं कि लडके धन को मिट्टी समझे मेरे ही गोद के लडके मुझे ही आँखें दिखावें। धन का धन दूँ, ऊपर से धौंस भी सुनूँ। बस जबान न खोलूँ, चाहे कोई घर में आग लगा दे। घर का काम चूल्हे में जाय, तुम्हें सभाओं में, जलसों में आनन्द आता है, तो जाओ जलसों से अपना निबाह भी करो। ऐसों के लिए मेरा घर नहीं है। लडका वही है, जो कहना सुने। जब लड़का अपने मन का हो गया, तो कैसा लडका!

रेणुका को ज्योंही सिल्लो ने ख़बर दी, वह बदहवास दौड़ी आई, मानो बेटी और दामाद पर कोई बडा संकट आ गया है। वह क्या ग़ैर थी, जो

क्या कोई नाता ही नहीं ! उसको ख़बर तक न दी और अलग मकान ले लिया। वाह ! यह भी कोई लड़कों का खेल है। दोनों बिलल्ले। छोकरी तो ऐसी न थी, पर लौंडे के साथ उसका सिर भी फिर गया।

रात के आठ बज गये थे। हवा अभी तक गर्म थी। आकाश के तारे गर्द से धुँधले हो रहे थे। रेणुका पहुँची, तो तीनों निखलुए कोठे की एक चारपाई बराबर छत पर मन मारे बैठे थे। सारे घर में अन्धकार छाया हुआ था। बेचारों पर गृहस्थी की नई विपत्ति पड़ी थी। पास एक पैसा नहीं। कुछ न सूझता था, क्या करें।

अमर ने उसे देखते ही कहा—अरे ! तुम्हें कैसे ख़बर मिल गई अम्माँजी ! अच्छा इस चुड़ैल सिल्लो ने जाकर कहा होगा। कहाँ है, अभी ख़बर लेता हूँ।

रेणुका अँधेरे में ज़ीने पर चढ़ने से हाँफ गई थी। चादर उतारती हुई बोली—मैं क्या दुश्मन थी, कि मुझसे उसने कह दिया तो बुराई की ? क्या मेरा घर न था, या मेरे घर रोटियाँ न थीं ! मैं यहाँ एक छन भर तो रहने न दूँगी। वहाँ पहाड़-सा घर पड़ा हुआ है, यहाँ तुम सब-के-सब एक बिल में घुसे बैठे हो। उठो अभी। बच्चा मारे गर्मी के कुम्हला गया होगा। यहाँ खाटें भी तो नहीं हैं और इतनी सी जगह में सोओगे कैसे ? तू तो ऐसी न थी सुखदा, तुझे क्या हो गया ! बड़े-बूढ़े दो बात कहें, तो ग़म खाना होता है, कि घर से निकल खड़े होते हैं। क्या इनके साथ तेरी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई !

सुखदा ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया और इस ढंग से कि रेणुका को भी लाला समरकान्त की ही ज़्यादती मालूम हुई। उन्हें अपने धन का घमण्ड है, तो उसे लिए बैठे रहें। मरने लगें, तो साथ लेते जायँ !

अमर ने कहा—दादा को यह ख़याल न होगा, कि ये सब घर से चले जायँगे।

सुखदा का क्रोध इतनी जल्द शान्त होनेवाला न था। बोली—चलो, उन्होंने साफ़ कहा, यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं है। क्या वह एक दफ़े भी आकर न कह सकते थे, तुम लोग कहाँ जा रहे हो। हम घर से निकले। वह कमरे में बैठे टुकुर-टुकुर देखा किये। बच्चे पर भी उन्हें दया न आई। जब उन्हें इतना घमण्ड है, तो यहाँ क्या आदमी ही नहीं हैं। वह अपना महल लेकर

रहें, हम अपनी मेहनत-मजूरी कर लेगे। ऐसा लोभी आदमी तुमने कभी देख था अम्मा? बीबी गई, तो इन्हे भी डाँट बतलाई। बेचारी रोती चली आई।

रेणुका ने नैना का हाथ पकडकर कहा—अच्छा, जो हुआ अच्छा ही हुआ चलो देर हो रही है। मै महराजिन से भोजन को कह आई हूँ। खाटें भ निकलवा आई हूँ। लाला का घर न उजडता, तो मेरा कैसे बसता।

नीचे प्रकाश हुआ। सिल्लो ने कडवे तेल का चिराग़ जला दिया था. रेणुका को यहाँ पहुँचाकर बाज़ार दौडी गई। चिराग़, तेल और एक झाड लाई। चिराग़ जलाकर घर मे झाड़ू लगा रही थी।

सुखदा ने बच्चे को रेणुका की गोद में देकर कहा—आज तो क्षमा करो अम्माँ, फिर आगे देखा जायगा। लालाजी को यह कहने का मौक़ा क्यों दें कि आख़िर ससुराल भागा। उन्होने पहले ही तुम्हारे घर का द्वार बन्द कर दिया है। हमे दो-चार दिन यहाँ रहने दो, फिर तुम्हारे पास चले आवेंगे। ज़रा हम भी तो देख ले, हम अपने बूते पर रह सकते हैं या नहीं।

अमर की नानी मर रही थी। अपने लिए तो उसे चिन्ता न थी। सलीम या डाक्टर के यहाँ चला जायगा। यहाँ सुखदा और नैना दोनो बे खाट के कैसे सोयेगी। कल ही कहाँ से हुन बरस जायगा। मगर सुखदा की बात कैसे काटे।

रेणुका ने बच्चे की मुच्छियाँ लेकर कहा—भला, देख लेना जब मे मर जाऊँ। अभी तो मै जीती हूँ। वह भी तो तेरा ही है। चल जल्दी कर।

सुखदा ने दृढता से कहा—अम्माँ, जब तक हम अपनी कमाई से अपना निबाह न करने लगेंगे, तब तक तुम्हारे यहाँ न जायँगे। जायँगे; पर मेहमान की तरह। घंटे-दो-घंटे बैठे और चले आये।

रेणुका ने अमर से अपील की—देखते हो बेटा इसकी बातें। यह मुझे भी ग़ैर समझती है।

सुखदा ने व्यथित कंठ से कहा—अम्माँ, बुरा न मानना, आज दादा का बरताव देखकर मुझे मालूम हो गया कि धनियों को अपना धन कितना प्यारा होता है। कौन जाने कभी तुम्हारे मन में भी ऐसे ही भाव पैदा हों। ऐसा अवसर आने ही क्यो दिया जाय? जब हम मेहमान की तरह...

अमर ने बात काटी। रेणुका के कोमल हृदय पर कितना कठोर आघात था—

'तुम्हारे जाने मे तो ऐसा कोई हरज नहीं है सुखदा। तुम्हें बड़ा कष्ट होगा।'

सुखदा ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या तुम्हीं कष्ट सह सकते हो? मैं नहीं सह सकती? तुम अगर कष्ट से डरते हो, तो जाओ। मैं तो अभी कहीं नहीं जाने की।

नतीजा यह हुआ कि रेणुका ने सिल्लो को घर भेजकर अपने बिस्तर मँगवाये। भोजन पक चुका था, इसलिए भोजन भी मँगवा लिया गया। छत पर झाड़ू दी गई और जैसे धर्मशाले में यात्री ठहरते हैं, उसी तरह इन लोगों ने भोजन करके रात काटी। बीच-बीच में मजाक भी हो जाता था। विपत्ति में जो चारों ओर अंधकार दीखता है, वह हाल न था। अंधकार था, पर उषा-काल का। विपत्ति थी, पर सिर पर नहीं, पैरों के नीचे।

दूसरे दिन सवेरे रेणुका घर चली गई। उसने फिर सबको साथ ले चलने के लिए ज़ोर लगाया; पर सुखदा राजी न हुई। कपड़े-लत्ते, बरतन-भाँडे, खाट-खटोली, कोई चीज़ लेने पर राजी न हुई, यहाँ तक कि रेणुका नाराज़ हो गई और अमरकान्त को भी बुरा मालूम हुआ। वह इस अभाव में भी उस पर शासन कर रही थी।

रेणुका के जाने के बाद अमरकान्त सोचने लगा—रुपये-पैसे का कैसे प्रबन्ध हो? यह समय फ्री पाठशाले का था। वहाँ जाना लाजमी था। सुखदा अभी सवेरे की नींद में मग्न थी, और नैना चिन्तातुर बैठी सोच रही थी—कैसे घर का काम चलेगा। उसी वक्त अमर पाठशाले चला गया; पर आज वहाँ उसका जी बिल्कुल न लगा। कभी पिता पर क्रोध आता, कभी सुखदा पर, कभी अपने आप पर। उसने अपने निर्वासन के विषय में डाक्टर साहब से कुछ न कहा। वह किसी की सहानुभूति न चाहता था। आज अपने मित्रों में से वह किसी के पास न गया। उसे भय हुआ, लोग उसका हाल सुनकर दिल में यही समझेंगे, मैं उनसे कुछ मदद चाहता हूँ।

दस बजे घर लौटा, तो देखा सिल्लो आटा गूँध रही है और नैना चौके में बैठी तरकारी पका रही है। पूछने की हिम्मत न पड़ी, पैसे कहाँ से आये। नैना

ने आप ही कहा—सुनते हो भैया, आज सिल्लो ने हमारी दावत की है। लकड़ी, घी, आटा, दाल, सब बाजार से लाई है। बरतन भी अपने किसी जान पहचान के घर से माँग लाई है।

सिल्लो बोल उठी—मैं दावत नहीं करती हूँ। मै अपने पैसे जोड़कर ले लूँगी।

नैना हँसती हुई बोली—यह बड़ी देर से मुझसे लड़ रही है। यह कहती है—मैं पैसे ले लूँगी ; मै कहती हूँ—तू तो दावत कर रही है। बताओ भैया, दावत ही तो कर रही है ?

'हाँ और क्या ! दावत तो है ही।'

अमरकान्त पगली सिल्लो के मन का भाव ताड़ गया। वह समझती है, अगर यह न कहूँगी, तो शायद यह लोग उसके रुपयों की लाई हुई चीज़ लेने से इनकार कर देंगे।

सिल्लो का पोपला मुँह खिल गया। जैसे वह अपनी दृष्टि में कुछ ऊँचा हो गई है, जैसे उसका जीवन सार्थक हो गया है। उसकी रूप-हीनता और शुष्कता मानो माधुर्य मे नहा उठी। उसने हाथ धोकर अमरकान्त के लिए लोटे का पानी रख दिया, तो पाँव जमीन पर न पड़ते थे।

अमर को अभी तक आशा थी कि दादा शायद सुखदा और नैना को बुला लेंगे ; पर जब अब तक कोई बुलाने न आया और न वह खुद आये, तो उसका मन खट्टा हो गया।

उसने जल्दी से स्नान किया, पर याद आया, धोती तो है ही नहीं। गले की चादर पहन ली, भोजन किया और कुछ कमाने की जोह में निकला।

सुखदा ने मुँह लटकाकर पूछा—तुम तो ऐसे निश्चिन्त होकर बैठ रहे, जैसे यहाँ सारा इन्तजाम किये जा रहे हो। यहाँ लाकर बिठाना ही जानते हो। सुबह से ग़ायब हुए, तो दोपहर को लौटे। किसी से कुछ काम-धन्धे के लिए कहा, या खुदा छप्पर फाड़कर देगा। यों काम न चलेगा, समझ गये।

चौबीस घण्टे के अन्दर सुखदा के मनोभाव मे यह परिवर्तन देखकर अमर का मन उदास हो गया। कल कितनी बढ़-बढ़कर बातें कर रही थी, आज पछता रही है, कि क्यों घर से निकले !

रूखे स्वर में बोला—अभी तो किसी से कुछ नहीं कहा। अब जाता हूँ किसी काम की तलाश मे।

'मैं भी ज़रा जज साहब की स्त्री के पास जाऊँगी। उनसे किसी काम को कहूँगी। उन दिनों तो मेरा बडा आदर करती थीं। अब का हाल नहीं जानती।'

अमर कुछ नहीं बोला—यह मालूम हो गया कि उसकी कठिन परीक्षा के दिन आ गये।

अमरकान्त को बाज़ार के सभी लोग जानते थे। उसने एक खद्दर की दूकान से कमीशन पर बेचने के लिए कई थान खद्दर, खद्दर की साड़ियाँ, जम्पर, कुरते, चादरें आदि ले लीं और उन्हे ख़ुद अपनी पीठ पर लादकर बेचने चला।

दूकानदार ने कहा—यह क्या करते हो बाबूजी, एक मजूर ले लो। लोग क्या कहेंगे? भद्दा लगता है।

अमर के अन्तःकरण में क्रान्ति का तूफ़ान उठ रहा था। उसका बस चलता, तो आज धनवालों का अन्त कर देता, जो ससार को नरक बनाये हुए हैं। वह बोझ उठाकर दिखाना चाहता था, मैं मजूरी करके निबाह करना इससे कहीं अच्छा समझता हूँ कि हराम की कमाई खाऊँ। तुम सब मोटी तोंदवाले हरामख़ोर हो, पक्के हरामख़ोर हो! तुम मुझे नीच समझते हो! इस-लिए कि मैं अपनी पीठ पर बोझ लादे हुए हूँ। क्या यह बोझ तुम्हारी अनीति और अधर्म के बोझ से ज़्यादा लज्जास्पद है, जो तुम अपने सिर पर लादे फिरते हो और शर्माते ज़रा भी नहीं! उलटे और घमंड करते हो।

इस वक्त अगर कोई धनी अमरकान्त को छेड देता, तो उसकी शामत ही आ जाती। वह सिर से पाँव तक बारूद बना हुआ था, या बिजली का ज़िन्दा तार!

१७

अमरकान्त खादी बेच रहा है। तीन बजे होंगे, लू चल है, बगूले उठ रहे हैं, दूकानदार दूकानों पर सो रहे हैं, र महलों में सो रहे हैं, मजूर पेडो के नीचे सो रहे हैं, और अ खादी का गट्ठा लादे, पसीने में तर, चेहरा सुर्ख, आँखें ला गली-गली घूमता फिरता है।

एक वकील साहब ने ख़स का पर्दा उठाकर देखा और बोले—अरे य यह क्या ग़ज़ब करते हो, म्युनिसिपल कमिश्नरी की तो लाज रखते, सारा कर दिया। क्या कोई मजूरा नहीं मिलता था?

अमर ने गट्ठा लिये-लिये कहा—मजूरी करने से म्युनिसिपल कमिश्नरी शान मे वट्टा नहीं लगता। वट्टा लगता है—धोखे-धडी की कमाई खाने से।

'यहाँ धोखे-धडी की कमाई खानेवाला कौन है भाई? क्या वकी डाक्टर, प्रोफेसर, सेठ, साहूकार, ठेकेदार धोखे-धडी की कमाई खाते हैं?'

'यह उनके दिल से पूछिये। मैं किसी को क्यों बुरा कहूँ?'

'आख़िर आपने कुछ समझकर ही तो यह फिकरा चुस्त किया।'

'अगर आप मुझसे पूछना ही चाहते हैं, तो मै कह सकता हूँ, हाँ खाते एक आदमी दस रुपए में गुज़र करता है, दूसरे को दस हज़ार क्यों चाहि यह धाँधली उसी वक्त तक चलेगी, जब तक जनता की आँखें बन्द हैं। कीजियेगा, एक आदमी पंखे की हवा खाय और ख़सख़ाने में बैठे, और दू आदमी दोपहर की धूप में तपे, यह न न्याय है, न धर्म—यह धाँधली है।'

'छोटे-बड़े तो भाई साहब, हमेशा रहे हैं और हमेशा रहेंगे। सबको बराबर नहीं कर सकते।'

'मै दुनिया का ठेका नहीं लेता, अगर न्याय अच्छी चीज़ है, तो वह लिए ख़राब नहीं हो सकती कि लोग उसका व्यवहार नहीं करते।'

'इसका आशय यह है, कि आप व्यक्तिवाद को नहीं मानते, समष्टिवाद क़ायल हैं।'

"मैं किसी वाद का क़ायल नहीं। केवल न्यायवाद का पुजारी हूँ।'

'तो अपने पिताजी से बिलकुल अलग हो गये?'

'पिताजी ने मेरी ज़िन्दगी भर का ठेका नहीं लिया है।'

'अच्छा लाइये देखें आपके पास क्या-क्या चीज़ें हैं।'

अमरकान्त ने इन महाशय के हाथ दस रुपये के कपड़े बेचे।

अमर आज-कल बड़ा क्रोधी, बड़ा कटुभाषी, बड़ा उद्दण्ड हो गया है। रदम उसकी तलवार म्यान से बाहर रहती है। बात-बात पर उलझता है। फर भी उसकी बिक्री अच्छी होती है। रुपया-सवा रुपया रोज मिल जाता है।

त्यागी दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो त्याग में आनन्द मानते हैं, जनकी आत्मा को त्याग में सन्तोष और पूर्णता का अनुभव होता है, जिनके याग में उदारता और सौजन्य है। दूसरे वह, जो दिलजले त्यागी होते हैं, जनका त्याग अपनी परिस्थितियों से विद्रोह-मात्र है, जो अपने न्याय-पथ पर लने का तावान संसार से लेते हैं; जो खुद जलते हैं इसलिए दूसरों को भी लाते हैं। अमर इसी तरह का त्यागी था।

स्वस्थ आदमी अगर नीम की पत्ती चबाता है, तो अपने स्वास्थ्य को बढ़ाने लिए। वह शौक़ से पत्तियाँ तोड़ लाता है, शौक से पीसता और शौक़ से पीता , पर रोगी वही पत्तियाँ पीता है, तो नाक सिकोड़कर, मुँह बनाकर, झुँझलाकर ौर अपनी तक़दीर को रोकर।

सुखदा जज साहब की पत्नी की सिफारिश से बालिका-विद्यालय में ५०) पर किर हो गई है। अमर दिल खोलकर तो कुछ कह नहीं सकता, पर मन में लता रहता है। घर का सारा काम, बच्चे को सँभालना, रसोई पकाना, ज़रूरी ीजें बाजार से मँगाना—यह सब उसके मत्थे है। सुखदा घर के कामों के ीच नहीं जाती। अमर आम कहता है, तो सुखदा इमली कहती है। दोनों हमेशा खट-पट होती रहती है। सुखदा इस दरिद्रावस्था में भी उस पर ासन कर रही है। अमर कहता है, आध सेर दूध काफ़ी है, सुखदा कहती है, र भर आयेगा, और सेर भर ही मँगाती है। वह खुद दूध नहीं पीता, इस र भी रोज़ लड़ाई होती है। वह कहता है, हम ग़रीब हैं, मजूर हैं, हमें मजूरों ी तरह रहना चाहिये। वह कहती है, हम मजूर नहीं हैं, न मजूरों की तरह

रहेंगे। अमर उसको अपने आत्म-विकास मे बाधक समझता है और उस बा
को हटा न सकने के कारण भीतर-ही-भीतर कुढता है।

एक दिन बच्चे को खाँसी आने लगी। अमर बच्चे को लेकर ई
होमियोपैथ के पास जाने को तैयार हुआ। सुखदा ने कहा—बच्चे को मत
जाओ, हवा लगेगी। डाक्टर को बुला लाओ; फ़ीस ही तो लेगा।

अमर को मजबूर होकर डाक्टर बुलाना पडा। तीसरे दिन बच्चा
हो गया।

एक दिन ख़बर मिली, लाला समरकान्त को ज्वर आ गया है। अमरका
इस महीने भर में एक बार भी घर न गया था। यह ख़बर सुनकर भी न गय
वह मरें या जियें, उसे क्या करना है। उन्हे अपना धन प्यारा है, उसे छ
से लगाये रखें। और उन्हें किसी की जरूरत ही क्या।

पर सुखदा से न रहा गया। वह उसी वक्त नैना को साथ लेकर चल दी।

अमर मन में जल-भुनकर रह गया।

समरकान्त घरवालों के सिवा और किसी के हाथ का भोजन न ग्रहण क
थे। कई दिन तो उन्होंने केवल दूध पर काटे, फिर कई दिन फल खाकर र
लेकिन रोटी-दाल के लिए जी तरसता रहता था। नाना पदार्थ बाज़ार में भरे थे
पर रोटियाँ कहाँ? एक दिन उनसे न रहा गया। रोटियाँ पकाईं, और हवित
आकर कुछ ज्यादा खा गये। अजीर्ण हो गया। एक दिन दस्त आये। दू
दिन ज्वर हो आया। फलाहार से कुछ तो पहले गल चुके थे, दो दिन
बीमारी ने लस्त कर दिया।

सुखदा को देखकर बोले—अभी क्या आने की जल्दी थी बहू, दो च
दिन और देख लेतीं। तब तक यह धन का साँप उड गया होता। वह लौं
समझता है, मुझे अपने बाल-बच्चों से धन प्यारा है। किसके लिए इसका सं
किया था? अपने लिए? तो बाल-बच्चों को क्यो जन्म दिया? उसी लौंडे
जो आज मेरा शत्रु बना हुआ है, छाती से लगाये क्यों ओझे-स्यानों, बैदों-हकी
के पास दौड़ा फिरा? ख़ुद कभी अच्छा नहीं खाया, अच्छा नहीं पहना, कि
लिए? कृपण बना, बेईमानी की, दूसरों की ख़ुशामद की, अपनी आत्मा
हत्या की, किसके लिए? जिसके लिए चोरी की, वही आज मुझे चोर कहता

सुखदा सिर झुकाये खड़ी रोती रही।

लालाजी ने फिर कहा —मैं जानता हूँ, जिसे ईश्वर ने हाथ दिये हैं, वह सरों का मुहताज नहीं रह सकता। इतना मूर्ख नहीं हूँ, लेकिन माँ-बाप की ामना तो यही होती है, कि उनकी सन्तान को कोई कष्ट न हो। जिस तरह उन्हें रना पड़ा, उसी तरह उनकी सन्तान को मरना न पड़े। जिस तरह उन्हें धक्के ाने पड़े, कर्म-अकर्म सब करने पड़े, वे कठिनाइयाँ उनकी सन्तान को न झेलनी ड़ें। दुनिया उन्हें लोभी, स्वार्थी कहती है, उनको परवाह नहीं होती, लेकिन ब अपनी ही सन्तान अपना अनादर करे, तब सोचो अभागे बाप के दिल पर या बीतती है। उसे मालूम होता है, सारा जीवन निष्फल हो गया। जो शाल भवन एक-एक ईंट जोड़कर खड़ा किया था, जिसके लिए क्वार ी धूप, और माघ की वर्षा सब झेली, वह ढह गया, और उसके ईंट-पत्थर ामने बिखरे पड़े हैं। वह घर नहीं ढह गया, वह जीवन ढह गया, सम्पूर्ण जीवन ी कामना ढह गई।

सुखदा ने बालक को नैना की गोद से लेकर ससुर की चारपाई पर सुला देया और पंखा झलने लगी। बालक ने बड़ी-बड़ी सजग आँखों से बूढ़े दादा ी मूँछें देखीं, और उनके यहाँ रहने का कोई विशेष प्रयोजन न देखकर उन्हें खाड़कर फेंक देने के लिए उद्यत हो गया। दोनों हाथों से मूँछें पकड़कर ींचीं। लालाजी ने 'सी-सी' तो की, पर बालक के हाथों को हटाया नहीं। नुमान ने भी इतनी निर्दयता से लंका के उद्यानों का विध्वंस न किया होगा। फर भी लालाजी ने बालक के हाथों से मूँछे नहीं छुड़ाईं। उनकी कामनायें ो पड़ी एड़ियाँ रगड़ रही थीं, इस स्पर्श से जैसे सजीवन पा गईं। उस स्पर्श में ोई ऐसा प्रसाद, कोई ऐसी विभूति थी! उनके रोम-रोम मे समाया हुआ ालक जैसे मथित होकर नवनीत की भाँति प्रत्यक्ष हो गया हो।

दो दिन सुखदा अपने नये घर न गई, पर अमरकान्त पिता को देखने क बार भी न आया। सिल्लो भी सुखदा के साथ चली गई थी। शाम ो आता, रोटियाँ पकाता, खाता और कांग्रेस दफ्तर या नौजवान-सभा े कार्यालय में चला जाता। कभी किसी आम जलसे में बोलता, कभी चन्दा उगाहता।

तीसरे दिन लालाजी उठ बैठे। सुखदा दिन भर तो उनके पास रही संध्या-समय उनसे विदा माँगी। लालाजी स्नेह-भरी आँखों से देखकर बोले-मैं जानता कि तुम मेरी तीमारदारी ही के लिए आई हो, तो दस-पाँच दिन औ पड़ा रहता बहू। मैंने तो जान-बूझकर कोई अपराध नहीं किया; लेकिन अनुचित हुआ हो, तो उसे क्षमा करो।

सुखदा का जी हुआ मान त्याग दे; पर इतना कष्ट उठाने के बाद अपनी गृहस्थी कुछ-कुछ जम चली थी, यहाँ आना कुछ अच्छा न लगता था फिर, वहाँ वह स्वामिनी थी। घर का संचालन उसके अधीन था। वहाँ की एक-एक वस्तु में अपनापन भरा हुआ था। एक-एक तृण में उसका स्वाभिमान झलक रहा था। एक-एक वस्तु मे उसका त्याग, उसका अनुराग अंकित था। एक-एक वस्तु पर उसकी आत्मा की छाप थी, मानो उसकी आत्मा ही प्रत्यक्ष हो गई हो। यहाँ की कोई वस्तु उसके अभिमान की वस्तु न थी, उसकी स्वामिनी कल्पना सब कुछ होने पर भी तुष्टि का आनन्द न पाती थी। पर लालाजी को समझाने के लिए किसी युक्ति की ज़रूरत थी। बोली-यह आप क्या कहते हैं दादा, हम लोग आपके बालक हैं। आप जो कुछ उपदेश या ताड़ना देंगे, वह हमारे ही भले के लिए देंगे। मेरा जी तो जाने को नहीं चाहता; लेकिन अकेले मेरे चले आने से क्या होगा। मुझे ख़ुद शर्म आती है, कि दुनिया क्या कह रही होगी। मैं जितना जल्द हो सकेगा, सबको घसीट लाऊँगी। जब तक आदमी कुछ दिन ठोकरें नहीं खा लेता, उसकी आँखें नहीं खुलतीं। मैं एक बार रोज़ आकर आपका भोजन बना जाया करूँगी। कभी बीबी चली आयेंगी, कभी मैं चली आऊँगी।

उस दिन से सुखदा का यही नियम हो गया। वह सवेरे यहाँ चली आती और लालाजी को भोजन कराके लौट जाती। फिर ख़ुद भोजन करके बालिका विद्यालय चली जाती। तीसरे पहर जब अमरकान्त खादी बेचने चला जाता तो वह नैना को लेकर फिर आ जाती और दो-तीन घंटे रहकर चली जाती। कभी-कभी ख़ुद रेणुका के पास जाती, तो नैना को यहाँ भेज देती। उसके स्वाभिमान में कोमलता थी, अगर कुछ जलन थी, तो वह कब की शीतल हो गई थी। वृद्ध पिता को कोई कष्ट हो, यह उससे न देखा जाता था।

इन दिनों उसे जो बात सबसे ज़्यादा खटकती थी, वह अमरकान्त का घर पर खादी लादकर चलना था। वह कई बार इस विषय पर उनसे झगड़ा कर चुकी थी; पर उसके कहने से वह और जिद पकड लेते थे। इसलिए उसने कहना-सुनना छोड दिया था, पर एक दिन घर जाते समय उसने अमरकान्त को खादी का गट्ठर लिये देख लिया। उस समय महल्ले की एक महिला भी उसके साथ थी। सुखदा मानो धरती मे गड़ गई।

अमर ज्योही घर आया, उसने यही विषय छेड दिया—मालूम तो हो गया, कि तुम बडे सत्यवादी हो। दूसरों के लिए भी कुछ रहने दोगे, या सब तुम्हीं ले लोगे। अब तो संसार मे परिश्रम का महत्त्व सिद्ध हो गया। अब तो बकचा लादना छोड़ो। तुम्हे शर्म न आती हो; लेकिन तुम्हारी इज्ज़त के साथ मेरी इज्ज़त भी तो बँधी हुई है। तुम्हें कोई अधिकार नहीं, कि तुम यो मुझे अपमानित करते फिरो।

अमर तो कमर कसे तैयार था ही। बोला—यह तो मैं जानता हूँ कि मेरा अधिकार कहीं कुछ नहीं है; लेकिन क्या यह पूछ सकता हूँ कि तुम्हारे अधिकारों की भी कहीं सीमा है, या वह असीम है?

'मैं ऐसा कोई काम नहीं करती, जिसमे तुम्हारा अपमान हो।'

'अगर मै कहूँ कि जिस तरह मेरे मज़दूरी करने से तुम्हारा अपमान होता है, उसी तरह तुम्हारे नौकरी करने से मेरा अपमान होता है, तो शायद तुम्हे विश्वास न आयेगा।'

'तुम्हारे मान-अपमान का कॉंटा संसार-भर से निराला हो, तो मैं लाचार हूँ।'

'मैं संसार का ग़ुलाम नहीं हूँ। अगर तुम्हे वह ग़ुलामी पसंद है, तो शौक़ से करो। तुम मुझे मजबूर नहीं कर सकतीं।'

'नौकरी न करूँ, तो तुम्हारे रुपए-बीस आने रोज़ मे घर का ख़र्च निभेगा?'

'मेरा ख़याल है, कि इस मुल्क में नब्बे फी सदी आदमियों को इससे भी कम में गुजर करना पड़ता है।'

'मैं उन नब्बे फी सदीवालों में नहीं, शेष दस फी सदीवालो मे हूँ। मैंने तुमसे अन्तिम बार कह दिया कि तुम्हारा बकचा ढोना मुझे असह्य है और

अगर तुमने न माना, तो मैं अपने हाथों से वह बकचा ज़मीन पर गिरा दूँगी इससे ज्यादा मैं कुछ कहना या सुनना नहीं चाहती।'

इधर डेढ महीने से अमरकान्त सकीना के घर न गया था। याद उसकी रोज़ आती; पर जाने का अवसर न मिलता। पन्द्रह दिन गुजर जाने के बाद उसे शर्म आने लगी, कि वह पूछेगी—इतने दिन क्यों नहीं आये, तो क्या जवाब दूँगा। इस शर्मा-शर्मी में वह एक महीना और न गया। यहाँ तक कि आज सकीना ने उसे एक कार्ड लिखकर ख़ैरियत पूछी थी और फ़ुरसत हो तो दस मिनट के लिए बुलाया था। आज अम्माँजान बिरादरी में जानेवाली थीं। बातचीत करने का अच्छा मौक़ा था। इधर अमरकान्त भी इस जीवन से ऊब उठा था। सुखदा के साथ जीवन कभी सुखी नहीं हो सकता, इधर इन डेढ-दो महीनों में उसे काफ़ी परिचय मिल गया था। वह जो कुछ है, वही रहेगा, ज्यादा तबदील नहीं हो सकता। सुखदा भी जो कुछ है, वही रहेगी फिर सुखी जीवन की आशा कहाँ? दोनों की जीवन-धारा अलग, आदर्श अलग, मनोभाव अलग। केवल विवाह-प्रथा की मर्यादा निभाने के लिए वह अपना जीवन धूल में नहीं मिला सकता, अपनी आत्मा के विकास को रोक सकता। मानव-जीवन का उद्देश्य कुछ और भी है, खाना-कमाना और मर जाना नहीं।

वह भोजन करके आज काम्रेस-दफ्तर न गया। आज उसे अपनी ज़िन्दगी की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या को हल करना था। इसे अब वह और नहीं टाल सकता। बदनामी की क्या चिन्ता। दुनिया अन्धी है और दूसरों को अन्धा बनाये रखना चाहती है। जो खुद अपने लिए नई राह निकालेगा, उस पर संकीर्ण विचारवाले हँसें तो क्या आश्चर्य। उसने खद्दर की दो साड़ियाँ उसे भेट देने के लिए ले लीं और लपका हुआ जा पहुँचा।

सकीना उसकी राह देख रही थी। कुण्डी खटकते ही द्वार खोल दिया और हाथ पकड़कर बोली—तुम तो मुझे भूल ही गये। इसी का नाम मुहब्बत है!

अमर ने लज्जित होकर कहा—यह बात नहीं है सकीना। एक लम्हे के लिए भी तुम्हारी याद दिल से नहीं उतरती, पर इधर बड़ी परेशानियों में रहा।

'मैंने सुना था। अम्माँ कहती थीं। मुझे यक़ीन न आता था, कि तुम अपने अब्बाजान से अलग हो गये। फिर यह भी सुना, कि तुम सिर पर खद्दर लादकर बेचते हो। मैं तो तुम्हें कभी सिर पर बोझ न लादने देती। मैं वह गठरी अपने सिर पर रखती और तुम्हारे पीछे-पीछे चलती। मैं यहाँ आराम से पड़ी थी और तुम इस धूप में कपड़े लादे फिरते थे। मेरा दिल तड़प तड़पकर रह जाता था।'

कितने प्यारे, मीठे शब्द थे! कितने कोमल, स्नेह में डूबे हुए! सुखदा के मुख से भी कभी यह शब्द निकले? वह तो केवल शासन करना जानती है! उसको अपने अन्दर ऐसी शक्ति का अनुभव हुआ, कि वह उसका चौगुना बोझ लेकर चल सकता है; लेकिन वह सकीना के कोमल हृदय को आघात नहीं पहुँचायेगा। आज से वह गट्ठर लादकर नहीं चलेगा। बोला—दादा की खुदग़रज़ी पर दिल जल रहा था सकीना। वह समझते होंगे, मैं उनकी दौलत का भूखा हूँ। मैं उन्हे और उनके दूसरे भाइयों को दिखा देना चाहता था, कि मैं कड़ी-से-कड़ी मेहनत कर सकता हूँ। दौलत की मुझे परवाह नहीं है। सुखदा उस दिन मेरे साथ आई थी; लेकिन एक दिन दादा ने झूठ-मूठ कहला दिया, मुझे बुख़ार हो गया है। बस वहाँ पहुँच गई। तब से दोनों वक्त उनका खाना पकाने जाती है।

सकीना ने सरलता से पूछा—तो क्या यह भी तुम्हें बुरा लगता है? बूढ़े आदमी अकेले घर में पड़े रहते हैं। अगर वह चली जाती हैं, तो क्या बुराई करती हैं। उनकी इस बात से तो मेरे दिल में उनकी इज्ज़त हो गई।

अमर ने खिसियाकर कहा—यह शराफ़त नहीं है सकीना, उनकी दौलत है, मैं तुमसे सच कहता हूँ। जिसने कभी झूठों मुझसे नहीं पूछा, तुम्हारा जी कैसा है, वह उनकी बीमारी की ख़बर पाते ही बेक़रार हो जाय, यह बात समझ में नहीं आती। उनकी दौलत उसे खींच ले जाती है, और कुछ नहीं। मैं अब इस नुमाइश की ज़िन्दगी से तंग आ गया हूँ सकीना। मैं सच कहता हूँ, पागल हो जाऊँगा। कभी-कभी जी में आता है सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊँ, ऐसी जगह भाग जाऊँ, जहाँ लोगों में आदमियत हो। आज तुम्हें फ़ैसला करना पड़ेगा सकीना। चलो, कहीं छोटी-सी कुटी बना लें और खुद-

ग़रज़ों की दुनिया से अलग मेहनत-मजदूरी करके ज़िन्दगी बसर करें। तुम्हारे साथ रहकर फिर मुझे किसी चीज़ की आरज़ू नहीं रहेगी। मेरी जान मुहब्बत के लिए तड़प रही है, उस मुहब्बत के लिए नहीं, जिसकी जुदाई में भी विसाल है; बल्कि जिसकी विसाल में भी जुदाई है। मैं वह मुहब्बत चाहता हूँ, जिसमे ख्वाहिश है, लज़्ज़त है। मै बोतल की सुर्ख़ शराब पीना चाहता हूँ, शायरों की ख़याली शराब नहीं।

उसने सकीना को छाती से लगा लेने के लिए अपनी तरफ खींचा। उसी वक्त द्वार खुला और पठानिन अन्दर आई। सकीना एक क़दम पीछे हट गई। अमर भी ज़रा पीछे खिसक गया।

सहसा उसने बात बनाई—आज तुम कहाँ चली गई थीं अम्माँ! मै यह साड़ियाँ देने आया था। तुम्हें मालूम तो होगा ही, मैं अब खद्दर बेचता हूँ।

पठानिन ने साड़ियो का जोड़ा लेने के लिए हाथ नहीं बढाया। उसका सूखा, पिचका हुआ मुँह तमतमा उठा, सारी झुर्रियाँ, सारी सिकुड़ने जैसे भीतर की गर्मी से तन उठीं। गली-बुझी हुई आँखें जैसे जल उठीं। आँखें निकालकर बोलीं—होश में आ छोकरे! यह साड़ियाँ ले जा, अपनी बीवी, बहन को पहना, यहाँ तेरी साड़ियो के भूखे नहीं हैं। तुझे शरीफजादा और साफदिल समझकर तुझसे अपनी ग़रीबी का दुखड़ा कहती थी। यह न जानती थी, कि तू ऐसे शरीफ़ बाप का बेटा होकर शोहदापन करेगा। बस अब मुँह न खोलना, चुपचाप चला जा, नही आँखें निकलवा लूँगी। तू है किस घमण्ड में? अभी एक इशारा कर दूँ, तो सारा महल्ला जमा हो जाय। हम ग़रीब हैं, मुसीबत के मारे हैं, रोटियो को मुहताज है। जानता है क्यो? इसलिए कि हमे आबरू प्यारी है। ख़बरदार जो कभी इधर का रुख किया! मुँह में कालिख लगाकर चला जा!

अमर पर फ़ालिज गिर गया, पहाड़ टूट पड़ा, वज्रपात हो गया। इन वाक्यो से उसके मनोभावों का अनुमान हम नहीं कर सकते। जिनके पास कल्पना है, वही कुछ अनुमान कर सकते है। वह जैसे संज्ञा-शून्य हो गया, मानो पाषाण-प्रतिमा हो। एक मिनट तक वह इसी दशा मे खड़ा रहा।

फिर दोनों साड़ियाँ उठा लीं और गोली खाये जानवर की भाँति सिर लटकाये, लडखडाता हुआ द्वार की ओर चला।

सहसा सकीना ने उसका हाथ पकडकर रोते हुए कहा—बाबूजी, मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूँ। जिन्हे अपनी आबरू प्यारी है, वह अपनी आबरू लेकर चाटें। मैं बेआबरू ही रहूँगी।

अमरकान्त ने हाथ छुडा लिया और आहिस्ता से बोला—जिन्दा रहेंगे, तो फिर मिलेंगे सकीना। इस वक्त जाने दो। मैं अपने होश में नहीं हूँ।

यह कहते हुए उसने कुछ समझकर दोनों साड़ियाँ सकीना के हाथ में रख दीं और बाहर चला गया।

सकीना ने सिसकियाँ लेते हुए पूछा—तो आओगे कब?

अमर ने पीछे फिरकर कहा—जब यहाँ मुझे लोग शोहदा और कमीना न समझेंगे।

अमर चला गया और सकीना हाथों में साड़ियाँ लिये द्वार पर खड़ी अन्धकार में ताकती रही।

सहसा बुढिया ने पुकारा—अब आकर बैठेगी कि वहीं दरवाज़े पर खडी रहेगी। मुँह मे कालिख तो लगा दी। अब और क्या करने पर लगी हुई है?

सकीना ने क्रोध भरी आँखो से देखकर कहा—अम्माँ, आक़बत से डरो, क्यो किसी भले आदमी पर तोहमत लगाती हो। तुम्हें ऐसी बात मुँह से निकालते शर्म भी नहीं आती! उनकी नेकियो का यह बदला दिया है तुमने। तुम दुनिया मे चिराग़ लेकर ढूँढ आओ, ऐसा शरीफ़ आदमी तुम्हे न मिलेगा।

पठानिन ने डाँट बताई—चुप रह बेहया, कहीं की! शर्माती नहीं, ऊपर से ज़बान चलाती है। आज घर में कोई मर्द होता, तो सिर काट लेता। मैं जाकर लाला से कहती हूँ। जब तक इस पाजी को शहर से न निकाल दूँगी, मेरा कलेजा न ठंडा होगा। मैं उसकी जिन्दगी ग़ारत कर दूँगी।

सकीना ने निश्शंक भाव से कहा—अगर उनकी ज़िंदगी ग़ारत हुई, तो मेरी भी ग़ारत होगी। इतना समझ लो।

'तो आखिर कहाँ जाओगे ?'

'कह नहीं सकता। जिधर तक़दीर ले जाय।'

'मैं चलकर बुढ़िया को समझा दूँ ?'

'फ़ज़ूल है। शायद मेरी तक़दीर में यही लिखा था। कभी खुशी नसीब हुई और न शायद नसीब होगी। जब रो-रोकर ही मरना है, तो कहीं भी रो सकता हूँ।'

'चलो मेरे घर, वहाँ डाक्टर साहब को भी बुला लें, फिर सलाह करें। यह क्या कि एक बुढ़िया ने फटकार बताई और आप घर से भाग खड़े हुए। यहाँ तो ऐसी कितनी ही फटकारें सुन चुका, पर कभी परवाह नहीं की।'

'मुझे तो सकीना का खयाल आता है कि बुढ़िया उसे कोस-कोसकर मार डालेगी।'

'आखिर तुमने उसमें ऐसी क्या बात देखी, जो लट्टू हो गये ?'

अमर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—तुम्हें क्या बताऊँ भाई-जान, सकीना अस्मत और वफ़ा की देवी है। गूदड़ में यह रत्न कहाँ से आ गया, यह तो खुदा ही जाने; पर मेरी ग़मनसीब जिन्दगी में वही चन्द लमहे यादगार हैं, जो उसके साथ गुज़रे। तुमसे इतनी ही अर्ज़ है कि ज़रा उसकी ख़बर लेते रहना। इस वक्त दिल की जो कैफ़ियत है, वह बयान नहीं कर सकता। नहीं जानता ज़िन्दा रहूँगा, या मरूँगा। नाव पर बैठा हूँ। कहाँ जा रहा हूँ ख़बर नहीं। कब, कहाँ, नाव किनारे लगेगी, मुझे कुछ ख़बर नहीं। बहुत मुमकिन है मँझधार ही में डूब जाय। अगर ज़िन्दगी के तजरबे से कोई बात समझ में आई, तो यह कि संसार में किसी न्यायी ईश्वर का राज्य नहीं है। जो चीज जिसे मिलनी चाहिये, उसे नहीं मिलती। इसका उलटा ही होता है। हम ज़ंजीरों में जकड़े हुए हैं। खुद हाथ-पाँव नहीं हिला सकते। हमें एक चीज़ दे दी जाती है और कहा जाता है, इसके साथ तुम्हें ज़िन्दगी भर निबाह करना होगा। हमारा धर्म है कि उस चीज़ पर क़नायत करें, चाहे हमें उससे नफ़रत ही क्यों न हो। अगर हम अपनी ज़िन्दगी के लिए कोई ... राह निकालते हैं, तो हमारी गरदन पकड़ ली जाती है, हमें कुचल दिया

जाता है। इसी को दुनिया इन्साफ़ कहती है। कम-से-कम मैं इस दुनिया में रहने के क़ाबिल नहीं हूँ।

सलीम बोला—तुम लोग बैठे-बैठाये अपनी जान जहमत में डालने की फ़िक्र किया करते हो, गोया ज़िन्दगी हज़ार-दो-हज़ार साल की है। घर में रुपए भरे हुए हैं, बाप तुम्हारे ऊपर जान देता है, बीवी परी-जैसी बैठी हुई है, और आप एक जुलाहे की लडकी के पीछे घर-बार छोडे भागे जा रहे हैं। मैं तो इसे पागलपन कहता हूँ। ज़्यादा-से-ज़्यादा यही तो होगा, कि तुम कुछ कर जाओगे, यहाँ पड़े सोते रहेंगे। पर अंजाम दोनों का एक है। तुम राम-नाम सत्त हो जाओगे, मैं इन्नल्लाह राजेऊन!

अमर ने विषाद-भरे स्वर में कहा—जिस तरह तुम्हारी ज़िन्दगी गुज़री है, उस तरह मेरी ज़िन्दगी भी गुज़रती, तो शायद मेरे भी यही ख़याल होते। मैं वह दरख़्त हूँ, जिसे कभी पानी नहीं मिला। ज़िन्दगी की वह उम्र, जब इंसान को मुहब्बत की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती है, बचपन है। उस वक्त पौधे को तरी मिल जाय, तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मज़बूत हो जाती हैं। उस वक्त ख़ूराक न पाकर, उसकी ज़िन्दगी ख़ुश्क हो जाती है। मेरी माता का उसी ज़माने में देहान्त हुआ और तब से मेरी रूह को ख़ूराक नहीं मिली। वही भूख मेरी ज़िन्दगी है। मुझे जहाँ मुहब्बत का एक रेज़ा भी मिलेगा, मैं बे अख़्तियार उसी तरफ जाऊँगा। क़ुदरत का अटल क़ानून मुझे उस तरफ़ ले जाता है। इसके लिए अगर मुझे कोई ख़तावार कहे, तो कहे। मैं तो ख़ुदा ही को ज़िम्मेदार कहूँगा।

कहा—

सलीम ने कहा—आओ, खाना तो खा लो। पुरानी दोस्ती है। उसी जलावतन रहने का इरादा है? पर्दा है! मैं सब सुन चुका

दोनों आकर कमरे में बैठे। अमर ने जब बुरी तरह फटकारा। मैंने बैठा हुआ है, जिसे मेरा दर्द हो। बाप को जिसकी स्त्री लक्ष्मी का रूप ख़ुश हो कि अच्छा हुआ बला टली। सुखद किन अगर कोई बात ही है, दोस्तों में ले दे के एक तुम हो। तुमसे कभी-कभी भूल-चूक सभी से होती है। होती, तो शायद उसकी मुहब्बत खींच लाती। त लडकी की किसी भले घर में ही क्यों होती। दुनिया में सबसे बदनसीब वह है, जिसे घर से भागने और शहर

भर में ढिढोरा पीटने की क्या ज़रूरत है। मेरी परवाह मत करो; लेकिन तु
ईश्वर ने बाल-बच्चे दिये हैं। सोचो, तुम्हारे चले जाने से कितने प्र
अनाथ हो जायँगे। स्त्री तो स्त्री ही है, बहन है, वह रो-रोकर मर जायग
रेणुका देवी हैं, वह भी तुम्हीं लोगो के प्रेम से यहाँ पड़ी हुई हैं। जब तुम्ह
होगे, तो वह सुखदा को लेकर चली जायँगी, मेरा घर चौपट हो जायगा।
घर मे अकेला भूत की तरह पड़ा रहूँगा। बेटा सलीम, मै कुछ बेजा तो न
कह रहा हूँ! जो कुछ हो गया सो हो गया। आगे के लिए एहति
रखो। तुम खुद समझदार हो, मैं तुम्हे क्या समझाऊँ। मन को कर्तव्य
डोरी से बाँधना पड़ता है; नहीं तो उसकी चंचलता आदमी को न जाने क
लिये-लिये फिरे। तुम्हे भगवान् ने सब कुछ दिया है। कुछ घर का क
देखो, कुछ बाहर का काम देखो। चार दिन की ज़िन्दगी है, इसे हँस-खेल
काट देना चाहिए। मारे-मारे फिरने से क्या फ़ायदा।

अमर इस तरह बैठा रहा, मानो कोई पागल बक रहा है। आज तुम
चिकनी-चुपड़ी बातें करके मुझे फाँसना चाहते हो? मेरी ज़िन्दगी तुम्हीं
ख़राब की। तुम्हारे ही कारण मेरी यह दशा हुई। तुमने मुझे कभी
घर को घर न समझने दिया। तुम मुझे चक्की का बैल बनाना चाहते हो
वह अपने बाप का अदब उतना न करता था, जितना दबता था, फिर भी उस
कई बार बीच में टोकने की इच्छा हुई। ज्योंही लालाजी चुप हुए, उ
धृष्टता के साथ कहा—दादा, आपके घर में मेरा इतना जीवन नष्ट हो गय
अब मैं उसे और नष्ट नहीं करना चाहता। आदमी का जीवन केवल ख
और मर जाने के लिए नहीं होता, न धन संचय उसका उद्देश्य है। जि
दशा में मैं हूँ, वह मेरे लिए असहनीय हो गई है। मैं एक नये जीवन
सूत्रपात करने जा रहा हूँ, जहाँ मज़दूरी लज्जा की वस्तु नहीं। जहाँ स्त्री प
को केवल नीचे नहीं घसीटती, उसे पतन की ओर नहीं ले जाती; बल्कि उस
जीवन में आनन्द और प्रकाश का संचार करती है। मैं रूढियों और मर्याद
का दास बनकर नहीं रहना चाहता। आपके घर में मुझे नित्य बाधाओं
सामना करना पड़ेगा और उसी संघर्ष में मेरा जीवन समाप्त हो जायगा। क्
दिल से कह सकते हैं, आपके घर में सकीना के लिए स्थान है!

लालाजी ने भीत नेत्रों से देखकर पूछा—किस रूप में ?

'मेरी पत्नी के रूप में ।'

'नहीं, एक बार नहीं और सौ बार नहीं !'

'तो फिर मेरे लिए भी आपके घर मे स्थान नहीं है ।'

'और तो तुम्हे कुछ नहीं कहना है ?'

'जी नहीं ।'

लालाजी कुरसी से उठकर द्वार की ओर बढ़े । फिर पलटकर बोले—
सकते हो, कहाँ जा रहे हो ?

'अभी तो कुछ ठीक नहीं है ।'

'जाओ, ईश्वर तुम्हे सुखी रखे । अगर कभी किसी चीज़ की ज़रूरत हो,
मुझे लिखने में सकोच न करना ।'

'मुझे आशा है, मैं आपको कोई कष्ट न दूँगा ।'

लालाजी ने सजल-नेत्र होकर कहा—चलते-चलते घाव पर नमक न छिड़को,
तू । बाप का हृदय नहीं मानता । कम-से-कम इतना तो करना कि कभी-
। पत्र लिखते रहना । तुम मेरा मुँह न देखना चाहो ; लेकिन मुझे कभी-
ो आने-जाने से न रोकना । जहाँ रहो, सुखी रहो, यही मेरा आशीर्वाद है ।

दूसरा भाग

१

उत्तर की पर्वतश्रेणियों के बीच एक छोटा-सा रमणीक पहाड़ी गाँव है। सामने गंगा किसी बालिका की भाँति हँसती, उछलती, नाचती, गाती, दौड़ती चली जाती है। पीछे ऊँचा पहाड़ किसी वृद्ध योगी की भाँति जटा बढ़ाये, श्याम, गम्भीर, विचार-मग्न खड़ा है। यह गाँव मानो उसकी बाल-स्मृति है, आमोद-विनोद से रञ्जित, या कोई युवावस्था का सुनहरा, मधुर स्वप्न। अब भी उन स्मृतियों को हृदय में सुलाये हुए, उस स्वप्न को छाती से चिपकाये हुए है।

इस गाँव में मुश्किल से बीस-पचीस झोंपड़े होंगे। पत्थर के रोड़ों को नीचे-ऊपर रखकर दीवारें बना ली गई हैं। उन पर छप्पर डाल दिया गया है। द्वारों पर बनकट की टट्टियाँ हैं। उन्हीं काबुकों में उस गाँव की जनता अपने गाय-बैलों, भेड़-बकरियों को लिये अनन्त से विश्राम करती चली आती है।

एक दिन संध्या समय एक साँवला-सा, दुबला-पतला, युवक, मोटा कुरता, ऊँची धोती और चमरौधे जूते पहने, कन्धे पर लुटिया-डोर रखे, बग़ल में एक पोटली दबाये इस गाँव मे आया और एक बुढ़िया से पूछा—क्यों माता, यहाँ एक परदेशी को रात भर रहने का ठिकाना मिल जायगा?

बुढ़िया सिर पर लकड़ी का एक गट्ठा रखे, एक बूढ़ी गाय को हार की ओर से हाँकती चली आती थी। युवक को सिर से पाँव तक देखा, पसीने में तर, सिर और मुँह पर गर्द जमी हुई, आँखें भूखी, मानो जीवन में कोई आश्रय ढूँढ़ता फिरता हो। दयार्द्र होकर बोली—यहाँ तो सब रैदास रहते हैं भैया।

अमरकान्त इसी भाँति महीनों से देहातों का चक्कर लगाता चला आ रह है। लगभग पचास छोटे-बड़े गाँवों को वह देख चुका है, कितने ही आदमि से उसकी जान-पहचान हो गई है, कितने ही उसके सहायक हो गये हैं; कित ही भक्त बन गये हैं। नगर का वह सुकुमार युवक दुबला तो हो गया है पर धूप और लू, आँधी और वर्षा, भूख और प्यास सहने की शक्ति उसमें प्रब हो गई है। भावी जीवन की यही उसकी तैयारी है, यही तपस्या है। वह ग्राम वासियों की सरलता और सहृदयता, प्रेम और सन्तोष से मुग्ध हो गया है ऐसे सीधे-सादे, निष्कपट, मनुष्यों पर आये-दिन जो अत्याचार होते रहते है उन्हें देखकर उसका खून खौल उठता है। जिस शान्ति की आशा उसे देहा जीवन की ओर खींच लाई थी, उसका यहाँ नाम भी न था। घोर अन्या का राज्य था और अमर की आत्मा इस राज्य के विरुद्ध झण्डा उठा फिरती थी।

अमर ने नम्रता से कहा—मैं जात-पाँत नहीं मानता, माताजी। जो सच्च है, वह चमार भी हो, तो आदर के योग है; जो दग़ाबाज, झूठा, लम्पट है वह बाम्हन भी हो, तो आदर के योग नहीं। लाओ, लकड़ियों का गट्ठा लेता चलूँ।

उसने बुढ़िया के सिर से गट्ठा उतारकर अपने सिर पर रख लिया।

बुढ़िया ने आशीर्वाद देकर पूछा—कहाँ जाना है बेटा?

'यों ही माँगता-खाता हूँ माता, आना-जाना कहीं नहीं है। रात को से की जगह तो मिल जायगी?'

'जगह की कौन कमी है भैया, मन्दिर के चौतरे पर सो रहना। कि साधु-सन्त के फेर में तो नहीं पड गये हो? मेरा भी एक लड़का उनके च में फँस गया। फिर कुछ पता न चला। अब तक कई लड़कों का बाप होता।

दोनों गाँव में पहुँच गये। बुढ़िया ने अपनी झोंपड़ी की टट्टी खो हुए कहा—लाओ, लकड़ी रख दो यहाँ। थक गये हो, थोड़ा-सा दूध रखा पी लो। और सब गोरू तो मर गये बेटा। यही गाय रह गई है। भर दूध दे देती है। खाने को तो पाती नहीं, दूध कहाँ से दे।

अमर ऐसे सरल स्नेह के प्रसाद को अस्वीकार न कर सका। झोपड़ी में
या, तो उसका हृदय काँप उठा। मानो दरिद्रता छाती पीट-पीटकर रो रही
। और हमारा उन्नत समाज विलास में मग्न है। उसे रहने को बँगला
ाहिये, सवारी को मोटर। इस संसार का विध्वंस क्यों नहीं हो जाता?

बुढ़िया ने दूध एक पीतल के कटोरे में उँडेल दिया और आप घड़ा उठा-
र पानी लाने चली। अमर ने कहा—मैं खींचे लाता हूँ माता, रस्सी तो
ुएँ पर होगी?

'नहीं बेटा, तुम कहाँ जाओगे पानी भरने। एक रात के लिए आ गये,
मैं तुमसे पानी भराऊँ।'

बुढ़िया हाँ, हाँ, करती रह गई। अमरकान्त घड़ा लिये कुएँ पर पहुँच
या। बुढ़िया से न रहा गया। वह भी उसके पीछे पीछे गई।

कुएँ पर कई औरतें पानी खींच रही थीं। अमरकान्त को देखकर एक
वती ने पूछा—कोई पाहुने हैं क्या सलोनी काकी?

बुढ़िया हँसकर बोली—पाहुने न होते, तो पानी भरने कैसे आते। तेरे
र ऐसे पाहुने आते हैं?

युवती ने तिरछी आँखों से अमर को देखकर कहा—हमारे पाहुने तो अपने
ाथ से पानी भी नहीं पीते काकी। ऐसे भोले-भाले पाहुने को तो मैं अपने
र ले जाऊँगी।

अमरकान्त का कलेजा धक् से हो गया। वह युवती वही मुन्नी थी, जो
ख़ून के मुक़दमे में बरी हो गई थी। वह अब उतनी दुर्बल, उतनी चिन्तित
हीं है। रूप में माधुर्य है, अंगों में विकास, मुख पर हास्य की मधुर छवि।
ानन्द जीवन का तत्त्व है। वह अतीत की परवाह नहीं करता; पर शायद
ुन्नी ने अमरकान्त को नहीं पहचाना। उसकी सूरत इतनी बदल गई है।
ाहर का सुकुमार युवक देहात का मजूर हो गया है।

अमर ने झेंपते हुए कहा—मैं पाहुना नहीं हूँ देवी, परदेशी हूँ। आज
स गाँव में आ निकला। इस नाते सारे गाँव का अतिथि हूँ।

युवती ने मुसकराकर कहा—तब एक-दो घड़ों से पिंड न छूटेगा। दो सौ
ड़े भरने पड़ेंगे, नहीं तो घड़ा इधर बढ़ा दो। झूठ तो नहीं कहती काकी?

उसने अमरकान्त के हाथ से घड़ा ले लिया और चट फंदा लगा, कुएँ में डाल, बात-की-बात में घड़ा खींच लिया।

अमरकान्त घड़ा लेकर चला गया, तो मुन्नी ने सलोनी से कहा—किसी भले घर का आदमी है काकी। देखा, कितना शर्माता था। मेरे यहाँ से अचार मँगवा लीजियो, आटा-वाटा तो है?

सलोनी ने कहा—बाजरे का है, गेहूँ कहाँ से लाती!

'तो मैं आटा लिये आती हूँ। नहीं चलो दे दूँ। वहाँ काम-धन्धे में लग जाऊँगी, तो सुरति न रहेगी।'

मुन्नी को तीन साल हुए मुखिया का लड़का हरिद्वार से लाया था। एक सप्ताह से एक धर्मशाले के द्वार पर जीर्ण दशा में पड़ी थी। बड़े-बड़े आदमी धर्मशाले मे आते थे, सैकड़ों-हजारों दान करते थे, पर इस दुखिया पर किसी को दया न आती थी। वह चमार युवक जूते बेचने गया था। इस पर उसे दया आ गई। गाड़ी पर लादकर घर लाया। दवा-दारू होने लगी। चौधरी बिगड़े, यह मुर्दा क्यों लाया; पर युवक बराबर दौड़-धूप करता रहा। वहाँ डाक्टर-वैद्य कहाँ थे। भभूत और आशीर्वाद का भरोसा था। एक ओझे की तारीफ़ सुनी, मुर्दों को जिला देता है। रात को उसे बुलाने चला। चौधरी ने कहा—दिन होने दो तब जाना। युवक ने न माना, रात को ही चल दिया। गंगा चढ़ी हुई थी। उसे पार करके जाना था। सोचा, तैरकर निकल जाऊँगा, कौन बहुत चौड़ा पाट है। सैकड़ों ही बार इस तरह आ-जा चुका था। निश्शंक पानी में घुस पड़ा; पर लहरें तेज़ थीं, पाँव उखड़ गये, बहुत सँभालना चाहा; पर न सँभल सका। दूसरे दिन दो कोस पर उसकी लाश मिली। एक चट्टान से चिमटी पड़ी थी। उसके मरते ही मुन्नी जी उठी और तब से यहीं है। यही घर उसका घर है। यहाँ उसका आदर है, मान है। वह अपनी जात-पाँत भूल गई, आचार-विचार भूल गई, और ऊँच जाति की ठकुराइन अछूतों के साथ, अछूत बनकर आनन्दपूर्वक रहने लगी। वह घर की मालकिन थी। बाहर का सारा काम वह करती, भीतर की रसोई-पानी, कूटना पीसना दोनों देवरानियाँ करती थीं। वह बाहरी न थी। चौधरी की बहू हो गई थी।

सलोनी को ले जाकर मुन्नी ने एक थाल में आटा, अचार और दही रखकर दिया ; पर सलोनी को यह थाल लेकर घर में जाते लाज आती थी। पाहुना द्वार पर बैठा हुआ है। सोचेगा, इसके घर मे आटा भी नहीं है ? ज़रा और अँधेरा हो जाय, तो जाऊँ।

मुन्नी ने पूछा—क्या सोचती हो काकी ?

'सोचती हूँ, ज़रा और अँधेरा हो जाय तो जाऊँ। अपने मन मे क्या कहेगा।'

'चलो मैं पहुँचा देती हूँ। कहेगा क्या, क्या समझता है यहाँ धन्ना सेठ बसते हैं ? मैं तो कहती हूँ, देख लेना वह बाजरे की ही रोटियाँ खायगा। गेहूँ को छुयेगा भी नहीं।'

दोनो पहुँचीं तो देखा अमरकान्त द्वार पर झाड़ू लगा रहा है। महीनों से झाड़ू न लगी थी। मालूम होता था, उलझे-बिखरे बालों पर कंघी कर दी गई है।

सलोनी थाली लेकर जल्दी से भीतर चली गई। मुन्नी ने कहा—अगर ऐसी मेहमानी करोगे, तो यहाँ से कभी न जाने पाओगे।

उसने अमर के पास जाकर उसके हाथ से झाड़ू छीन ली। अमर ने कूड़े को पैरों से एक जगह बटोरकर कहा—सफ़ाई हो गई, तो द्वार कैसा अच्छा लगने लगा।

'कल चले जाओगे, तो यह बातें याद आवेंगी। परदेसियों का क्या विश्वास ? फिर इधर क्यो आओगे।'

मुन्नी के मुख पर उदासी छा गई।

'जब कभी इधर आना होगा, तो तुम्हारे दर्शन करने अवश्य आऊँगा। ऐसा सुन्दर गाँव मैंने नहीं देखा। नदी, पहाड, जगल, इसकी शोभा ही निराली है। जी चाहता है, यहीं रह जाऊँ और कहीं जाने का नाम न लूँ।'

मुन्नी ने उत्सुकता से कहा—तो यहीं रह क्यों नहीं जाते !

मगर फिर कुछ सोचकर बोली—तुम्हारे घर में और लोग भी तो होंगे, वह तुम्हें यहाँ क्यों रहने देंगे ?

'मेरे घर में ऐसा कोई नहीं है, जिसे मेरे मरने-जीने की चिन्ता हो। मैं

मुन्नी आग्रह करके बोली—तो यहीं रह जाओ, कौन भाई हो तुम?

'यह तो मै बिलकुल भूल गया भाभी। जो बुलाकर प्रेम से एक रोटी खिला दे वही मेरा भाई है।'

'तो कल मुझे आ लेने देना। ऐसा न हो, चुपके से भाग जाओ।'

अमरकान्त ने झोंपडी में आकर देखा, तो बुढ़िया चूल्हा जला रही थी। गीली लकडी, आग न जलती थी। पोपले मुँह मे फूँक भी न थी। अमर को देखकर बोली— तुम यहाँ धुएँ में कहाँ आ गये बेटा, जाकर बाहर बैठो, यह चटाई उठा ले जाओ।

अमर ने चूल्हे के पास जाकर कहा—तू हट जा, मै आग जलाये देता हूँ।

सलोनी ने स्नेहमय कठोरता से कहा—तू बाहर क्यों नहीं जाता। मर्दों का तो इस तरह रसोई में घुसना अच्छा नहीं लगता।

बुढिया डर रही थी, कि कहीं अमरकान्त दो प्रकार के आटे न देख ले। शायद वह उसे दिखलाना चाहती थी कि मैं भी गेहूँ का आटा खाती हूँ। अमर यह रहस्य क्या जाने। बोला—अच्छा तो आटा निकाल दे, मैं गूँध दूँ।

सलोनी ने हैरान होकर कहा—तू कैसा लड़का है भाई। बाहर जाकर क्यों नहीं बैठता।

उसे वह दिन याद आये, जब उसके अपने बच्चे उसे अम्माँ-अम्माँ कहकर घेर लेते थे और वह उन्हें डाँटती थी। उस उजड़े हुए घर में आज एक दिया जल रहा था; पर कल फिर वही अँधेरा हो जायगा। वही सन्नाटा। इस युवक की ओर क्यों उसकी इतनी ममता हो रही थी? कौन जाने कहाँ से आया है, कहाँ जायगा; पर यह जानते हुए भी अमर का सरल बालकों का-सा निष्कपट व्यवहार, उसका बार-बार घर में आना और हरएक काम करने को तैयार हो जाना उसकी सूखी मातृ-भावना को सींचता हुआ-सा जान पड़ता था, मानो अपने ही सिधारे हुए बालकों की प्रतिध्वनि कहीं दूर से उसके कानों में आ रही है।

एक बालक लालटेन लिये, कन्धे पर एक दरी रक्खे आया और दोनों चीज़ें पास रखकर बैठ गया। अमर ने पूछा—दरी कहाँ से लाये?

'काकी ने तुम्हारे लिए भेजी है। वही काकी, जो अभी आई थीं।'

अमर ने प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर कहा—अच्छा, तुम उनके भतीजे हो? तुम्हारी काकी कभी तुम्हें मारती तो नहीं?

बालक सिर हिलाकर बोला—कभी नहीं। वह तो हमें खेलाती हैं। दुरजन को नहीं खेलातीं, वह बडा बदमास है।

अमर ने मुसकिराकर पूछा—कहाँ पढने जाते हो?

बालक ने नीचे का ओठ सिकोडकर कहा—कहाँ जायँ, हमें कौन पढावे। मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा हम दोनों को लेकर गये थे। पण्डितजी ने नाम लिख लिया, पर हमें सबसे अलग बैठाते थे। सब लडके हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढाते थे। दादा ने नाम कटा दिया।

अमर की इच्छा हुई, चौधरी से जाकर मिले। कोई स्वाभिमानी आदमी मालूम होता है। पूछा—तुम्हारे दादा क्या कर रहे हैं?

बालक ने लालटेन से खेलते हुए कहा—बोतल लिये बैठे है। भुने चने ध हैं। बस अभी बक-झक करेंगे, खूब चिल्लायँगे, किसी को मारेंगे, किसी को गालियाँ देंगे। दिन-भर कुछ नहीं बोलते। जहाँ बोतल चढाई, कि बक चले।

अमर ने इस वक्त उनसे मिलना उचित न समझा।

सलोनी ने पुकारा—भैया, रोटी तैयार है, आओ गरम-गरम खा लो।

अमरकान्त ने हाथ-मुँह धोया और अन्दर पहुँचा। पीतल की थाली रोटियाँ थीं, पथरी मे दही, पत्ते पर अचार, लोटे में पानी रखा हुआ था थाली पर बैठकर बोला—तुम भी क्यो नहीं खातीं?

'तुम खा लो बेटा, मै फिर खा लूँगी।'

'नहीं, मैं यह न मानूँगा। मेरे साथ खाओ।'

'रसोई' जूठी हो जायगी कि नहीं?'

'हो जाने दो। मैं ही तो खानेवाला हूँ।'

'रसोई' मे भगवान् रहते हैं। उसे जूठी न करना चाहिये।'

'तो मैं भी बैठा रहूँगा।'

'भाई, तू तो बडा ख़राब लड़का है।'

रसोई में दूसरी थाली कहाँ थी। सलोनी ने हथेली पर बाजरे की रोटिय

ले लीं और रसोई के बाहर निकल आई। अमर ने बाजरे की रोटियाँ देख लीं। बोला—यह न होगा काकी। मुझे तो यह फुलके दे दिये, आप मज़ेदार रोटियाँ उड़ा रही हो।

'तू क्या खावेगा बाजरे की रोटियाँ बेटा। एक दिन के लिए आ पड़ा, तो बाजरे की रोटियाँ खिलाऊँ?'

'मैं तो मेहमान नहीं हूँ। यही समझ लो, कि तुम्हारा कोई खोया हुआ बालक आ गया है।'

'पहले दिन उस लड़के की भी मेहमानी की जाती है। मैं तुम्हारी क्या मेहमानी करूँगी बेटा। रूखी रोटियाँ भी कोई मेहमानी है! न दारू, न सिकार।'

'मैं तो दारू-शिकार छूता भी नहीं काकी।'

अमरकान्त ने बाजरे की रोटियों के लिए ज्यादा आग्रह न किया। बुढ़िया को और दुःख होता। दोनों खाने लगे। बुढ़िया यह बात सुनकर बोली—इस उमिर में तो भगतई नहीं अच्छी लगती बेटा। यही तो खाने-पीने के दिन हैं। भगतई के लिए तो बुढ़ापा है ही।

'भगत नहीं हूँ काकी। मेरा मन नहीं चाहता।'

'मा-बाप भगत रहे होंगे।'

'हाँ, वह दोनों जने भगत थे।'

'अभी दोनों हैं न?'

'अम्माँ तो मर गईं, दादा हैं। उनसे मेरी नहीं पटती।'

'तो घर से रूठकर आये हो?'

'एक बात पर दादा से कहा-सुनी हो गई। मैं चला आया।'

'घरवाली तो है न?'

'हाँ, वह भी है।'

'बेचारी रो-रोकर मरी जाती होगी। कभी चिट्ठी-पत्तर लिखते हो?'

'उसे भी मेरी परवाह नहीं है काकी। बड़े घर की लड़की है। अपने भोग-विलास में मगन है। मैं कहता हूँ, चल किसी गाँव में खेती-बारी करें ...हद अच्छा लगता है।'

अमरकान्त भोजन कर चुका, तो अपनी थाली उठा ली और बाहर आकर माँजने लगा। सलोनी भी पीछे-पीछे आकर बोली—तुम्हारी थाली मैं माँज देती, तो छोटी हो जाती ?

अमर ने हँसकर कहा—तो क्या मैं अपनी थाली माँजकर छोटा हो जाऊँगा ?

'यह तो अच्छा नहीं लगता कि एक दिन के लिए कोई आये, तो थाली माँजने लगे। अपने मन में सोचते होगे, कहाँ इस भिखारिन के घर ठहरा।'

अमरकान्त के दिल पर चोट न लगे, इसलिए वह मुसकिराई।

अमर ने मुग्ध होकर कहा—भिखारिन के सरल, पवित्र स्नेह में जो सुख मिला, वह माता की गोद के सिवा और कहीं नहीं मिल सकता था काकी।

उसने थाली धो-धाकर रख दी और दरी बिछाकर ज़मीन पर लेटने ही जा रहा था, कि पन्द्रह-बीस लड़कों का एक दल आकर खड़ा हो गया। दो-तीन लड़कों के सिवा और किसी की देह पर साबित कपड़े न थे। अमरकान्त कुतूहल से उठ बैठा, मानो कोई तमाशा होनेवाला है।

जो बालक अभी दरी लेकर आया था, आगे बढ़कर बोला—इतने लड़के हैं हमारे गाँव में। दो-तीन लड़के नहीं आये, कहते थे वह कान काट लेंगे।

अमरकान्त ने उठकर उन सभों को एक क़तार में खड़ा किया और एक-एक का नाम पूछा। फिर बोले—तुममें से जो-जो रोज़ हाथ-मुँह धोता है, अपना हाथ उठावे।

किसी लड़के ने हाथ न उठाया। यह प्रश्न किसी की समझ में न आया।

अमर ने आश्चर्य से कहा—ए ! तुममें से कोई रोज़ हाथ मुँह नहीं धोता ?

सभों ने एक दूसरे की ओर देखा। दरीवाले लड़के ने हाथ उठा दिया। उसे देखते ही दूसरों ने भी हाथ उठा दिये।

अमर ने फिर पूछा—तुम में से कौन-कौन लड़के रोज़ नहाते हैं ? हाथ उठावें। पहले किसी ने हाथ न उठाया। फिर एक एक करके सभों ने हाथ उठा दिये। इसलिए नहीं कि सभी रोज़ नहाते थे, बल्कि इसलिए कि वह दूसरों से पीछे न रहे।

सलोनी खड़ी थी। बोली—तू तो महीने-भर में भी नहीं नहाता रे जंग-लिया। तू क्यों हाथ उठाये हुए है ?

जंगलिया ने अपमानित होकर कहा—तो गूदड़ ही कौन रोज़ नहाते हैं। भुलई, पुन्नू, घसीटे, कोई भी तो नहीं नहाता।

सभी एक दूसरे की क़लई खोलने लगे।

अमर ने डाँटा—अच्छा आपस में लड़ो मत। मैं एक बात पूछता हूँ उसका जवाब दो। रोज मुँह-हाथ धोना अच्छी बात है या नहीं?

सभों ने कहा—अच्छी बात है।

'और नहाना?'

सभों ने कहा—अच्छी बात है।

'मुँह से कहते हो या दिल से?'

'दिल से।'

'बस जाओ। मैं दस-पाँच दिन में फिर आऊँगा और देखूँगा कि कि लड़कों ने झूठा वादा किया था, किनने सच्चा।

लड़के चले गये, तो अमर लेटा। तीन महीने से लगातार घूमने-घूमते उसका जी ऊब उठा था। कुछ विश्राम करने का जी चाहता था। क्यों न वह इसी गाँव में टिक जाय? यहाँ उसे कौन जानता है। यहीं उसका छोटा सा घर बन गया। सकीना उस घर में आ गई, गाय-बैल और अन्न मैं नींद भी आ गई।



अमरकान्त सवेरे उठा, मुँह-हाथ धोकर गंगा-स्नान किया और चौधरी से मिलने चला। चौधरी का नाम गूदड़ था। इस गाँव में कोई ज़मींदार न रहता था। गूदड़ का द्वार ही चौ का काम देता था। अमर ने देखा, नीम के पेड़ के नीचे एक तख्त पड़ा हुआ है। दो-तीन पुआल के गद्दे। गूदड़ की उम्र साठ से ऊपर मगर अभी टाँठा था। उसके सामने उसका बड़ा लड़का परशुराम बैठा

सी रहा था। दूसरा लड़का काशी बैलों की सानी-पानी कर रहा था। मुन्नी गोबर निकाल रही थी। तेजा और दुर्जन दोनों दौड़-दौड़ कुएँ से पानी ला रहे थे। ज़रा पूरब की ओर हटकर दो औरतें बरतन माँज रही थीं। यह दोनों गूदड़ की बहुएँ थीं।

अमर ने चौधरी को राम-राम किया और एक पुआल की गद्दी पर बैठ गया। चौधरी ने पितृभाव से उसका स्वागत किया—मज़े में खाट पर बैठो भैया। मुन्नी ने रात ही कहा था। अभी आज तो नहीं जा रहे हो! दो-चार दिन रहो, फिर चले जाना। मुन्नी तो कहती थी तुमको कोई काम मिल जाय, तो यहीं टिक जाओगे।

अमर ने सकुचाते हुए कहा—हाँ, कुछ विचार तो ऐसा मन में आया था।

गूदड़ ने नारियल से धुआँ निकालकर कहा—काम की कौन कमी है। घास ही कर लो, तो रुपये रोज़ की मजूरी हो जाय। नहीं जूते का काम है। तलियाँ बनाओ, चरसे बनाओ, मेहनत करनेवाला आदमी भूखों नहीं मरता। धेली की मजूरी कहीं नहीं गई।

यह देखकर कि अमर को इन दोनों में कोई तजवीज़ पसन्द नहीं आई, उसने एक तीसरी तजवीज़ पेश की—खेती-बारी की इच्छा हो, तो खेती कर लो। सलोनी भाभी के खेत हैं। तब तक वही जोतो।

पयाग ने सूजा चलाते हुए कहा—खेती के झंझट में न पड़ना भैया। चाहे खेत में कुछ हो या न हो, लगान ज़रूर दो। कभी ओला-पाला, कभी सूखा-बूड़ा। एक-न-एक बला सिर पर सवार रहती है। उस पर कहीं बैल मर गया या खलिहान में आग लग गई, तो सब कुछ स्वाहा। घास सबसे अच्छी। न किसी के नौकर न चाकर, न किसी का लेना न देना, सवेरे खुरपी उठायी और दोपहर तक लौट आये।

काशी बोला—मजूरी, मजूरी है; किसानी, किसानी है। मजूर लाख हो, तो मजूर ही कहलायेगा। सिर पर घास लिये चले जा रहे हैं। कोई इधर से पुकारता है—ओ घासवाले! कोई उधर से। किसी की मेड़ पर घास कर लो, तो गालियाँ मिलें। किसानी में मरजाद है।

पयाग का सूजा चलना बंद हो गया—मरजाद लेके चाटो। इधर-उ से कमा के लाओ, वह भी खेती में झोंक दो।

चौधरी ने फ़ैसला किया—घाटा-नफ़ा तो हरेक रोज़गार में है भैया। बड़े सेठों का दिवाला निकल जाता है। खेती के बराबर कोई रोजगार नहीं, कमाई और तकदीर अच्छी हो। तुम्हारे यहाँ भी नजर-नजराने का हाल है भैया!

अमर बोला—हाँ दादा, सभी जगह यही हाल है; कहीं ज्यादा कहीं क सभी ग़रीबों का लहू चूसते हैं।

चौधरी ने सन्देह का सहारा लिया—भगवान् ने छोटे-बड़े का भेद क्‍ लगा दिया, इसका मरम समझ में नहीं आता। उनके तो सभी लड़के हैं। सबको एक आँख से क्यों नहीं देखता।

पयाग ने शंका-समाधान की—पूरब जनम का संस्कार है। जिसने जै कर्म किये, वैसे फल पा रहा है।

चौधरी ने खंडन किया—यह सब मन को समझाने की बातें हैं बेटा, जि गरीबों को अपनी दसा पर सन्तोख रहे और अमीरों के राग-रंग में किसी की बाधा न पड़े। लोग समझते रहें, कि भगवान् ने हमको ग़रीब बना दि आदमी का क्या दोष, पर यह कोई न्याय नहीं है कि हमारे बाल-बच्चे तक का में लगे रहें, और पेट-भर भोजन न मिले और एक-एक अफसर को दस-दस हज़ की तलब मिले। दस तोड़े रुपए हुए। गधे से भी न उठें।

अमर ने मुसकिराकर कहा—तुम तो दादा नास्तिक हो।

चौधरी ने दीनता से कहा—बेटा, चाहे नास्तिक कहो, चाहे मूरख क पर दिल पर चोट लगती है, तो मुँह से आह निकलती ही है। तुम तो प लिखे हो जी?

'हाँ कुछ पढ़ा तो है।'

'अँगरेज़ी तो न पढ़ी होगी?'

'नहीं, कुछ अँग्रेज़ी भी पढ़ी है।'

चौधरी प्रसन्न होकर बोले—तब तो भैया हम तुम्हें न जाने देंगे। य ...ों को बुला लो और यहीं रहो। हमारे बाल-बच्चे भी कुछ पढ़ जायँ

फिर शहर भेज देंगे। वहाँ जात-बिरादरी कौन पूछता है। लिखा दिया—हम छत्तरी हैं।

अमर मुसकिराया—और जो पीछे से खुल गया?

चौधरी का जवाब तैयार था—तो हम कह देंगे, हमारे पुरखुज छत्तरी थे, हालाँकि अपने को छत्तरी-वस कहते लाज आती है। सुनते हैं, छत्तरी लोगों ने मुसलमान बादशाहों को अपनी बेटियाँ ब्याही थीं। अभी कुछ जलपान तो न किया होगा भैया? कहाँ गया तेजा! जा बहू से कुछ जलपान करने को ले आ। भैया भगवान का नाम लेकर यहीं टिक जाओ। तीन-चार बीघे सलोनी के पास हैं। दो बीघे हमारे साझे मे कर लेना। इतना बहुत है। भगवान दें, तो खाये न चुके।

लेकिन जब सलोनी बुलाई गई और उससे चौधरी ने यह प्रस्ताव किया, तो वह बिचक उठी। कठोर मुद्रा से बोली—तुम्हारी मसा है, अपनी जमीन इनके नाम करा दूँ और मैं हवा खाऊँ, यही तो?

चौधरी ने हँसकर कहा—नहीं-नहीं, जमीन तेरे ही नाम रहेगी पगली। यह तो खाली जोतेंगे। यही समझ ले कि तू इन्हे बटाई पर दे रही है।

सलोनी ने कानो पर हाथ रखकर कहा—भैया, अपनी जगह-जमीन मैं किसी के नाम नहीं लिखती। यों हमारे पाहुने है, दो-चार दस दिन रहें। मुझसे जो कुछ होगा, सेवा-सत्कार करूँगी। तुम बटाई पर लेते हो, तो ले लो। जिसको कभी देखा न सुना, न जान न पहचान उसे कैसे बटाई पर दे दूँ!

पयाग ने चौधरी की ओर तिरस्कार भाव से देखकर कहा—भर गया मन, या अभी नहीं। कहते हो औरतें मूरख होती है। यह चाहे हमको-तुमको खड़े-खड़े बेच लावे। सलोनी काकी मुँह ही की मीठी है।

सलोनी तिनक उठी—हाँ जी, तुम्हारे कहने से अपने पुरखों की जमीन छोड़ दूँ। मेरे ही पेट का लडका, मुझी को चराने चला है!

काशी ने सलोनी का पक्ष लिया—ठीक तो कहती है, बे जाने-सुने आदमी को अपनी जमीन कैसे सौंप दे।

अमरकान्त को इस विवाद में दार्शनिक आनन्द आ रहा था। मुस्कराकर बोला—हाँ दादी, तुम ठीक कहती हो। परदेशी आदमी का क्या भरोसा।

मुन्नी भी द्वार पर खड़ी यह बातें सुन रही थी। बोली—पगला गई हो क्या काकी! तुम्हारे खेत कोई सिर पर उठा ले जायगा! फिर हम लोग तो हैं ही। जब तुम्हारे साथ कोई कपट करेगा, तो हम पूछेंगे नहीं!

किसी भड़के हुए जानवर को बहुत से आदमी घेरने लगते हैं, तो वह और भी भड़क जाता है। सलोनी समझ रही थी, यह सब-के-सब मिलकर मुझे लुटवाना चाहते हैं। एक बार नहीं करके, फिर हाँ न की। वेग से उठ खड़ी हुई।

पयाग बोला—चुड़ैल है चुड़ैल।

अमर ने खिसियाकर कहा—तुमने नाहक उससे कहा दादा। मुझे क्या, यह गाँव न सही और गाँव सही।

मुन्नी का चेहरा फक हो गया।

गूदड़ बोले—नहीं भैया, कैसी बातें करते हो तुम। मेरे साझीदार बनकर रहो। महन्तजी से कहकर दो-चार बीघे का और बन्दोबस्त करा दूँगा। तुम्हारी झोपड़ी अलग बन जायगी। खाने-पीने की कोई बात नहीं। एक मर्द आदमी तो गाँव में हो जायगा। नहीं कभी एक चपरासी गाँव में आ जाय, तो सबकी साँस तले-ऊपर होने लगती है।

आध घण्टे में सलोनी फिर लौटी और चौधरी से बोली—तुम्हीं मेरे खेत क्यों बटाई पर नहीं ले लेते।

चौधरी ने हँसकर कहा—मुझे नहीं चाहिये। धरे रह अपने खेत।

सलोनी ने अमर से अपील की—भैया, तुम्हीं सोचो, बिना कुछ पता लगाये बेजाने-सुने किसी को कोई अपनी चीज दे देता है!

अमर ने सान्त्वना दी—नहीं काकी, तुमने बहुत ठीक किया। इस तरह विश्वास कर लेने से धोखा हो जाता है।

सलोनी को कुछ ढाढ़स हुआ—उनसे तो कहा कैसी बात हो? सब की जान-पहचान है न। जिनके पास मेरे खेत आजकल हैं, वह तो मेरे ही भाईबन्द

है। उससे छीनकर तुम्हे दे दूँ, तो वह अपने मन में क्या कहेगा, सोचो अगर मैं अनुचित कहती हूँ, तो मेरे मुँह पर थप्पड मारो। वह मेरे साथ बेईमानी करता है, यह जानती हूँ; पर है तो अपना ही हाड-मॉस। उसके मुँह की रोटी छीनकर तुम्हे दे दूँ, तो तुम मुझे भला कहोगे, बोलो।

सलोनी ने यह दलील ख़ुद सोच निकाली थी, या किसी और ने सुझा दी थी, पर इसने गूदड को लाजवाब कर दिया।

——



दो महीने बीत गये।

पूस की ठंडी रात काली कमली ओढे पडी हुई थी। ऊँचा पर्वत किसी विशाल महत्त्वाकांक्षा की भाँति, तारिकाओं का मुकुट पहने खडा था। झोपडियाँ जैसे उसकी वह छोटी-छोटी अभिलाषायें थीं, जिन्हें वह ठुकरा चुका था।

अमरकान्त की झोपडी में एक लालटेन जल रही है। पाठशाला खुली हुई है। पन्द्रह-बीस लडके खडे अभिमन्यु की कथा सुन रहे हैं। अमर खडा वह कथा कह रहा है। सभी लड़के कितने प्रसन्न हैं। उनके पीले चेहरे चमक रहे है, आँखें जगमगा रही है। शायद वे भी अभिमन्यु जैसे वीर, वैसे ही कर्तव्य-परायण होने का स्वप्न देख रहे हैं। उन्हे क्या मालूम, एक दिन उन्हे दुर्योधनों और जरासन्धो के सामने घुटने टेकने पडेगे, माथे रगडने पड़ेंगे, कितनी बार वे चक्रव्यूहों से भागने की चेष्टा करेगे, और भाग न सकेंगे।

गूदड चौधरी चौपाल मे बोतल और कुज्जी लिये कुछ देर तक विचार में डूबे बैठे रहे। फिर कुज्जी फेंक दी। बोतल उठाकर आले पर रख दी और मुन्नी को पुकार कहा—अमर भैया से कह, आकर खाना खा लें। इस भले

आदमी को जैसे भूख ही नहीं लगती, पहर रात गई अभी तक खाने-पी की सुधि नहीं।

मुन्नी ने बोतल की ओर देखकर कहा—तुम जब तक पी लो। मैंने इसी लिए नहीं बुलाया।

गूदड ने अरुचि से कहा—आज तो पीने का जी नहीं चाहता बेटी। वो बडी अच्छी चीज़ है।

मुन्नी आश्चर्य से चौधरी की ओर ताकने लगी। उसे आये यहाँ त साल से अधिक हुए। कभी चौधरी को नागा करते नहीं देखा, कभी उ मुँह से ऐसी विराग की बात नहीं सुनी। सशङ्क होकर बोली—आज तुम्ह जी अच्छा नहीं है क्या दादा?

चौधरी ने हँसकर कहा—जी क्यो नहीं अच्छा है। मँगाई तो थी प हीं के लिए, पर अब जी नहीं चाहता। अमर भैया की बात आज मेरे मन बैठ गई। कहते हैं—जहाँ सौ में अस्सी आदमी भूखों मरते हो, वहाँ द पीना ग़रीबों का रक्त पीने के बराबर है। कोई दूसरा कहता, न मानता, उनकी बात न जाने क्यो दिल मे बैठ जाती है।

मुन्नी चिन्तित हो गई—तुम उनके कहने में न आओ, दादा। छोडना तुम्हे अवगुन करेगा। कहीं देह में दरद न होने लगे।

चौधरी ने इन विचारो को जैसे तुच्छ समझकर कहा—चाहे दरद हो, च बाई हो, अब पीऊँगा नहीं। ज़िन्दगी में हज़ारों रुपये की दारू पी गय सारी कमाई नसे मे उड़ा दी। उतने रुपये से कोई उपकार का काम कर तो गाँव का भला होता और जस भी मिलता। मूरख को इसी से बुरा कहा साहब लोग सुना है, बहुत पीते हैं, पर उनकी बात निराली है। यहाँ र करते हैं। लूट का धन मिलता है, वह न पिये, तो कौन पिये। देखती अब कासी और पयाग को भी कुछ लिखने-पढ़ने का चस्का होने लगा है।

पाठशाला बन्द हुई। अमर तेजा और दुर्जन की उँगली पकडे आकर चौधरी से बोला—मुझे तो आज देर हो गई है दादा, तुमने खा

चौधरी स्नेह में डूब गये—हाँ और क्या, मैं ही तो पहर रात से जुता हुआ हूँ, मैं ही तो जूते लेकर रिसीकेस गया था। इस तरह जान दोगे, तो मुझे तुम्हारी पाठशाला बन्द करनी पडेगी।

अमर की पाठशाला मे अब लडकियाँ भी पढ़ने लगी थीं। उसके आनन्द का वारापार न था।

भोजन करके चौधरी सोये। अमर चलने लगा, तो मुन्नी ने कहा—आज तो लाला तुमने बडा भारी पाला मारा। दादा ने आज एक घूँट भी नहीं पी।

अमर उछलकर बोला—कुछ कहते थे?

'तुम्हारा जस गाते थे, और क्या कहते। मैं तो समझती थी, मरकर ही छोड़ेंगे; पर तुम्हारा उपदेश काम कर गया।'

अमर के मन मे कई दिन से मुन्नी का वृत्तान्त पूछने की इच्छा हो रही थी; पर अवसर न पाता था। आज मौक़ा पाकर उसने पूछा—तुम मुझे नहीं पहचानती हो, लेकिन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।

मुन्नी के मुख का रंग उड गया; उसने चुभती हुई आँखो से अमर को देखकर कहा—तुमने कह दिया, तो मुझे याद आ रहा है, तुम्हे कहीं देखा है।

'काशी के मुक़दमे की वात याद करो।'

'अच्छा, हाँ याद आ गया। तुम्हीं डाक्टर साहब के साथ रुपए जमा करते फिरते थे, मगर तुम यहाँ कैसे आ गये?'

'पिताजी से लडाई हो गई। तुम यहाँ कैसे पहुँचीं और इन लोगो के बीच में कैसे आ पड़ीं?'

मुन्नी घर मे जाती हुई बोली—फिर कभी बताऊँगी; पर तुम्हारे हाथ जोडती हूँ, यहाँ किसी से कुछ न कहना।

अमर ने अपनी कोठरी में जाकर बिछावन के नीचे से धोतियों का एक जोडा निकाला और सलोनी के घर जा पहुँचा। सलोनी भीतर पड़ी नींद को बुलाने के लिए गा रही थी। अमर की आवाज़ सुनकर टट्टी खोल दी और बोली—क्या है बेटा। आज तो बड़ा अँधेरा है। खाना खा चुके? मैं तो अभी चर्खा कात रही थी। पीठ दुखने लगी, तो आकर पड़ रही।

अमर ने धोतियों का जोडा निकालकर कहा—मै यह जोड़ा लाया हूँ, ले लो। तुम्हारा सूत पूरा हो जायगा, तो मै ले लूँगा।

सलोनी उस दिन अमर पर अविश्वास करने के कारण उससे सकुचाती ऐसे भले आदमी पर उसने क्यो अविश्वास किया। लजाती हुई बोली—तुम क्यो लाये भैया! सूत कत जाता, तो ले आते।

अमर के हाथ में लालटेन थी। बुढिया ने जोडा लें लिया और उ तहों को खोलकर ललचाई हुई आँखों से देखने लगी। सहसा वह बोल उठ यह तो दो है बेटा, मै दो लेकर क्या करूँगी। एक तुम लेते जाओ।

अमरकान्त ने कहा—तुम दोनों रख लो काकी। एक से कैसे काम चले

सलोनी को अपने जीवन के सुनहरे दिनो में भी दो धोतियाँ मयस्सर न थीं। पति और पुत्र के राज में भी एक धोती से ज्यादा कभी न मिली। आज ऐसी सुन्दर दो-दो साड़ियाँ मिल रही हैं, जबरदस्ती दी जा रही हैं। अन्तःकरण से मानो दूध की धारा बहने लगी। उसका सारा वैधव्य, मातृत्व, आशीर्वाद बनकर उसके एक-एक रोम को स्पदित करने लगा।

अमरकान्त कोठरी से बाहर निकल आया। सलोनी रोती रही।

अपनी झोपडी में आकर अमर कुछ अनिश्चित दशा में खडा रहा। अपनी डायरी लिखने बैठ गया। उसी वक्त चौधरी के घर का द्वार खुला मुन्नी कलसा लिये पानी भरने निकली। इधर लालटेन जलती देखकर इधर चली आई, और द्वार पर खड़ी होकर बोली—अभी सोये नहीं लाला, तो बहुत गई।

अमर बाहर निकलकर बोला—हाँ, अभी नींद नहीं आई। क्या रहा था?

'हाँ, आज सब पानी उठ गया। अब जो प्यास लगी, तो कहीं बूँद नहीं।'

'लाओ, मैं खींच ला दूँ। तुम इस अँधेरी रात में कहाँ जाओगी।'

'अँधेरी रात में शहरवालों को डर लगता है। हम तो गाँव के हैं।'

'नहीं मुन्नी, मै तुम्हे न जाने दूँगा।'

'तो क्या मेरी जान तुम्हारी जान से प्यारी है?'

'मेरी जैसी एक लाख जानें तुम्हारी जान पर न्योछावर है।'

मुन्नी ने उसकी ओर अनुरक्त नेत्रों से देखा—तुम्हें भगवान ने मेहरिया यों नहीं बनाया लाला। इतना कोमल हृदय तो किसी मर्द का नहीं देखा। तो कभी-कभी सोचती हूँ, तुम यहाँ न आते, तो अच्छा होता।

अमर मुसकिराकर बोला—मैंने तुम्हारे साथ क्या बुराई की है मुन्नी?

मुन्नी काँपते हुए स्वर में बोली—बुराई नहीं की? जिस अनाथ बालक ा कोई पूछनेवाला न हो, उसे गोद और खिलौनों और मिठाइयों का चसका ाल देना क्या बुराई नहीं है? यह सुख पाकर क्या वह बिना लाड़-प्यार के ़ सकता है।

अमर ने करुण स्वर मे कहा—अनाथ तो मैं था मुन्नी। तुमने मुझे ाद और प्यार का चसका डाल दिया। मैंने तो रो-रोकर तुम्हें दिक़ ा किया है।

मुन्नी ने कलसा ज़मीन पर रख दिया और बोली—मैं तुमसे बातों मे न ोतूँगी लाला, लेकिन तुम न थे, तब मैं बड़े आनन्द से थी। घर का धन्धा रती थी, रूखा-सूखा खाती थी और सो रहती थी। तुमने मेरा वह सुख ान लिया। अपने मन में कहते होगे, बडी चञ्चल नार है। कहो, जब मर्द ारित हो जाय, तो औरत को मर्द बनना ही पडेगा। जानती हूँ, तुम मुझसे ागे-भागे फिरते हो, मुझसे गला छुड़ाते हो। यह भी जानती हूँ, तुम्हें पा ीं सकती। मेरे ऐसे भाग्य कहाँ? पर छोड़ूँगी नहीं। मैं तुमसे और कुछ ीं माँगती। बस इतना ही चाहती हूँ, कि तुम मुझे अपनी समझो। मुझे लूम हो कि मैं भी स्त्री हूँ, मेरे सिर पर भी कोई है, मेरी जिन्दगानी भी ्सी के काम आ सकती है।

अमर ने अब तक मुन्नी को उसी तरह देखा था, जैसे हर एक युवक ्सी सुन्दरी युवती को देखता है—प्रेम से नहीं, केवल रसिक भाव से, पर इस ात्म-समर्पण ने उसे विचलित कर दिया। दुधार गाय के भरे हुए थनों को ेखकर हम प्रसन्न होते हैं—इनमें कितना दूध होगा! केवल उसकी मात्रा का ाव हमारे मन में आ जाता है। हम गाय को पकडकर दूहने के लिए तैयार हीं हो जाते, लेकिन दूध का सामने कटोरे मे आ जाना दूसरी बात है। अमर ने

दूध के कटोरे की ओर हाथ बढा दिया—आओ हम-तुम कहीं चले जा मुन्नी ! वहाँ मैं कहूँगा यह मेरी......

मुन्नी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया और बोली—बस और कुछ कहना। मर्द सब एक से होते है। मैं क्या कहती थी, तुम क्या समझ गये। मैं तुमसे सगाई नहीं करूँगी, तुम्हारी रखेली भी नहीं बनूँगी। तुम मुझे अपनी चेरी समझते रहो, यही मेरे लिए बहुत है।

मुन्नी ने कलसा उठा लिया और कुएँ की ओर चल दी। अमर रमणी हृदय का यह अद्भुत रहस्य देखकर स्तम्भित हो गया था।

सहसा मुन्नी ने पुकारा—लाला, ताजा पानी लाई हूँ। एक लोटा लाऊँ?

पीने की इच्छा होने पर भी अमर ने कहा—अभी तो प्यास नहीं है मुन्नी।



तीन महीने तक अमर ने किसी को ख़त न लिखा। कहीं बैठने की मुहलत ही न मिली। सकीना का हाल-चाल जानने के लिए हृदय तडप-तडपकर रह जाता था। नैना की भी याद आ जाती थी। बेचारी रो-रोकर मरी जाती होगी। बच्चे का हँसता हुआ फूल-सा मुखडा याद आता रहता था; पर कहीं अपना पता-ठिकाना हो तब तो ख़त लिखे! एक जगह तो रहना नहीं होता था। यहाँ आने के कई दिन बाद उसने तीन ख़त लिखे—सकीना, सलीम और नैना के नाम। सकीना का पत्र सलीम के लिफाफे में ही बन्द कर दिया था। आज जवाब आ गये हैं। डाकिया अभी दे गया है। अमर गङ्गा-तट पर एकान्त में जाकर इन पत्रों को पढ़ रहा है। वह नहीं चाहता बीच में कोई बाधा हो, लड़के आ-आकर पूछें—किसका ख़त है?

नैना लिखती है—भला आपको इतने दिनों के बाद मेरी याद तो आई। मैं आपको इतना कठोर न समझती थी। आपके बिना इस घर में कैसे रहूँ—

हूँ, इसकी आप कल्पना नहीं कर सकते, क्योंकि आप आप हैं, और मैं, मैं। सादे चार महीने। और आपका एक पत्र नहीं, कुछ ख़बर भी नहीं। आँखों से कितना आँसू निकल गया, कह नहीं सकती। रोने के सिवा आपने और काम ही क्या छोड़ा। आपके बिना मेरा जीवन इतना सूना हो जायगा, मुझे यह न मालूम था।

आपके इतने दिनों की चुप्पी का कारण मैं समझती हूँ, पर वह आपका भ्रम है भैया। आप मेरे भाई हैं। मेरे वीरन हैं। राजा हों, तो मेरे हैं; रंक हों, तो मेरे भाई हैं। संसार आप पर हँसे, सारे देश में आपकी निन्दा हो; पर आप मेरे भाई हैं। आज आप मुसलमान या ईसाई हो जायँ, तो क्या आप मेरे भाई न रहेंगे? जो नाता भगवान ने जोड़ दिया है, क्या उसे आप तोड़ सकते हैं? इतना बलवान मैं आपको नहीं समझती। इससे भी प्यारा और कोई नाता संसार में है, मैं नहीं समझती। मा में केवल वात्सल्य है। बहन में क्या है, नहीं कह सकती, पर वह वात्सल्य से कोमल अवश्य है। मा अपराध का दण्ड भी देती है। बहन क्षमा का रूप है। भाई न्याय करे, अन्याय करे, डाँटे या प्यार करे, मान करे, अपमान करे, बहन के पास क्षमा के सिवा और कुछ नहीं है। वह केवल उसके स्नेह की भूखी है।

जब से आप गये हैं, किताबों की ओर ताकने की इच्छा नहीं होती। रोना आता है। किसी काम में जी नहीं लगता। चरखा भी पड़ा मेरे नाम को रो रहा है। बस अगर कोई आनन्द की वस्तु है, तो वह मन्नू है। वह मेरे गले का हार हो गया है। क्षण-भर को भी नहीं छोड़ता। इस वक्त सो गया है, तब यह पत्र लिख सकी हूँ, नहीं उसने चित्रलिपि में वह पत्र लिखा होता, जिसको बड़े-बड़े विद्वान् भी न समझ सकते। भाभी को उससे अब उतना स्नेह नहीं रहा। आपकी चर्चा वह कभी भूलकर भी नहीं करतीं। धर्म-चर्चा और भक्ति से उन्हें विशेष प्रेम हो गया है। मुझसे भी बहुत कम बोलती हैं। रेणुका देवी उन्हें लेकर लखनऊ जाना चाहती थीं; पर वहाँ नहीं गईं। एक दिन उनकी गऊ का विवाह था। शहर के हज़ारों देवताओं का भोज हुआ। हम लोग भी गये थे। यहाँ के गऊशाले के लिए उन्होंने दस हज़ार रुपये दान किये हैं।

अब दादाजी का हाल सुनिए। वह आजकल एक ठाकुरद्वारा बनवा रहे हैं। ज़मीन तो पहले ही ले चुके थे। पत्थर जमा हो रहा है। ठाकुरद्वारे की बुनियाद रखने के लिए राजा साहब को निमन्त्रण दिया जायगा। न जाने क्यों दादा अब किसी पर क्रोध नहीं करते। यहाँ तक कि ज़ोर से बोलते भी नहीं। दाल में नमक तेज़ हो जाने पर जो थाली पटक देते थे, अब चाहे कितना ही नमक पड़ जाय, बोलते भी नहीं। सुनती हूँ, असामियों पर भी उतनी सख्ती नहीं करते। जिस दिन बुनियाद पड़ेगी, बहुत से असामियों का बक़ाया मुआफ भी करेंगे। पठानिन को अब पाँच की जगह पच्चीस रुपये मिलने लगे हैं। लिखने को तो बहुत-सी बातें हैं; पर लिखूँगी नहीं। आप अगर यहाँ आवें, तो छिपकर आइयेगा, क्योंकि लोग झल्लाये हुए हैं। इस घर कोई नहीं आता-जाता।

दूसरा खत सलीम का है। मैंने तो समझा था, तुम गङ्गाजी में डूब मरे और तुम्हारे नाम को, प्याज़ की मदद से, दो-तीन क़तरे आँसू बहा दिये थे, तुम्हारी रूह की नजात के लिए एक बरहमन को एक कौडी ख़ैरात भी कर दी थी; मगर अब यह मालूम करके रञ्ज हुआ कि आप ज़िन्दा हैं और मेरा मातम बेकार हुआ। आँसुओं का तो ग़म नहीं, आँखों को कुछ फ़ायदा ही हुआ, मगर उस कौडी का ज़रूर ग़म है। भले आदमी कोई पाँच-पाँच महीने यों ख़ामोशी अख़्तियार करता है। ख़ैरियत यही है कि तुम यहाँ मौजूद न हो। बड़े क़ौमी ख़ादिम की दुम बने हो। जो आदमी अपने प्यारे दोस्तों से इतनी बेवफ़ाई करे, वह क़ौम की ख़िदमत क्या ख़ाक करेगा।

ख़ुदा की क़सम रोज़ तुम्हारी याद आती थी। कॉलेज जाता हूँ, जी नहीं लगता। तुम्हारे साथ कॉलेज की रौनक़ चली गई। उधर अब्बाजान सिविल सर्विस की रट लगा-लगाकर और भी जान लिए लेते हैं। आख़िर कभी आओगे भी, या काले पानी की सज़ा भोगते रहोगे।

कॉलेज का हाल साबिक़ दस्तूर है—वही ताश हैं, वही लेक्चरों से भागना है, वही मैच हैं। हाँ, कान्वोकेशन का ऐड्रेस अच्छा रहा। वाइस चांसलर ने सादा ज़िन्दगी पर ज़ोर दिया। तुम होते, तो उस ऐड्रेस का मज़ा उठाते। मुझे तो सब फीका मालूम होता था। सादा ज़िन्दगी का सबक़ तो सब देते हैं;

ई नमूना बनकर दिखाता नहीं। यह जो अनगिनती लेक्चरार और प्रोफेसर क्या सब-के-सब सादा ज़िन्दगी के नमूने हैं। वह तो लिविङ्ग का स्टैंडर्ड चा कर रहे हैं, तो फिर लड़के भी क्यो न ऊँचा करें, क्यो न बहती गङ्गा में थ धोवें। वाइस चासलर साहब, मालूम नहीं, सादगी का सबक़ अपने फ़ को क्यो नहीं देते। प्रोफेसर भाटिया के पास तीस जोड़े जूते हैं और ज-बाज़ ५०) के हैं। खैर उनकी बातें छोड़ो। प्रोफेसर चक्रवर्ती तो बड़े फ़ायतशार मशहूर हैं। जोरू न जाँता, अल्लाह मियाँ से नाता। फिर भी नते हो कितने नौकर हैं उनके पास? कुल बारह! तो भाई हम लोग तो जवान हैं, हमारे दिलों मे नया शौक़ है, नये अरमान हैं। घरवालो से माँगेगे, देंगे, तो लड़ेंगे, दोस्तो से क़र्ज़ लेंगे, दुकानदारो की खुशामद करेंगे, मगर न से रहेंगे ज़रूर। वह जहन्नम में जा रहे हैं, तो हम भी जहन्नम जायँगे, र इनके पीछे-पीछे।

सकीना का हाल भी कुछ सुनना चाहते हो? मामा को बीसो ही बार ा, कपड़े भेजे, रुपये भेजे, पर कोई चीज़ न ली। मामा कहती है, दिन भर एकाध चपाती खा ली तो खा ली, नहीं चुपचाप पड़ी रहती है। दादी से ल-चाल बन्द है। कल तुम्हारा ख़त पाते ही उसके पास भेज दिया था। का जवाब जो आया, उसकी हूबहू नक़ल यह है। असली ख़त उस वक्त खने को पाओगे, जब यहाँ आओगे—

'बाबूजी, आपको मुझ बदनसीब के कारन यह सज़ा मिली, इसका मुझे ा रञ्ज है। और क्या कहूँ। जीती हूँ और आपको याद करती हूँ। ना अरमान है, कि मरने के पहले एक बार आपको देख लेती; लेकिन इसमे आपकी बदनामी ही है, और मैं तो बदनाम हो ही चुकी। कल आपका त मिला, तब से कितनी ही बार सौदा उठ चुका है कि आपके पास चली ऊँ। क्या आप नाराज़ होंगे? मुझे तो यह ख़ौफ़ नहीं है। मगर दिल समझाऊँगी और शायद अभी मरूँगी भी नहीं। कुछ देर तो गुस्से के रे तुम्हारा ख़त न खोला। पर कब तक? ख़त खोला, पढ़ा, रोई, फिर ढा, फिर रोई। रोने में इतना मज़ा है कि जी नहीं भरता। अब इन्तज़ार ी तकलीफ नहीं झेली जाती। खुदा आपको सलामत रखे।'

देखा यह ख़त कितना दर्दनाक है! मेरी आँखों में बहुत कम आँसू आ
है, लेकिन यह ख़त देखकर ज़ब्त न कर सका। कितने ख़ुशनसीब हो तुम!

अमर ने सिर उठाया, तो उसकी आँखों में नशा था, वह नशा नि
आलस्य नहीं, स्फूर्ति है, लालिमा नहीं, दीप्ति है; उन्माद नहीं, विस्मृति न
जाग्रति है। उसके मनोजगत् में ऐसा भूकम्प कभी न आया था।
आत्मा कभी इतनी उदार, इतनी विशाल, इतनी प्रफुल्ल न थी। आँखों
सामने दो मूर्तियाँ खड़ी हो गईं, एक विलास से डूबी हुई, रत्नों से अल
गर्व मे चूर; दूसरी सरल माधुर्य से भूषित, लज्जा और विनय से सिर
हुए। उसका प्यासा हृदय उस खुशबूदार, मीठे शरबत से हटकर इस
जल की ओर लपका। उसने पत्र के उस अंश को फिर पढ़ा, फिर आवेश
जाकर गङ्गा-तट पर टहलने लगा। सकीना से कैसे मिले? यह ग्राम
ज़ीवन उसे पसन्द आयेगा? कितनी सुकुमार है, कितनी कोमल! वह
यह कठोर जीवन! कैसे जाकर उसकी दिलजोई करे। उसकी वह सूरत
आई, जब उसने कहा था—बाबूजी, मैं भी चलती हूँ। ओह! कितना अनु
था। किसी मजूर को गढ़ा खोदते-खोदते जैसे कोई रत्न मिल जाय।
वह अपने अज्ञान में उसे काँच का टुकड़ा ही समझ रहा था।

'इतना अरमान है, कि मरने के पहले आपको देख लेती,' यह वाक्य
हृदय में चिमट गया था। उसका मन जैसे गङ्गा की लहरों पर तै
हुआ सकीना को खोज रहा था। लहरों की ओर तन्मयता से ताकते-ता
उसे मालूम हुआ मैं बहा जा रहा हूँ। वह चौंककर घर की तरफ चल
दोनों आँखें तर, नाक पर लाली और गालों पर आर्द्रता!



卐 व में एक आदमी सगाई लाया है। उस उत्सव में नाच, गाना, भोज हो रहा है। उसके द्वार पर नगड़ियाँ बज रही हैं, गाँव भर के स्त्री, पुरुष, बालक, जमा हैं और नाच शुरू हो गया है। कान्त की पाठशाला आज बन्द है। लोग उसे भी खींच लाये हैं।

पयाग ने कहा—चलो भैया, तुम भी कुछ करतब दिखाओ। सुना है, रे-देस में लोग खूब नाचते हैं।

अमर ने जैसे क्षमा-सी माँगी—भाई मुझे तो नाचना नहीं आता।

उसकी इच्छा हो रही है कि नाचना आता, तो इस समय सबको चकित देता।

युवकों और युवतियों के जोड़ बँधे हुए है। हरेक जोड दस-पन्द्रह मिनट थिरककर चला जाता है। नाचने में कितना उन्माद, कितना आनन्द है, र ने न समझा था।

यह युवती घूँघट बढ़ाये हुए रङ्गभूमि में आती है। इधर से पयाग लता है। दोनों नाचने लगते हैं। युवती के अङ्गों में इतनी लचक है, के अङ्ग-विलास में भावों की ऐसी व्यञ्जना कि लोग मुग्ध हुए जाते हैं।

इस जोड के बाद दूसरा जोड आता है। युवक गठीला जवान है, चौड़ी ती, उस पर सोने की मुहर, कछनी काछे हुए। युवती को देखकर अमर क उठा। मुन्नी है। उसने घेरदार लहँगा पहना है, गुलाबी ओढ़नी ढ़ी है, और पाँव में पैजनियाँ बाँध ली हैं। गुलाबी घूँघट में दोनों कपोल ो फूलों की भाँति खिले हुए हैं। दोनों कभी हाथ में हाथ मिलाकर, कभी मर पर हाथ रखकर, कभी कूल्हों को ताल से मटकाकर नाचने में उन्मत्त हो रहे हैं। सभी मुग्ध नेत्रों से इन कलाविदों की कला देख रहे हैं। क्या रती है, क्या लचक है! और उनकी एक-एक लचक में, एक-एक गति में,

कितनी मार्मिकता, कितनी मादकता ! दोनों हाथ मे हाथ मिलाये, थिरकते हु
रङ्गभूमि के उस सिरे तक चले जाते है और क्या मजाल कि एक गति भ
वेताल हो।

पयाग ने कहा—देखते हो भैया, भाभी कैसा नाच रही है। अपना जो
नहीं रखती।

अमर ने विरक्त मन से कहा—हाँ, देख तो रहा हूँ।

'मन हो, तो उठो, मैं उस लौंडे को बुला लूँ।'

'नहीं, मुझे नहीं नाचना है।'

मुन्नी नाच ही रही थी कि अमर उठकर घर चला आया। यह देश
अब उससे नहीं सही जाती।

एक ही क्षण के बाद मुन्नी ने आकर कहा—तुम चले क्यों आये लाला
क्या मेरा नाचना अच्छा न लगा ?

अमर ने मुँह फेरकर कहा—क्या मै आदमी नहीं हूँ कि अच्छी चीज़ क
बुरा समझूँ ?

मुन्नी और समीप आकर बोली—तो फिर चले क्यों आये ?

अमर ने उदासीन भाव से कहा—मुझे एक पंचायत में जाना है। लो
बैठे मेरी राह देख रहे होगे। तुमने क्यो नाचना बन्द कर दिया ?

मुन्नी ने भोलेपन से कहा—तुम चले आये, तो नाचकर क्या करती।

अमर ने उसकी आँखों में आँखें डालकर कहा—सच्चे मन से कह रही है
मुन्नी ?

मुन्नी उससे आँखें मिलाकर बोली—मैं तो तुमसे कभी झूठ नहीं बोली।

'मेरी एक बात मानो। अब फिर कभी मत नाचना।'

मुन्नी उदास होकर बोली—तो तुम इतनी ज़रा-सी बात पर रूठ गये
ज़रा किसी से पूछो, मै आज कितने दिनों के बाद नाची हूँ। दो साल से
नगाडे के पास नहीं गई। लोग कह-कहकर हार गये। आज तुम्हीं मुझे
गये, और अब उलटे तुम्हीं नाराज़ होते हो !

मुन्नी घर में चली गई। थोडी देर बाद काशी ने आकर कहा—भा
यहाँ क्या कर रही हो ? वहाँ सब लोग तुम्हें बुला रहे है।

मुन्नी ने सिर दर्द का बहाना किया।

काशी आकर अमर से बोला—तुम क्यों चले आये भैया? क्या गँवारों नाच-गाना अच्छा न लगा?

अमर ने कहा—नहीं जी, यह बात नहीं। एक पञ्चायत में जाना है। हो रही है।

काशी बोला—भाभी नहीं जा रही है। इसका नाच देखने के बाद अब उरों का रंग नहीं जम रहा है। तुम चलकर कह दो, तो साइत चली जाय। न रोज-रोज यह दिन आता है। बिरादरीवाली बात है। लोग कहेंगे, गरे यहाँ काम आ पड़ा, तो मुँह छिपाने लगे।

अमर ने धर्म-सङ्कट में पड़कर कहा—तुमने समझाया नहीं।

फिर अन्दर जाकर कहा—मुझसे नाराज़ हो गई मुन्नी?

मुन्नी आँगन में आकर बोली—तुम मुझसे नाराज़ हो गये, कि मैं तुमसे राज़ हो गई।

'अच्छा मेरे कहने से चलो।'

'जैसे बच्चे, मछलियों को खिलाते हैं, उसी तरह तुम मुझे खिला रहे हो लाला। ब चाहा रुला दिया, जब चाहा हँसा दिया।'

'मेरी भूल थी मुन्नी। क्षमा करो।'

'लाला, अब तो मुन्नी तभी नाचेगी, जब तुम उसका हाथ पकड़कर कहोगे—लो हम-तुम नाचें। वह अब और किसी के साथ न नाचेगी।'

'तो अब नाचना सीखूँ?'

मुन्नी ने अपनी विजय का अनुभव करके कहा—मेरे साथ नाचना चाहोगे, आप सीखोगे।

'तुम सिखा दोगी?'

'तुम मुझे रोना सिखा रहे हो, मैं तुम्हे नाचना सिखा दूँगी।'

'अच्छा चलो।'

कालेज के सम्मेलनों में अमर कई बार ड्रामा खेल चुका था। स्टेज पर चा भी था, गाया भी था, पर उस नाच और इस नाच में बड़ा अन्तर था।

वह विलासियों की काम-क्रीडा थी, यह श्रमिकों की स्वच्छन्द केलि। -उस
दिल सहमा जाता था।

'उसने कहा—मुन्नी, तुमसे एक वरदान माँगता हूँ।

मुन्नी ने ठिठककर कहा—तो तुम नाचोगे नहीं!

'यही तो तुमसे वरदान माँग रहा हूँ।'

अमर ठहरो-ठहरो कहता रहा, पर मुन्नी लौट पडी।

अमर भी अपनी कोठरी में चला आया, और कपडे पहनकर पंचायत
चला गया। उसका सम्मान बढ रहा है। आस पास के गाँवों मे भी
कोई पंचायत होती है, तो उसे अवश्य बुलाया जाता है।





लोनी काकी ने अपने घर की जगह पाठशाला के लिए दे दी
लड़के बहुत आने लगे हैं। उस छोटी-सी कोठरी में जगह
है। सलोनी से किसी ने जगह माँगी नहीं, कोई दबाव भी
डाला गया। बस, एक दिन अमर और चौधरी बैठे बातें कर रहे थे, कि
शाला कहाँ बनाई जाय, गाँव में तो बैलो के बाँधने तक की जगह नहीं। स
उनकी बातें सुनती रही। फिर एकाएक बोल उठी—मेरा घर क्यों न
लेते! बीस हाथ पीछे ख़ाली जगह पड़ी है। क्या इतनी ज़मीन में उ
काम न चलेगा!

दोनों आदमी चकित होकर सलोनी का मुँह ताकने लगे।

अमर ने पूछा—और तू रहेगी कहाँ काकी?

सलोनी ने कहा—ऊँह! मुझे घर-द्वार लेकर क्या करना है बेटा। इ
ही कोठरी में आकर एक कोने में पड रहूँगी।

गूदड़ ने मन में हिसाब लगाकर कहा—जगह तो बहुत निकल आवेगी

अमर ने सिर हिलाकर कहा—मैं काकी का घर नहीं लेना चाहता। महन्तजी से मिलकर गाँव के बाहर पाठशाला बनवाऊँगा।

काकी ने दुखित होकर कहा—क्या मेरी जगह में कोई छूत लगी है भैया?

गूदड़ ने फैसला कर दिया। काकी का घर मदरसे के लिए ले लिया जाय। उसी में एक कोठरी अमर के लिए भी बना दी जाय। काकी अमर की झोंपडी में रहे। एक किनारे बैल-गाय बाँध लेगी। एक किनारे पड़ रहेगी।

आज सलोनी जितनी खुश है, उतनी शायद और कभी न हुई हो। वही बुढिया, जिसके द्वार पर कोई बैल बाँध देता, तो लड़ने को तैयार हो जाती, जो बच्चों को अपने द्वार पर गोलियाँ न खेलने देती, आज अपने पुरखों का घर देकर अपना जीवन सफल समझ रही है। यह कुछ असङ्गत-सी बात है, पर दान कृपण ही दे सकता है। हाँ, दान का हेतु ऐसा होना चाहिए जो उसकी नजर में उसके मर-मर सञ्चे हुए धन के योग्य हो।

चटपट काम शुरू हो जाता है। घरों से लकडियाँ निकल आईं, रस्सी निकल आई, मजूर निकल आये, पैसे निकल आये। न किसी से कहना पड़ा, न सुनना। वह उनकी अपनी शाला थी। उन्हीं के लड़के-लडकियाँ तो पढ़ते थे। और इस छ्-सात महीने में ही उन पर शिक्षा का कुछ असर भी दिखाई देने लगा था। वह अब साफ रहते हैं, झूठ कम बोलते हैं, झूठे बहाने कम करते हैं, गालियाँ कम बकते है, और घर से कोई चीज़ चुराकर नहीं ले जाते। न उतनी ज़िद ही करते हैं। घर का जो कुछ काम होता है, उसे शौक़ से करते हैं। ऐसी शाला की कौन मदद न करेगा।

फागुन का शीतल प्रभात सुनहरे वस्त्र पहने पहाड़ पर खेल रहा था। अमर कई लड़कों के साथ गङ्गा-स्नान करके लौटा, पर आज अभी तक कोई आदमी काम करने नहीं आया। यह बात क्या है? और दिन तो उसके स्नान करके लौटने के पहले ही कारीगर आ जाते थे। आज इतनी देर हो गई और किसी का पता नहीं।

सहसा मुन्नी सिर पर कलसा रखे आकर खड़ी हो गई। वही शीतल, सुनहरा प्रभात उसके गेहुएँ मुखड़े पर मचल रहा था।

अमर ने मुसकिराकर कहा—यह देखो सूरज देवता तुम्हें घूर रहे हैं।

मुन्नी ने कलसा उतारकर हाथ मे ले लिया और बोली—और तुम देख रहे हो!

फिर एक क्षण के बाद उसने कहा—तुम तो जैसे आजकल गाँव में रहते ही नहीं हो। मदरसा क्या बनने लगा, तुम्हारे दर्शन ही दुर्लभ हो गये। मैं डरती हूँ, कहीं तुम सनक न जाओ।

"मैं तो दिन भर यहीं रहता हूँ, तुम अलबत्ता जाने कहाँ रहती हो। आज यह सब आदमी कहाँ चले गये? एक भी नहीं आया।'

'गाँव में है ही कौन!'

'कहाँ चले गये सब?'

'वाह! तुम्हें ख़बर ही नहीं। पहर रात सिरोमनपूर के ठाकुर की गाय मर गई, सब लोग वहीं गये हैं। आज घर-घर सिकार बनेगा।'

अमर ने घृणा-सूचक भाव से कहा—मरी गाय?

'हमारे यहाँ भी तो खाते हैं, यह लोग।'

'क्या जाने। मैंने कभी नहीं देखा। तुम तो...'

मुन्नी ने घृणा से मुँह बनाकर कहा—मैं तो उधर ताकती भी नहीं।

'समझाती नहीं इन लोगों को?'

'उँह! समझाने से माने जाते हैं, और मेरे समझाने से।'

अमरकान्त की वंशगत वैष्णव-वृत्ति इस घृणित, पिशाच-कर्म से जैसे मतलाने लगी। उसे सचमुच मतली हो आई। उसने छूतछात और भेद-भाव को मन से निकाल डाला था, पर अखाद्य से वही पुरानी घृणा बनी हुई थी और वह दस-ग्यारह महीनों से इन्हीं मुरदाख़ोरों के घर भोजन कर रहा है।

'आज मै खाना नहीं खाऊँगा मुन्नी।'

'मै तुम्हारा भोजन अलग पका दूँगी।'

'नहीं मुन्नी। जिस घर में वह चीज़ पकेगी, उस घर में मुझसे न जायगा।'

सहसा शोर सुनकर अमर ने आँखें उठाईं, तो देखा पन्द्रह-बीस आदमी बाँस की बल्लियों पर उस मृतक गाय को लादे चले आ रहे हैं। सामने कई लड़के उछलते-कूदते, तालियाँ बजाते चले आते थे।

कितना बीभत्स दृश्य था। अमर वहाँ खड़ा न रह सका। गंगातट की ओर भागा।

मुन्नी ने कहा—तो भाग जाने से क्या होगा। अगर बुरा लगता है तो जाकर समझाओ।

'मेरी बात कौन सुनेगा मुन्नी?'

'तुम्हारी बात न सुनेंगे, तो और किसकी बात सुनेंगे लाला!'

'और जो किसी ने न माना?'

'और जो मान गये। आओ कुछ-कुछ बद लो।'

'अच्छा क्या बदती हो?'

'मान जायँ, तो मुझे एक साड़ी अच्छी-सी ला देना।'

'और न माना, तो तुम मुझे क्या दोगी?'

'एक कौड़ी।'

इतनी देर में वह लोग और समीप आ गये। चौधरी सेनापति की भाँति आगे-आगे लपके चले आते थे।

मुन्नी ने आगे बढ़कर कहा—ला तो रहे हो, लेकिन लाला भागे जा रहे हैं।

गूदड़ ने कुतूहल से पूछा—क्यों? क्या हुआ है?

'यही गाय की बात है। कहते हैं, मैं तुम लोगों के हाथ का पानी न पीऊँगा।'

पयाग ने अकड़कर कहा—बकने दो। न पियेंगे हमारे हाथ का पानी, तो हम छोटे न हो जायँगे।

काशी बोला—आज बहुत दिन के बाद तो सिकार मिला। उसमें भी यह बाधा!

गूदड़ ने समझौते के भाव से कहा—आखिर कहते क्या हैं?

मुन्नी झुँझलाकर बोली—अब उन्हीं से जाकर पूछो। जो चीज़ किसी ऊँची जातवाले नहीं खाते, उसे हम क्यों खायँ, इसी से तो लोग हमें न समझते हैं।

पयाग ने आवेश में कहा—तो हम कौन किसी बाम्हन-ठाकुर के घर ब्याहने जाते हैं। बाम्हनो की तरह किसी के द्वार पर भीख माँगने तो जाते। यह तो अपना-अपना रिवाज है।

मुन्नी ने डाँट बताई—यह कोई अच्छी बात है, कि सब लोग हमे समझे, जीभ के स्वाद के लिए।

गाय वहीं रख दी गई। दो-तीन आदमी गँडासे लेने दौड़े। अ खड़ा देख रहा था कि मुन्नी मना कर रही है, पर कोई उसकी सुन नहीं रहा उसने उधर से मुँह फेर लिया, जैसे उसे कै हो जायगी। मुँह फेर लेने पर वही दृश्य उसकी आँखों मे फिरने लगा। इस सत्य को वह कैसे भूल जावे उससे पचास क़दम पर मुर्दा गाय की बोटियाँ की जा रही हैं। वह उ गगा की ओर भागा।

गूदड़ ने उसे गगा की ओर जाते देखकर चिन्तित भाव से कहा—वा सचमुच गगा की ओर भागे जा रहे हैं। बड़ा सनकी आदमी है। कहीं डाब न जाय।

पयाग बोला—तुम अपना काम करो, कोई नहीं डूबे-डावेगा। किस जान इतनी भारी नहीं होती।

मुन्नी ने उसकी ओर कोप-दृष्टि से देखा—जान उन्हें प्यारी होती है, नीच हैं और नीच बने रहना चाहते हैं। जिसमें लाज है, जो किसी के स सिर नहीं नीचा करना चाहता, वह ऐसी बात पर जान भी दे सकता है।

पयाग ने ताना मारा—उनका बड़ा पच्छ कर रही हो भाभी, क्या ब की ठहर गई है क्या!

मुन्नी ने आहत कण्ठ से कहा—दादा, तुम सुन रहे हो इनकी बातें, मुँह नहीं खोलते। उनसे सगाई ही कर लूँगी, तो क्या तुम्हारी हँसी जायगी? और जब मेरे मन में वह बात आ जायगी, तो कोई रोक भ

केगा। अब इसी बात पर मैं देखती हूँ, कि कैसे घर में सिकार जाता है। इले मेरी गर्दन पर गँडासा चलेगा।

मुन्नी बीच में घुसकर गाय के पास बैठ गई और ललकारकर बोली - अब से गँडासा चलाना हो चलावे, बैठी हूँ।

पयाग ने कातर भाव से कहा—हत्या के बल खेती खाती हो और क्या।

मुन्नी बोली—तुम्हीं जैसों ने बिरादरी को इतना बदनाम कर दिया है। उस र कोई समझाता है, तो लड़ने को तैयार होते हो।

गूदड़ चौधरी गहरे विचार मे डूबे खडे थे। दुनिया में हवा किस तरफ़ ल रही है, इसकी भी उन्हे कुछ ख़बर थी। कई बार इस विषय पर अमर- थ से बातचीत कर चुके थे। गभीर भाव से बोले—भाइयो, यहाँ गाँव के ब आदमी जमा है। बताओ अब क्या सलाह है।

एक चौडी छातीवाला युवक बोला—सलाह जो तुम्हारी है, वही सबकी है। ौधरी तो तुम हो।

पयाग ने अपने बाप को विचलित होते देख दूसरों को ललकारकर कहा— ड़े मुँह क्या ताकते हो, इतने जने तो हो। क्यों नहीं मुन्नी का हाथ पकडकर टा देते। मैं गँडासा लिये खडा हूँ।

मुन्नी ने क्रोध से कहा—मेरा ही माँस खा जाओगे, तो कौन हरज है। वह ी तो माँस ही है।

और किसी को आगे बढते न देखकर पयाग ने ख़ुद आगे बढ़कर मुन्नी का ाथ पकड लिया और उसे वहाँ से घसीटना चाहता था कि काशी ने उसे ज़ोरसे क्का दिया और लाल आँखे करके बोला—भैया, अगर उसकी देह पर हाथ ला, तो ख़ून हो जायगा—कहे देता हूँ। हमारे घर मे इस गऊ माँस की गन्ध क न जाने पायेगी। आये वहाँ से वडे वीर बनकर! चौड़ी छाती वाला युवक ध्यस्थ बनकर बोला—मरी गाय के माँस मे ऐसा कौन-सा मज़ा रखा है, जिसके लए सब जने मरे जा रहे हो। गड्ढा खोदकर माँस गाड़ दो, खाल निकाल लो। वह भी जब अमर भैया की सलाह हो। हमको तो उन्हीं की सलाह पर चलना है। उनकी राह पर चलकर हमारा उद्धार हो जायगा। सारी दुनिया में इसी लिए तो अछूत समझती है, कि हम दारू-सराब पीते हैं, मुरदा माँस खाते

हैं और चमडे का काम करते हैं। और हममें क्या बुराई है? दारू हमने छोड़ ही दी—हमने क्या छोड दी, समय ने छुडवा दी—फिर मुरदा मे क्या रखा है। रहा चमडे का काम, उसे कोई बुरा नहीं कह सकता, अगर कहे भी, तो हमे उसकी परवाह नहीं। चमड़ा बनाना-बेचना काम नहीं।

गूदड ने युवक की ओर आदर की दृष्टि से देखा—तुम लोगों ने भू बात सुन ली। तो यही सबकी सलाह है?

भूरे बोला—अगर किसी को उजर करना हो तो करे।

एक बूढ़े ने कहा—एक तुम्हारे या हमारे छोड देने से क्या होता है? बिरादरी तो खाती है।

भूरे ने जवाब दिया—बिरादरी खाती है, बिरादरी नीच बनी रहे। अ अपना धरम अपने-अपने साथ है।

गूदड ने भूरे को सम्बोधित किया—तुम ठीक कहते हो भूरे। लडक पढ़ाना ही ले लो। पहले कोई भेजता था अपने लड़कों को? मगर हमारे लड़के पढ़ने लगे, तो दूसरे गाँवो के लड़के भी आ गये।

काशी बोला—मुरदा-माँस न खाने के अपराध का दंड बिरादरी ह देगी। इसका मै जुम्मा लेता हूँ। देख लेना, आज की बात साँझ तक ओर फैल जायगी, और वह लोग भी यही करेंगे। अमर भैया का सान है। किसकी मजाल है कि उनकी बात को काट दे।

पयाग ने देखा अब दाल न गलेगी, तो सबको धिक्कार कर बोला—मेहरियों का राज है, मेहरियाँ जो कुछ न करे वह थोड़ा।

यह कहता हुआ वह गंडासा लिये घर चला गया।

गूदड लपके हुए गङ्गा की ओर चले और एक गोली के टप्पे से पुका बोले—यहाँ क्या खड़े हो भैया, चलो घर, सब झगडा तय हो गया।

अमर विचार मग्न था। आवाज उसके कानों तक न पहुँची।

चौधरी ने और समीप जाकर कहा—यहाँ कब तक खड़े रहोगे भैया?'

'नहीं दादा, मुझे यहीं रहने दो। तुम लोग वहाँ काट-कूट करोगे, न जायगा। जब तुम फुरसत पा जाओगे, तो मैं आ जाऊँगा।'

'बहू कहती थी, तुम हमारे घर खाने भी नहीं कहते ?'

'हाँ दादा, आज तो न खाऊँगा, मुझे क़ै हो जायगी।'

'लेकिन हमारे यहाँ तो आये-दिन यही धन्धा लगा रहता है।'

'दो-चार दिन के बाद मेरी भी आदत पड जायगी।'

'तुम हमें मन में राच्छस समझ रहे होगे ?'

अमर ने छाती पर हाथ रखकर कहा—नहीं दादा, मैं तो तुम लोगों से कुछ सीखने, तुम्हारी कुछ सेवा करके अपना उद्धार करने आया हूँ। यह तो अपनी-अपनी प्रथा है। चीन एक बहुत बडा देश है। वहाँ बहुत से आदमी बुद्ध भगवान् को मानते हैं। उनके धर्म मे किसी जानवर को मारना पाप है। इसलिए वह लोग मरे हुए जानवर ही खाते हैं। कुत्ते, बिल्ली, गीदड, किसी को भी नहीं छोडते। तो क्या वह हमसे नीच हैं ? कभी नहीं। हमारे ही देश में कितने ही ब्राह्मण, क्षत्री माँस खाते हैं। वह जीभ के स्वाद के लिए जीव-हत्या करते हैं। तुम उनसे तो कहीं अच्छे हो।

गूदड ने हँसकर कहा—भैया, तुम बडे बुद्धिमान हो, तुमसे कोई न जीतेगा। चलो अब कोई मुर्दा नहीं खायगा। हम लोगों ने यह तय कर लिया। हमने क्या तय किया, बहू ने तय किया। मगर खाल तो न फेंकनी होगी ?

अमर ने प्रसन्न होकर कहा—नहीं दादा, खाल क्यों फेंकोगे ? जूते बनाना तो सबसे बडी सेवा है। मगर क्या भाभी बहुत बिगडी थीं ?

गूदड बोला—बिगडी ही नहीं थी भैया, वह तो जान देने को तैयार थी। गाय के पास बैठ गई और बोली—अब चलाओ गँड़ासा, पहला गँडासा मेरी गरदन पर होगा ! फिर किसकी हिम्मत थी, कि गँडासा चलाता।

अमर का हृदय जैसे एक छलाँग मारकर मुन्नी के चरणों पर लोटने लगा।





ई महीने गुजर गये। गाँव मे फिर मुरदा-मांस न आय
आश्चर्य की बात तो यह थी, कि दूसरे गाँवों के चमा
ने भी मुरदा-मास खाना छोड़ दिया। शुभ उद्योग कु
सक्रामक होता है।

अमर की शाला अब नई इमारत मे आ गई थी। शिक्षा का लोगों
कुछ ऐसा चस्का पड गया था, कि जवान तो जवान बूढ़े भी आ बैठते औ
कुछ-न-कुछ सीख जाते। अमर की शिक्षा-शैली आलोचनात्मक थी। अ
देशो की सामाजिक और राजनैतिक प्रगति, नये-नये आविष्कार, नये
विचार, उसके मुख्य विषय थे। देश देशान्तरो के रस्मो-रिवाज, आच
विचार की कथा सभी चाव से सुनते। उसे यह देखकर कभी-कभी विस
होता था, कि ये निरक्षर लोग जटिल सामाजिक सिद्धान्तो को कितनी आस
से समझ जाते हैं। सारे गाँव में एक नया जीवन प्रवाहित होता हुआ ज
पडता था। छूत-छात का जैसे लोप हो गया था। दूसरे गाँवों के ऊँ
जातियो के लोग भी अक्सर आ जाते थे।

दिन भर के परिश्रम के बाद अमर लेटा हुआ एक उपन्यास पढ रहा
के मुन्नी आकर खडी हो गई। अमर पढने में इतना लिप्त था, कि मु
के आने की उसको ख़बर न हुई। राजस्थान की वीर नारियो के बलिद
की कथा थी, उस उज्ज्वल बलिदान की, जिसकी ससार के इतिहास में क
मिसाल नहीं है, जिसे पढकर आज भी हमारी गरदन गर्व मे उठ जाती
जीवन को किसने इतना तुच्छ समझा होगा! कुल-मर्यादा की रक्षा का ऐ
अलौकिक आदर्श और कहाँ मिलेगा? आज का बुद्धिवाद उन वीर माता
पर चाहे जितना कीचड फेक ले, हमारी श्रद्धा उनके चरणों पर सदैव सि
रहेगी।

मुन्नी चुपचाप खड़ी अमर के मुख की ओर ताकती रही। मेघ का वह अल्पांश, जो आज एक साल हुए उसके हृदय-आकाश में पक्षी की भाँति उड़ता हुआ आ गया था, धीरे-धीरे सम्पूर्ण आकाश पर छा गया था। अतीत की ज्वाला मे झुलसी हुई कामनायें इस शीतल छाया में फिर हरी होती जाती थीं। यह शुष्क जीवन उद्यान की भाँति सौरभ और विकास से लहराने लगा है। औरों के लिए तो उसकी देवरानियाँ भोजन पकातीं, अमर के लिए वह खुद पकाती, बेचारे दो तो रोटियाँ खाते हैं, और यह गँवारिनें मोटे मोटे लिट बनाकर रख देती हैं। अमर उससे कोई काम करने को कहता, तो उसके मुख पर आनन्द की ज्योति-सी झलक उठती। वह एक नये स्वर्ग की कल्पना करने लगती—एक नये आनन्द का स्वप्न देखने लगती।

एक दिन सलोनी ने उससे मुसकिराकर कहा—अमर भैया तेरे ही भाग यहाँ आ गये मुन्नी। अब तेरे दिन फिरेंगे।

मुन्नी ने हर्ष को जैसे मुट्ठी मे दबाकर कहा—क्या कहती हो काकी, कहाँ मैं, कहाँ वह। मुझसे कई साल छोटे होंगे। फिर ऐसे विद्वान्, ऐसे चतुर! मैं तो उनकी जूतियों के बराबर भी नहीं।

काकी ने कहा था—यह सब ठीक है मुन्नी, पर तेरा जादू उन पर चल गया है, यह मै देख रही हूँ। संकोची आदमी मालूम होते हैं, इससे तुझसे कुछ कहते नहीं; पर तू उनके मन में समा गई है, विश्वास मान। क्या तुझे इतना भी नहीं सूझता। तुझे उनकी सरम दूर करनी पड़ेगी।

मुन्नी ने पुलकित होकर कहा—तुम्हारा असीस है काकी, तो मेरा मनोरथ भी पूरा हो जायगा।

मुन्नी एक क्षण अमर को देखती रही, तब झोपड़ी में जाकर उसकी खाट निकाल लाई। अमर का ध्यान टूटा। बोला—रहने दो, मैं अभी बिछाये लेता हूँ। तुम मेरा इतना दुलार करोगी मुन्नी, तो मै आलसी हो जाऊँगा। आओ तुम्हे हिन्दू देवियो की कथा सुनाऊँ।

'कोई कहानी है क्या?'

'नहीं, कहानी नहीं है, सच्ची बात है।'

अमर ने मुसलमानो के हमले, क्षत्राणियो के जुहार और राजपूत के शौर्य की चर्चा करते हुए कहा—उन देवियो को आग में जल मरना था; पर यह मंजूर न था, कि पर-पुरुष की निगाह भी उन पर पड़े। आन पर मर मिटती थीं। हमारी देवियों का यह आदर्श था। आज का क्या आदर्श है? जर्मन सिपाही फ्रास पर चढ आये और पुरुषों से ख़ाली हो गये, तो फ्रास की नारियाँ जर्मन सैनिको और नायको ही से क्रीड़ा करने लगीं।

मुन्नी नाक सिकोडकर बोली—बडी चचल हैं सब, लेकिन उन से जीते-जी कैसे जला जाता था?

अमर ने पुस्तक बन्द कर दी—बडा कठिन है मुन्नी! यहाँ तो ज़रा चिनगारी लग जाती है, तो बिलबिला उठते हैं। तभी तो आज सारा उनके नाम के आगे सिर झुकाता है। मैं तो जब यह कथा पढता हूँ तो खड़े हो जाते हैं। यही जी चाहता है, कि जिस पवित्र भूमि पर उन दों की चिताएँ बनीं, उसकी राख सिर पर चढाऊँ, आँखो में लगाऊँ और मर जाऊँ।

मुन्नी किसी विचार में डूबी भूमि की ओर ताक रही थी।

अमर ने फिर कहा – कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता था, कि पुरुषों घर के माया-मोह से मुक्त करने के लिए स्त्रियाँ लड़ाई के पहले ही जुहार लेती थीं। आदमी की जान इतनी प्यारी होती है, कि बूढ़े भी मरना चाहते। हम नाना कष्ट झेलकर भी जीते हैं। बड़े-बड़े ऋषि महात्मा जीवन का मोह नहीं छोड सकते; पर उन देवियो के लिए जीवन खेल था।

मुन्नी अब भी मौन खडी थी। उसके मुख का रंग उडा हुआ मानो कोई दुस्सह अन्तर्वेदना हो रही हो।

अमर ने घबडाकर पूछा—कैसा जी है मुन्नी? चेहरा क्यों उतरा हुआ

मुन्नी ने क्षीण मुस्कान के साथ कहा—मुझे पूछते हो? मुझे क्या हुआ

'कुछ बात तो है! मुझसे छिपाती हो।'

'नहीं जी, कोई बात नहीं।'

एक मिनट के बाद उसने फिर कहा—तुमसे आज अपनी कथा कहूँ, सुनोगे ?

'बड़े हर्ष से । मैं तो तुमसे कई बार कह चुका । तुमने सुनाई ही नहीं ।'

'मैं तुमसे डरती हूँ । तुम मुझे नीच और क्या-क्या समझने लगोगे ।'

अमर ने मानो क्षुब्ध होकर कहा—अच्छी बात है, मत कहो । मैं तो जो कुछ हूँ वही रहूँगा, तुम्हारे बनाने से तो नहीं बन सकता ।

मुन्नी ने हारकर कहा—तुम तो लाला ज़रा-सी बात पर चिढ़ जाते हो, जभी तो किसी से तुम्हारी नहीं पटती । अच्छा लो, सुनो । जो जी मे आवे समझना—मैं जब काशी से चली, तो थोड़ी देर तक तो मुझे कुछ होश ही न रहा—कहाँ जाती हूँ, क्यों जाती हूँ, कहाँ से आती हूँ । फिर मैं रोने लगी । अपने प्यारों का मोह, सागर की भाँति, मन में उमड़ पड़ा । और मैं उसमें डूबने उतराने लगी । अब मालूम हुआ, क्या कुछ खोकर मैं चली जा रही हूँ । ऐसा जान पड़ता था कि मेरा बालक मेरी गोद मे आने के लिए हुमक रहा है । ऐसा मोह मेरे मन में कभी न जगा था । मै उसकी याद करने लगी । उसका हँसना और रोना, उसकी तोतली बाते, उसका लटपटाते हुए चलना, उसे चुप करने के लिए चन्दा मामूँ को दिखाना, सुलाने के लिए लोरियाँ सुनाना, एक-एक बात याद आने लगी । मेरा वह छोटा-सा ससार कितना सुखमय था । उस रत्न को गोद मे लेकर मैं कितनी निहाल हो जाती थी, मानो संसार की संपत्ति मेरे पैरों के नीचे है । उस सुख के बदले मै स्वर्ग का सुख भी न लेती । जैसे मन की सारी अभिलाषाएँ उसी बालक मे आकर जमा हो गई हो । अपना टूटा-फूटा झोंपड़ा, अपने मैले-कुचैले कपड़े, अपना नगा-बूचापन, क़र्ज़-दाम की चिन्ता, अपनी दरिद्रता, अपना दुर्भाग्य, ये सभी पैने काँटे जैसे फूल बन गये । अगर कोई कामना थी, तो यह कि मेरे लाल को कुछ न होने पाये । और आज उसी को छोड़कर मै न जाने कहाँ चली जा रही थी । मेरा चित्त चंचल हो गया । मन की सारी स्मृतियाँ सामने दौड़नेवाले वृक्षों की तरह, जैसे मेरे साथ दौड़ी चली आ रही थीं । और उन्हीं के साथ मेरा बालक भी जैसे दौड़ता चला आता था । आख़िर मैं आगे न जा सकी । दुनिया हँसती है हँसे, बिरादरी मुझे निकालती है निकाल दे, मै अपने लाल को छोड़कर न जाऊँगी । मेहनत-मजूरी

करके भी तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ। अपने लाल को आँखों से देखती रहूँगी। उसे मेरी गोद से कौन छीन सकता है। मैं उसके लिए मरी हूँ, मैं उसे अपने रक्त से सिरजा है। वह मेरा है। उस पर किसी का अधिकार नहीं।

ज्योंही लखनऊ आया, मैं गाड़ी से उतर पड़ी। मैंने निश्चय कर लिया, लौटती हुई गाडी से काशी चली जाऊँगी। जो कुछ होना होगा, होगा।

मै कितनी देर प्लैटफार्म पर खडी रही, मालूम नहीं। बिजली की बत्ति से सारा स्टेशन जगमगा रहा था। मैं बार-बार कुलियो से पूछती थी, काशी की गाडी कब आवेगी। कोई दस बजे मालूम हुआ, गाड़ी आ रही है। मैंने अपना सामान सँभाला। दिल धड़कने लगा। गाडी आ गई। मुसाफिर चढने उतरने लगे। कुली ने आकर कहा—असबाब जनाने डब्बे मे रखूँ, कि मरदाने में।

मेरे मुँह से आवाज़ न निकली।

कुली ने मेरे मुँह की ओर ताकते हुए फिर पूछा—ज़नाने डब्बे में रख दूँ असबाब?

मैंने कातर होकर कहा—मैं इस गाडी से न जाऊँगी।

'अब दूसरी गाडी दस बजे दिन को मिलेगी।'

'मैं उसी गाडी से जाऊँगी।'

'तो असबाब बाहर ले चलूँ या मुसाफिरखाने में?'

'मुसाफिरख़ाने मे।'

अमर ने पूछा—तुम उस गाडी से चली क्यों न गई?

मुन्नी काँपते हुए स्वर मे बोली—न जाने कैसा मन होने लगा। जैसे कोई मेरे हाथ-पाँव बाँधे लेता हो। जैसे मैं गऊ हत्या करने जा रही हूँ। इन कोढ़-भरे हाथों से मैं अपने लाल को कैसे उठाऊँगी। मुझे अपने पति पर क्रोध आ रहा था। वह मेरे साथ आया क्यो नहीं? अगर उसे मेरी परवाह होती, तो मुझे अकेली आने देता? इसी गाडी से वह भी आ सकता था। जब उसकी इच्छा नहीं है, तो मैं भी न जाऊँगी। और न जाने कौन-कौन बातें मन में आकर मुझे जैसे बल-पूर्वक रोकने लगीं। मैं मुसाफ़िरख़ाने में मन मारे बैठी थी, कि एक मर्द अपनी औरत के साथ आकर मेरे ही समीप दरी बिछाकर बैठ गया। औरत की गोद में लगभग एक साल का बालक

था। ऐसा सुन्दर बालक ! ऐसा गुलाबी रंग,-ऐसी कटोरे-सी आँखें, ऐसी मक्खन सी देह ! मैं तन्मय होकर देखने लगी और अपने पराये की सुधि भूल गई। ऐसा मालूम हुआ, यह मेरा बालक है। बालक मा की गोद से उतरकर धीरे-धीरे रेंगता हुआ मेरी ओर आया। मैं पीछे हट गई। बालक फिर मेरी तरफ चला। मैं दूसरी ओर चली गई। बालक ने समझा, मैं उसका अनादर कर रही हूँ। रोने लगा। फिर भी मैं उसके पास न आई। उसकी माता ने मेरी ओर रोष-भरी आँखों से देखकर बालक को दौड़कर उठा लिया, पर बालक मचलने लगा और बार-बार मेरी ओर हाथ बढ़ाने लगा। पर मैं दूर खड़ी रही। ऐसा जान पड़ता था, मेरे हाथ कट गये हैं। जैसे मेरे हाथ लगाते ही वह सोने-सा बालक कुछ और हो जायगा, उसमें से कुछ निकल जायगा।

स्त्री ने कहा—लड़के को ज़रा उठा लो देवी, तुम तो जैसे भाग रही हो। जो दुलार करते हैं, उनके पास तो अभागा जाता नहीं, जो मुँह फेर लेते हैं, उनकी ओर दौड़ता है।

बाबूजी, मैं तुमसे नहीं कह सकती, कि इन शब्दों ने मेरे मन को कितनी चोट पहुँचाई। कैसे समझा दूँ कि मैं कलंकिनी हूँ, पापिष्टा हूँ, मेरे छूने से अनिष्ट होगा, अमंगल होगा। और यह जानने पर क्या वह मुझसे फिर अपना बालक उठा लेने को कहेगी !

मैंने समीप आकर बालक की ओर स्नेह-भरी आँखों से देखा और डरते-डरते उसे उठाने के लिए हाथ बढ़ाया। सहसा बालक चिल्लाकर मा की तरफ़ भागा, मानो उसने कोई भयानक रूप देख लिया हो। अब सोचती हूँ, तो समझ में आता है—बालकों का यही स्वभाव है, पर उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ, कि सचमुच मेरा रूप पिशाचिनी का-सा होगा। मैं लज्जित हो गई।

माता ने बालक से कहा—अब जाता क्यों नहीं रे, बुला तो रही हैं। कहाँ जाओगी बहन ? मैंने हरिद्वार बता दिया। वह स्त्री-पुरुष भी हरिद्वार ही जा रहे थे। गाड़ी छूट जाने के कारण ठहर गये थे। घर दूर था। लौटकर न जा सकते थे। मैं बड़ी ख़ुश हुई, कि हरिद्वार तक साथ तो रहेगा; लेकिन फिर वह बालक मेरी ओर न आया।

थोड़ी देर में स्त्री-पुरुष तो सो गये; पर मैं बैठी रही। मा से चिमटा हुआ बालक भी सो रहा था। मेरे मन में बड़ी प्रबल इच्छा हुई कि बालक को उठाकर प्यार करूँ; पर दिल काँप रहा था कि कहीं बालक रोने लगे, या माता जाग जावे, तो दिल में क्या समझे। मैं बालक का फूल-सा मुखड़ा देख रही थी। वह शायद कोई स्वप्न देखकर मुसकिरा रहा था। मेरा दिल क़ाबू से बाहर हो गया। मैंने सोते हुए बालक को छाती से लगा लिया; पर दूसरे ही क्षण मैं सचेत हो गई और बालक को लिटा दिया। उस क्षणिक प्यार मे कितना आनन्द था! जान पड़ता था मेरा ही बालक यह रूप धरकर मेरे पास आ गया है।

देवीजी का हृदय बड़ा कठोर था। बात-बात पर उस नन्हें-से बालक को झिड़क देतीं, कभी-कभी मार बैठती थीं। मुझे उस वक्त ऐसा क्रोध आता था कि उसे खूब डाटूँ। अपने बालक पर माता इतना क्रोध कर सकती है, यह मैंने आज ही देखा।

जब दूसरे दिन हम लोग हरिद्वार की गाड़ी में बैठे, तो बालक मेरा हो चुका था। मैं तुमसे क्या कहूँ बाबूजी, मेरे स्तनों मे दूध भी उतर आया और माता को मैंने इस भार से भी मुक्त कर दिया।

हरिद्वार मे हम लोग एक धर्मशाले में ठहरे। मैं बालक के मोह-फाँस में बँधी हुई उस दम्पती के पीछे पीछे फिरा करती। मै अब उसकी लौंडी थी। बच्चे का मल-मूत्र धोना मेरा काम था, उसे दूध पिलाती, खिलाती। माता का जैसे गला छूट गया, लेकिन मै इस सेवा में मगन थी। देवीजी जितनी आलसिन और घमंडिन थीं, लालाजी उतने ही शीलवान् और दयालु थे। वह मेरी तरफ कभी आँख उठाकर भी न देखते। अगर मे कमरे मे अकेली होती, तो कभी अन्दर न जाते। कुछ-कुछ तुम्हारे ही जैसा स्वभाव था। मुझे उन पर दया आती थी। उस कर्कशा के साथ उनका जीवन इस तरह कट रहा था, मानो बिल्ली के पंजे में चूहा हो। वह उन्हें बात-बात पर झिड़कती। बेचारे खिसियाकर रह जाते।

पन्द्रह दिन बीत गये थे। देवी ने घर लौटने के लिए कहा। बाबूजी भी वहाँ कुछ दिन और रहना चाहते थे। इसी बात पर तकरार हो गई।

मदे में बालक को लिये खडी थी। देवीजी ने गरम होकर कहा तुम्हे रहना तो रहो, मैं तो आज जाऊँगी। तुम्हारी आँखों रास्ता नहीं देखा है।

पति ने डरते-डरते कहा, यहाँ दस-पाँच दिन रहने मे हरज ही क्या है। मुझे तुम्हारे स्वास्थ्य मे अभी कोई तबदीली नहीं दिखती।

'आप मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता छोडिये। मैं इतनी जल्द नहीं मरी जा रही। सच कहते हो, तुम मेरे स्वास्थ्य के लिए यहाँ ठहरना चाहते हो?'

'और किस लिए आया था?'

'आये चाहे जिस काम के लिए हो, पर तुम मेरे स्वास्थ्य के लिए नहीं ठहर हो। यह पट्टियाँ उन स्त्रियों को पढाओ, जो तुम्हारे हथकण्डे न जानती हों। तुम्हारी नस-नस पहचानती हूँ। तुम ठहरना चाहते हो विहार के लिए, हा के लिए...'

बाबूजी ने हाथ जोडकर कहा—अच्छा अब रहने दो बिन्नी, कलंकित न । मैं आज ही चला जाऊँगा।

देवीजी इतनी सस्ती विजय पाकर प्रसन्न न हुईं। अभी उनके मन का बार तो निकलने ही नहीं पाया था। बोलीं—हाँ, चले क्यों न चलोगे, यही तुम चाहते थे। यहाँ पैसे खर्च होते हैं न। ले जाकर उसी काल-कोठरी में त दो। कोई मरे या जिये, तुम्हारी बला से। एक मर जायगी, तो दूसरी र आ जायगी, बल्कि और नई-नवेली। तुम्हारी चाँदी ही चाँदी है। सोचा यहाँ कुछ दिन रहूँगी, पर तुम्हारे मारे जब कहीं रहने पाऊँ। भगवान् भी उठा लेते कि गला छूट जाय!

अमर ने पूछा—उन बाबूजी ने सचमुच कोई शरारत की थी, या मिथ्या आरोप था?

मुन्नी ने मुँह फेरकर मुसकिराते हुए कहा—लाला, तुम्हारी समझ बडी मोटी वह डायन मुझ पर आरोप कर रही थी। बेचारे बाबूजी दबे जाते थे, कि वह चुडैल बात खोलकर न कह दे, हाथ जोडते थे, मिन्नतें करते थे, पर किसी तरह रास न होती थी।

आँखें मटकाकर बोली—भगवान् ने मुझे भी दो आँखें दी हैं, अन्धी नहीं मैं तो कमरे में पडी-पडी कराहूँ और तुम बाहर गुलछर्रे उडाओ! दिल लाने को कोई शगल चाहिये।

एक क्षण के बाद फिर वही कल्पना। स्वामी ने साफ कहा है, उन
दिल साफ है। बातें बनाने की उनकी आदत नहीं। तो वह कोई
बात कहेंगे ही क्यों, जो मुझे लगे। गड़े मुरदे उखाड़ने की उनकी आ
नहीं। वह मुझसे कितना प्रेम करते थे। अब भी उनका हृदय वही
मैं व्यर्थ के सङ्कोच मे पडकर उनका और अपना जीवन चौपट कर रही।
लेकिन!...लेकिन मैं अब क्या वह हो सकती हूँ, जो पहले थी! नहीं, अ
वह नहीं हो सकती।

पतिदेव अब मेरा पहिले से अधिक आदर करेंगे। मैं जानती हूँ। मैं
का घडा भी लुढका दूँगी, तो कुछ न कहेंगे। वह उतना ही प्रेम भी क
लेकिन वह बात कहाँ, जो पहले थी। अब तो मेरी दशा उस रोगिणी की
होगी, जिसे कोई भोजन रुचिकर नहीं होता।

'तो फिर मैं जिन्दा ही क्यो रहूँ! जब जीवन मे कोई सुख नहीं,
अभिलाषा नहीं, तो वह व्यर्थ है। कुछ दिन और रो लिया, तो इससे क
कौन जानता है, क्या-क्या कलङ्क सहने पडें, क्या क्या दुर्दशा हो।
जाना कहीं अच्छा।

यह निश्चय करके मैं उठी। सामने ही पतिदेव सो रहे थे। बाल
पड़ा सोता था। ओह! कितना प्रबल बन्धन था! जैसे सूम का धन
वह उसे खाता नहीं, देता नहीं, इसके सिवा उसे और क्या सन्तोष है कि
पास धन है। इस बात से ही उसके मन में कितना बल आ जाता है।
उसी मोह को तोडने जा रही थी।

मैं डरते-डरते, जैसे प्राणों को आँखों में लिये, पतिदेव के समीप गई।
वहाँ एक क्षण भी खड़ी न रह सकी। जैसे लोहा खिचकर चुम्बक से
चिमटता है, उसी तरह मैं उनके मुख की ओर खिची जा रही थी। मैंने
मन का सारा बल लगाकर उसका मोह तोड दिया और उसी आवेश में
हुई गङ्गा के तट पर आई। मोह अब भी मन से चिपटा हुआ था।
गङ्गा में कूद पड़ी।

अमर ने कातर होकर कहा—अब नहीं सुना जाता मुन्नी। फिर

तीसरा भाग



लाला समरकान्त की ज़िन्दगी के सारे मंसूबे धूल में मिल गये। उन्होंने कल्पना की थी, कि जीवन-सन्ध्या में अपना सर्वस्व बेटे को सौंपकर और बेटी का विवाह करके किसी एकान्त में बैठकर भगवत्-भजन में विश्राम लेंगे, लेकिन मन की मन मे ही रह गई। यह मानी हुई बात थी, कि वह अन्तिम साँस तक विश्राम लेनेवाले प्राणी न थे। लड़के को बढ़ते देखकर उनका हौसला और बढ़ता; लेकिन कहने को हो गया। बीच में अमर कुछ ढर्रे पर आता हुआ जान पड़ता था; लेकिन जब उसकी बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई, तो अब उससे क्या आशा की जा सकती थी। अमर मे और चाहे जितनी बुराइयाँ हों, उसके चरित्र के विषय में कोई सन्देह न था, पर कुसङ्गति में पड़कर उसने धर्म भी खोया, चरित्र भी खोया, और कुलमर्यादा भी खोई। लालाजी कुत्सित सम्बन्ध को बहुत बुरा न समझते थे। रईसों मे यह प्रथा प्राचीन काल से चली आती है। वह रईस ही क्या, जो इस तरह के खेल न खेले, लेकिन धर्म छोड़ने को तैयार हो जाना, खुले खजाने समाज की मर्यादाओं को तोड डालना, यह तो पागलपन है, बल्कि गधापन।

समरकान्त का व्यावहारिक जीवन उनके धार्मिक जीवन से बिलकुल अलग था। व्यवहार और व्यापार में वह धोखा-धडी, छल-प्रपंच, सब कुछ क्षम्य समझते थे। उनकी व्यापार नीति में सन या कपास में कचरा भर देना, घी मे आलू या घुइयाँ गड्ड देना, औचित्य से बाहर न था, पर बिना स्नान किये वह मुँह में पानी भी न डालते थे। इन चालीस वर्षों में ऐसा शायद ही कोई दिन गया हो, कि उन्होंने सन्ध्या-समय की आरती न ली हो और तुलसी-दल माथे

पर न चढाया हो। एकादशी को बराबर निर्जल व्रत रखते थे। सारांश यह कि उनका धर्म आडम्बर-मात्र था, जिसका उनके जीवन में कोई प्रयोजन न था।

सलीम के घर से लौटकर पहला काम जो लालाजी ने किया, वह सुखदा को फटकारना था। इसके बाद नैना की बारी आई। दोनों को रुलाकर वह अपने कमरे में गये और खुद रोने लगे।

रातोरात यह खबर सारे शहर में फैल गई। तरह-तरह की मिस्कौट होने लगी। समरकान्त दिन भर घर से नहीं निकले। यहाँ तक कि आज गंगा-स्नान करने भी न गये। कई असामी रुपये लेकर आये। मुनीम तिजोरी की कुंजी माँगने गया। लालाजी ने ऐसा डाँटा कि वह चुपके से बाहर निकल आया। असामी रुपए लेकर लौट गये।

ख़िदमतगार ने चाँदी का गडगुडा लाकर सामने रख दिया। तंबाकू जल गया। लालाजी ने निगाली भी मुँह में न ली।

दस बजे सुखदा ने आकर पूछा—आप क्या भोजन कीजियेगा?

लालाजी ने उसे कठोर आँखों से देखकर कहा—मुझे भूख नहीं है।

सुखदा चली गई। दिन भर किसी ने कुछ न खाया।

नौ बजे रात को नैना ने आकर कहा—दादा, आरती में न जाइयेगा?

लालाजी चौंके—हाँ-हाँ, जाऊँगा क्यों नहीं। तुम लोगों ने कुछ खाया कि नहीं?

नैना बोली—किसी की इच्छा ही न थी। कौन खाता?

'तो क्या उसके पीछे सारा घर प्राण देगा?'

सुखदा इसी समय तैयार होकर आ गई। बोली—जब आप ही प्राण दे रहे हैं, तो दूसरों पर बिगडने का आपको क्या अधिकार है?

लालाजी चादर ओढकर जाते हुए बोले—मेरा क्या बिगड़ा है कि मैं प्राण दूँ। यहाँ था, तो मुझे कौन-सा सुख देता था। मैंने तो बेटे का सुख ही नहीं जाना। तब भी जलाता था, अब भी जला रहा है। चलो भोजन बनाओ, मैं आकर खाऊँगा। जो गया उसे जाने दो। जो हैं उन्हीं को उस जानेवाले की कसर पूरी करनी है। मैं क्यों प्राण देने लगा। मैंने पुत्र को जन्म दिया

सका विवाह भी मैंने किया। सारी गृहस्थी मैंने बनाई। इसके चलाने का ार मुझ पर है। मुझे अब बहुत दिन जीना है। मगर मेरी समझ में यह ात नहीं आती कि इस लौंडे को यह सूझी क्या ? पठानिन की पोती अप्सरा हीं हो सकती। फिर उसके पीछे वह क्यों इतना लट्टू हो गया ? उसका तो सा स्वभाव न था। इसी को भगवान् की लीला कहते हैं।

ठाकुरद्वारे में लोग जमा हो गये थे। लाला समरकान्त को देखते ही कई जनों ने पूछा—अमर कहीं चले गये क्या सेठजी ! क्या बात हुई ?

लालाजी ने जैसे इस वार को काटते हुए कहा—कुछ नहीं, उसकी बहुत दिनों से घूमने-घामने की इच्छा थी, पूर्वजन्म का तपस्वी है कोई, उसका बस चले, तो मेरी सारी गृहस्थी एक दिन में लुटा दे। मुझसे यह नहीं देखा जाता। स यही झगड़ा है। मैंने ग़रीबी का मज़ा भी चखा है, अमीरी का मज़ा भी चखा है। उसने अभी ग़रीबी का मजा नहीं चखा। साल-छः महीने उसका मजा चख लेगा, तो आँखें खुल जायँगी। तब उसे मालूम होगा, कि जनता की सेवा भी वही लोग कर सकते हैं, जिनके पास धन है। घर में भोजन का आधार न होता, तो मेम्बरी भी न मिलती।

किसी को और कुछ पूछने का साहस न हुआ। मगर मूर्ख पुजारी पूछ ही बैठा—सुना किसी जुलाहे की लड़की से फँस गये थे ?

यह अक्खड़ प्रश्न सुनकर लोगों ने जीभ काटकर मुँह फेर लिये। लालाजी ने पुजारी को रक्त-भरी आँखों से देखा और ऊँचे स्वर मे बोले—हाँ, फँस गये थे तो फिर ? कृष्ण भगवान ने एक हज़ार रानियों के साथ नहीं भोग किया था ? राजा शान्तनु ने मछुए की कन्या से नहीं भोग किया था ? कौन राजा है, जिसके महल में दो सौ रानियाँ न हों ? अगर उसने किया, तो कोई नई बात नहीं की। तुम-जैसों के लिए यही जवाब है। समझदारों के लिए यह जवाब है, कि जिसके घर में अप्सरा-सी स्त्री हो, वह क्यों जूठी पत्तल चाटने लगा। मोहन-भोग खानेवाले आदमी चबैने पर नहीं गिरते।

यह कहते हुए लालाजी प्रतिमा के सम्मुख गये; पर आज उनके मन में वह श्रद्धा न थी। दुखी आशा से ईश्वर मे भक्ति रखता है, सुखी भय से। दुखी पर जितना ही अधिक दुःख पड़े, उसकी भक्ति बढ़ती जाती है। सुखी पर दुःख

पड़ता है, तो वह विद्रोह करने लगता है। वह ईश्वर को भी अपने धन के आगे झुकाना चाहता है। लालाजी का व्यथित हृदय आज सोने और रेशम से जगमगाती हुई प्रतिमा से धैर्य और सन्तोष का सन्देश न पा सका। कल तक यही प्रतिमा उन्हें बल और उत्साह प्रदान करती थी। उसी प्रतिमा से आज उनका विपद्ग्रस्त मन विद्रोह कर रहा था। उनकी भक्ति का यही पुरस्कार है? उनके स्नान, व्रत और निष्ठा का यही फल है।

वह चलने लगे, तो ब्रह्मचारीजी बोले—लालाजी, अबकी यहाँ श्री वाल्मीकीय-कथा का विचार है।

लालाजी ने पीछे फिरकर कहा—हाँ हाँ, होने दो।

एक बाबू साहब ने कहा—यहाँ तो किसी में इतनी सामर्थ्य नहीं है आप ही हिम्मत करें, तो हो सकती है।

समरकान्त ने उत्साह से कहा—हाँ हाँ, मैं उसका सारा भार लेने को तैयार हूँ। भगवद्भजन से बढ़कर धन का सदुपयोग और क्या होगा?

उनका यह उत्साह देखकर लोग चकित हो गये। वह कृपण थे और किसी धर्मकार्य में अग्रसर न होते थे। लोगों ने समझा था, इनसे दस और रुपए ही मिल जायँ तो बहुत हैं। उन्हें यों बाज़ी मारते देखकर और लोग भी गरमाये। सेठ धनीराम ने कहा—आपसे सारा भार लेने को नहीं कहा जाता लालाजी। आप लक्ष्मीपात्र हैं सही, पर औरों को भी तो श्रद्धा है चन्दे से होने दीजिये।

समरकान्त बोले—तो और लोग आपस में चन्दा कर लें। जितनी कमी रह जायगी, वह मैं पूरी कर दूँगा।

धनीराम को भय हुआ, कहीं यह महाशय सस्ते न छूट जायँ। बोले—यह नहीं, आपको जितना लिखना हो लिख दें।

समरकान्त ने होड़ के भाव से कहा—पहले आप लिखिए।

कागज़, कलम, दावात लाया गया। धनीराम ने लिखा १०१)।

समरकान्त ने ब्रह्मचारीजी से पूछा—आपके अनुमान से कुल कितना खर्च होगा?

ब्रह्मचारीजी का तख़मीना एक हजार का था।

समरकान्त ने ८९९) लिख दिये, और वहाँ से चल दिये। सच्ची श्रद्धा की कमी को वह धन से पूरा करना चाहते थे। धर्म की क्षति जिस अनुपात से होती है, उसी अनुपात से आडम्बर की वृद्धि होती है।



अमरकान्त का पत्र लिये हुए नैना अन्दर आई, तो सुखदा ने पूछा—किसका पत्र है?

नैना ने ख़त पाते ही पाते पढ डाला था। बोली—भैया का।

सुखदा ने पूछा—अच्छा, उनका ख़त है! कहाँ है?

'हरिद्वार के पास किसी गाँव में हैं।'

आज पाँच महीनों से दोनों में अमरकान्त की कभी चर्चा न हुई थी। मानों वह कोई घाव था, जिसको छूते दोनों ही के दिल काँपते थे। सुखदा ने फिर कुछ न पूछा। बच्चे के लिए एक फ्रॉक सी रही थी। फिर सीने लगी।

नैना पत्र का जवाब लिखने लगी। इसी वक़्त वह जवाब भेज देगी। आज पाँच महीने में आपको मेरी सुधि आई है। जाने क्या-क्या लिखना चाहती थी। कई घंटों के बाद वह ख़त तैयार हुआ, जो हम पहले ही देख चुके हैं। ख़त लेकर वह भाभी को दिखाने गई। सुखदा ने देखने की जरूरत न समझी।

नैना ने हताश होकर पूछा—तुम्हारी तरफ से भी कुछ लिख दूँ?

'नहीं, कुछ नहीं।'

'तुम्हीं अपने हाथ से लिख दो।'

'मुझे कुछ नहीं लिखना है।'

नैना रुआँसी होकर चली गई। ख़त डाक में भेज दिया गया।

सुखदा को अमर के नाम से भी चिढ़ है। उसके कमरे में अमर की एक तसवीर थी, उसे उसने तोड़कर फेंक दिया था। अब उसके पास अमर की याद दिलानेवाली कोई चीज़ न थी। यहाँ तक कि बालक से भी उसका जी हट गया था। वह अब अधिकतर नैना के पास रहता था। स्नेह के बदले वह अब उस पर दया करती थी; पर इस पराजय ने उसे हताश नहीं किया, उसका आत्माभिमान कई गुना बढ़ गया है। आत्मनिर्भर भी अब वह कहीं ज्यादा हो गई है। वह अब किसी की अपेक्षा नहीं करना चाहती। स्नेह के दबाव के सिवा और किसी दबाव से उसका मन विद्रोह करने लगता है। उसकी विलासिता मानो मान के वन में खो गई है।

लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि सकीना से उसे लेशमात्र भी द्वेष नहीं है। वह उसे भी अपनी ही तरह, बल्कि अपने से अधिक दुखी समझती है। उसकी कितनी बदनामी हुई, और अब बेचारी उस निर्दयी के नाम को रो रही है। वह सारा उन्माद जाता रहा। ऐसे छिछोरों का एतबार ही क्या। वहाँ कोई दूसरा शिकार फाँस लिया होगा। उससे मिलने की उसे बड़ी इच्छा थी, पर सोच-सोचकर रह जाती थी।

एक दिन पठानिन से मालूम हुआ, कि सकीना बहुत बीमार है। उस दिन सुखदा ने उससे मिलने का निश्चय कर लिया। नैना को भी साथ ले लिया। पठानिन ने रास्ते में कहा—मेरे सामने तो उसका मुँह ही बन्द हो जायगा। मुझसे तो तभी से बोल-चाल नहीं है। मैं तुम्हें घर दिखाकर कहीं चली जाऊँगी। ऐसी अच्छी शादी हो रही थी, इसने मंज़ूर ही न किया। मैं भी चुप हूँ, देखूँ कब तक उसके नाम को बैठी रहती है। मेरे जीते-जी तो लाला घर में कदम रखने न पायेंगे। हाँ पीछे की नहीं कह सकती।

सुखदा ने छेड़ा—किसी दिन उनका खत आ जाय और सकीना चली जाय तो क्या करोगी?

बुढ़िया आँखें निकालकर बोली—मजाल है, कि इस तरह चली जाय! खून पी जाऊँ।

सुखदा ने फिर छेड़ा—जब वह मुसलमान होने को कहते हैं, तब तुम्हें क्या ...

पठानिन ने कानों पर हाथ रखकर कहा—अरे बेटा ! जिसका जिन्दगी भर
मक खाया, उसका घर उजाडकर अपना घर बनाऊं ! यह शरीफो का काम नहीं
। मेरी तो समझ ही में नहीं आता, इस छोकरी में क्या देखकर भैया
झ पड़े।

अपना घर दिखाकर पठानिन तो पड़ोस के एक घर में चली गई, दोनो
वतियो ने सकीना के द्वार की कुण्डी खटखटाई। सकीना ने उठकर द्वार
ोल दिया। दोनो को देखकर वह घबडा-सी गई। जैसे कहीं भागना चाहती
। कहाँ बैठाये, क्या सत्कार करे !

सुखदा ने कहा—तुम परेशान न हो बहन, हम इस खाट पर बैठ जाते
। तुम तो जैसे घुलती जाती हो। एक बेवफा मर्द के चकमे में पडकर क्या
ान दे दोगी !

सकीना का पीला चेहरा शर्म से लाल हो गया। उसे ऐसा जान पड़ा,
क सुखदा उससे जवाब तलब कर रही है—तुमने मेरा बना-बनाया घर क्यो
जाड दिया ? इसका सकीना के पास कोई जवाब न था। वह काड कुछ
स आकस्मिक रूप से हुआ कि वह स्वयं कुछ न समझ सकी। पहले बादल
ा एक टुकड़ा आकाश के एक कोने में दिखाई दिया। देखते-देखते सारा
ाकाश मेघाच्छन्न हो गया और ऐसे ज़ोर की आँधी चली, कि वह खुद उसमे
ड गई। वह क्या बताये, कैसे क्या हुआ। बादल के उस टुकडे को देखकर
ौन कह सकता था, आँधी आ रही है।

उसने सिर झुकाकर कहा—औरत की जिन्दगी और है ही किस लिए
हनजी ! वह अपने दिल से लाचार है, जिससे वफ़ा की उम्मीद करती है, वही
ग़ा करता है। उसका क्या अख्तियार, लेकिन बेवफाओ से मुहब्बत न हो,
ो मुहब्बत मे मज़ा ही क्या रहे। शिकवा-शिकायत, रोना-धोना, बेताबी और
करारी यही तो मुहब्बत के मज़े हैं, फिर मै तो वफ़ा की उम्मीद भी नहीं करती
ी। मैं उस वक्त भी इतना जानती थी, कि यह आँधी दो-चार घड़ी की
हमान है, लेकिन मेरी तस्कीन के लिए तो इतना ही काफी था, कि जिस आदमी
ी मैं दिल में सबसे ज्यादा इज्ज़त करने लगी थी, उसने मुझे इस लायक़ तो
मझा। मैं इस काग़ज़ की नाव पर बैठकर भी सागर को पार कर दूँगी।

ङ्गी, चमार जिसे देखो घुसा चला आता है—ठाकुरजी का मन्दिर न हुआ राय हुई।

समरकान्त ने कड़ककर कहा—निकाल दो सभों को मारकर!

एक बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा—हम तो यहाँ दरवज्जे पर बैठे थे सेठजी, हाँ जूते रखे हैं। हम क्या ऐसे नादान हैं, कि आप लोगों के बीच में आकर बैठ जाते।

ब्रह्मचारीजी ने उसे एक जूता जमाते हुए कहा—तू यहाँ आया यों? यहाँ से वहाँ तक एक दरी बिछी हुई है। सब का सब भरभंड हुआ, कि नहीं। परसाद है, चरणामृत है, गंगाजल है। सब मिट्टी हुआ, कि नहीं? अब इस जाड़े-पाले में लोगों को नहाना-धोना पड़ेगा कि नहीं? हम कहते हैं तू बूढ़ा हो गया मिठुआ, मरने के दिन आ गये; पर तुझे इतनी अक्कल भी नहीं आई। चला है वहाँ से बड़ा भगत की पूँछ बनकर!

समरकान्त ने बिगड़कर पूछा—और भी पहले कभी आया था कि आज ही आया है।

मिठुआ बोला—रोज आते हैं महाराज, यहीं दरवज्जे पर बैठकर भगवान की कथा सुनते हैं।

ब्रह्मचारीजी ने माथा पीट लिया। ये दुष्ट रोज यहाँ आते थे! रोज सबको छूते थे। इनका छुआ हुआ प्रसाद लोग रोज खाते थे। इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है। धर्म पर इससे बड़ा आघात और क्या हो सकता है। धर्मात्माओं के क्रोध का वारापार न रहा। कई आदमी जूते ले-लेकर उन गरीबों पर पिल पड़े। भगवान के मन्दिर में, भगवान के भक्तों के हाथों, भगवान के भक्तों पर पादुका-प्रहार होने लगा।

डाक्टर शान्तिकुमार और उनके अध्यापक खड़े ज़रा देर तक यह तमाशा देखते रहे। जब जूते चलने लगे, तो स्वामी आत्मानन्द अपना मोटा सोटा लेकर ब्रह्मचारी की तरफ़ लपके।

डाक्टर साहब ने देखा, घोर अनर्थ हुआ चाहता है। झपटकर [illegible]
[illegible]

आत्मानन्द ने खून-भरी आँखो से देखकर कहा—आप यह दृश्य देख सकते हैं। मैं नहीं देख सकता।

शान्तिकुमार ने उन्हें शान्त किया और ऊँची आवाज़ से बोले—वाह रे ईश्वरभक्तो! वाह! क्या कहना है तुम्हारी भक्ति का! जो जितने जूते मारेगा, भगवान उस पर उतने ही प्रसन्न होंगे। उसे चारों पदार्थ मिल जायँगे। सीधे स्वर्ग से विमान आ जायगा। मगर अब चाहे जितना मारो, धर्म तो नष्ट हो गया।

ब्रह्मचारी, लाला समरकान्त, सेठ धनीराम और अन्य धर्म के ठेकेदारों ने चकित होकर शान्तिकुमार की ओर देखा। जूते चलने बन्द हो गये।

शान्तिकुमार इस समय कुरता और धोती पहने, माथे पर चन्दन लगाये, गले में चादर डाले व्यास के छोटे भाई-से लग रहे थे। यह उनका वह फैशन न था, जिस पर विधर्मी होने का आक्षेप किया जा सकता था।

डाक्टर साहब ने फिर ललकारकर कहा—आप लोगों ने हाथ क्यों बन्द कर लिये? लगाइये कस-कसकर। और जूतों से क्या होता है, बन्दूकें मँगाइये और धर्म-द्रोहियों का अन्त कर डालिये। सरकार कुछ नहीं कह सकती। और तुम धर्म-द्रोहियो, तुम सब के सब बैठ जाओ और जितने जूते खा सको खाओ। तुम्हें इतनी भी ख़बर नहीं, कि यहाँ सेठ-महाजनो के भगवान रहते हैं! तुम्हारी इतनी मजाल, कि इन भगवान के मन्दिर में क़दम रखो! तुम्हारे भगवान कहीं किसी झोंपड़े में या पेड़ तले होंगे। यह भगवान रत्नों के आभूषण पहनते हैं, मोहनभोग-मलाई खाते हैं। चीथड़े पहननेवालों और चबेना खानेवालों की सूरत वह नहीं देखना चाहते।

ब्रह्मचारीजी परशुराम की भाँति विकराल रूप दिखाकर बोले—तुम तो बाबूजी, अन्धेर करते हो। सासतर में कहाँ लिखा है कि अन्त्यजो को मन्दिर में आने दिया जाय।

शान्तिकुमार ने आवेश से कहा—कहीं नहीं। शास्त्र मे यह लिखा है, कि घी में चरबी मिलाकर बेचो, टेनी मारो, रिशवतें खाओ, आँखों में धूल झोंको, जो तुमसे बलवान् है, उनके चरण धो-धोकर पियो, चाहे वह शास्त्र को

 से ठुकराते हो। तुम्हारे शास्त्र मे यह लिखा है, तो यह करो। हमारे शास्त्र

में तो यह लिखा है कि भगवान की दृष्टि में न कोई छोटा है, न बड़ा, न कोई शुद्ध और न कोई अशुद्ध। उनकी गोद सबके लिए खुली हुई है।

समरकान्त ने कई आदमियों को अंत्यजों का पक्ष लेने के लिए तैयार देखकर उन्हें शान्त करने की चेष्टा करते हुए कहा—डाक्टर साहब, तुम व्यर्थ इतना क्रोध कर रहे हो। शास्त्र में क्या लिखा है, क्या नहीं लिखा है, यह तो पंडित ही जानते हैं। हम तो जैसी प्रथा देखते हैं, वह करते हैं। इन पाजियों को सोचना चाहिये था या नहीं! इन्हें तो यहाँ का हाल मालूम है, कहीं बाहर से तो नहीं आये हैं।

शान्तिकुमार का ख़ून खौल रहा था—आप लोगों ने जूते क्यों मारे!

ब्रह्मचारी ने उजड्डपन से कहा—और क्या पान-फूल लेकर पूजते!

शान्तिकुमार उत्तेजित होकर बोले—अंधे भक्तों की आँखों में धूल झोंक कर यह हलवे बहुत दिन खाने को न मिलेंगे महाराज, समझ गये! अब वह समय आ रहा है, जब भगवान् भी पानी से स्नान करेंगे, दूध से नहीं।

सब लोग हाँ-हाँ करते ही रहे; पर शान्तिकुमार, आत्मानन्द और सेवा पाठशाला के छात्र उठकर चल दिये। भजन-मंडली का मुखिया सेवाश्रम का ब्रजनाथ था। वह भी उनके साथ ही चला गया।



उस दिन फिर कथा न हुई। कुछ लोगों ने ब्रह्मचारी ही पर आक्षेप करना शुरू किया। बैठे तो थे बेचारे एक कोने में, उन्हें उठाने की जरूरत ही क्या थी। और उठाया भी, तो नम्रता से उठाते। मार-पीट से क्या फ़ायदा!

दूसरे दिन नियत समय पर कथा शुरू हुई; पर श्रोताओं की संख्या कम हो गई थी। मधुसूदनजी ने बहुत चाहा, कि रंग जमा दें; पर ... ले रहे थे और पिछली सफ़ों में तो लोग धड़ल्ले से सो रहे थे।

होता था, मन्दिर का आँगन कुछ छोटा हो गया है, दरवाजे कुछ नीचे हो गये हैं। भजन-मंडली के न होने से और भी सन्नाटा है। उधर नौजवान सभा के सामने खुले मैदान में शान्तिकुमार की कथा हो रही थी। ब्रजनाथ, सलीम, आत्मानन्द आदि आनेवालों का स्वागत करते थे। थोड़ी देर में दरियाँ छोटी पड़ गईं और थोड़ी देर और गुजरने पर मैदान भी छोटा पड़ गया। अधिकांश लोग नंगे बदन थे, कुछ लोग चीथड़े पहने हुए। उनकी देह से तम्बाकू और मैलेपन की दुर्गन्ध आ रही थी। स्त्रियाँ आभूषणहीन, मैली-कुचैली धोतियाँ या लँहगे पहने हुए थीं। रेशम और सुगन्ध और चमकीले आभूषणों का कहीं नाम न था, पर हृदयों में दया थी, धर्म था, सेवा-भाव था, त्याग था। नये आनेवालों को देखते ही लोग जगह घेरने को पाँव न फैला लेते थे, यों न ताकते थे, जैसे कोई शत्रु आ गया हो, बल्कि और सिमट जाते थे और खुशी से जगह दे देते थे।

नौ बजे कथा आरम्भ हुई। यह देवी-देवताओं और अवतारों की कथा न थी, ब्रह्म-ऋषियों के तप और तेज का वृत्तान्त न था, क्षत्रियों के शौर्य और दान की गाथा न थी। यह उस पुरुष का पावन चरित्र था, जिसके यहाँ मन और कर्म की शुद्धता ही धर्म का मूल तत्त्व है। वही ऊँचा है, जिसका मन शुद्ध है, वही नीचा है, जिसका मन अशुद्ध है—जिसने वर्ण का स्वाँग रचकर समाज के एक अंग को मदान्ध और दूसरे को म्लेच्छ नहीं बनाया। किसी के लिए उन्नति या उद्धार का द्वार नहीं बन्द किया—एक के माथे पर बड़प्पन का तिलक और दूसरे के माथे पर नीचता का कलंक नहीं लगाया। इस चरित्र में आत्मोन्नति का एक सजीव सन्देश था, जिसे सुनकर दर्शकों को ऐसा प्रतीत होता था, मानो उनकी आत्मा के बन्धन खुल गये हैं, संसार पवित्र और सुन्दर हो गया है।

नैना को भी धर्म के पाखण्ड से चिढ़ थी। अमरकान्त उससे इस विषय पर अकसर बातें किया करता था। अछूतों पर यह अत्याचार देखकर उसका खून भी खौल उठा था। समरकान्त का भय न होता, तो उसने ब्रह्मचारीजी को फटकार बताई होती, इसलिए जब शान्तिकुमार ने तिलकधारियों को आड़े हाथों लिया, तो उसकी आत्मा जैसे मुग्ध होकर उनके चरणों पर लोटने लगी। अमरकान्त से उनका बखान कितनी ही बार सुन चुकी थी। इस समय उनके

घण्टा पहले इन अछूतों से घृणा करता था, इस समय उन अर्थियों पर फूलों वर्षा कर रहा था। बलिदान मे कितनी शक्ति है!

और सुखदा? वह तो विजय की देवी थी। पग-पग पर उसके नाम जय-जयकार होती थी। कहीं फूलों की वर्षा होती थी, कहीं मेवे की, कहीं रु की। घड़ी-भर पहले वह नगर मे नगण्य थी। इस समय वह नगर की रा थी। इतना यश बिरले ही पाते हैं। उसे इस समय वास्तव में दोनों तरफ ऊँचे मकान कुछ नीचे, और सड़क के दोनों ओर खड़े होनेवाले मनुष्य कुछ छो मालूम होते थे; पर इतनी नम्रता, इतनी विनय उसमे कभी न थी। मानो यश और ऐश्वर्य के भार से उसका सिर झुका जाता हो।

इधर गंगा के तट पर चिताएँ जल रही थीं, उधर मन्दिर इस उत्स के आनन्द में दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा था, मानो वीरों की आत्मा चमक रही हों!



दूसरे दिन मन्दिर में कितना समारोह हुआ, शहर में कितनी हलच मची, कितने उत्सव मनाये गये, इसकी चर्चा करने की नहीं। सारे दिन मन्दिर में भक्तों का तांता लगा रहा। ब्र चारी आज फिर विराजमान हो गये थे, और जितनी दक्षिणा उ आज मिली, उतनी शायद उम्र भर में न मिली होगी। इससे उनके मन विद्रोह बहुत कुछ शान्त हो गया, किन्तु ऊँची जातिवाले सज्जन अब भी मं में देह बचाकर आते और नाक सिकोड़े हुए कतराकर निकल जाते थे। सु मन्दिर के द्वार पर खड़ी लोगों का स्वागत कर रही थीं। स्त्रियों से गले मिल थी, बालकों को प्यार करती थी और पुरुषों को प्रणाम करती थी।

कल की सुखदा और आज की सुखदा में कितना अन्तर हो गया है! भि [illegible] पर मार देनेवाली रमणी आज सेवा और दया की मूर्ति बनी हुई है

इन दुखियो की भक्ति, श्रद्धा और उत्साह देख-देखकर उसका हृदय पुलकित हो रहा है। किसी की देह पर साबित कपड़े नहीं है, आँखो से सूझता नहीं, दुर्बलता के मारे सीधे पाँव नहीं पड़ते, पर भक्ति में मस्त दौड़े चले आ रहे हैं, मानो ससार का राज्य मिल गया हो, जैसे ससार से दुःख, दरिद्रता का लोप हो गया हो। ऐसी सरल, निष्कपट भक्ति के प्रभाव मे सुखदा भी बही जा रही थी। प्रायः मनस्वी, कर्मशील, महत्त्वाकाक्षी प्राणियो की यही प्रकृति है। भोग करनेवाले ही वीर होते हैं।

छोटे-बड़े सभी सुखदा को पूज्य समझ रहे थे, और उनकी यह भावना सुखदा में एक गर्वमय सेवा का भाव प्रदीप्त कर रही थी। कल उसने जो कुछ किया, वह एक प्रबल आवेश में किया। उसका फल क्या होगा, इसकी उसे ज़रा भी चिन्ता न थी। ऐसे अवसरों पर हानि-लाभ का विचार मन को दुर्बल बना देता है। आज वह जो कुछ कर रही थी, उसमें उसके मन का अनुराग था, सत्भाव था। उसे अब अपनी शक्ति और क्षमता का ज्ञान हो गया है, वह नशा हो गया है, जो अपनी सुधि-बुधि भूलकर सेवा-रत हो जाता है, जैसे अपनी आत्मा को पा गई है।

अब सुखदा नगर की नेत्री है। नगर मे जाति-हित के लिए जो काम होता है, सुखदा के हाथों उसका श्रीगणेश होता है। कोई उत्सव हो, कोई परमार्थ का काम हो, कोई राष्ट्र-हित का आन्दोलन हो, सुखदा का उसमें प्रमुख भाग होता है। उसका जी चाहे या न चाहे, भक्त लोग उसे खींच ले जाते हैं। उसकी उपस्थिति किसी जलसे की सफलता की कुञ्जी है। आश्चर्य यह है, कि वह बोलने भी लगी है, और उसके भाषण मे चाहे भाषा-चातुर्य न हो, पर सच्चे उद्गार अवश्य होते हैं। शहर में कई सार्वजनिक सस्थाएँ हैं, कुछ सामाजिक, कुछ राजनैतिक, कुछ धार्मिक; सभी निर्जीव-सी पड़ी थीं। सुखदा के आते ही उनमें स्फूर्ति-सी आ गई है। मादक-वस्तु-बहिष्कार-सभा बरसो से बेजान पड़ी थी। न कुछ प्रचार होता था, न कोई सगठन। उसका मन्त्री एक दिन सुखदा को खींच ले गया। दूसरे ही दिन उस सभा की एक भजन-मण्डली बन गई, कई उपदेशक निकल आये, कई महिलायें घर-घर प्रचार करने के लिए तैयार हो गईं, और महल्ले-महल्ले पंचायतें बनने लगीं। एक नये जीवन की सृष्टि हो गई।

घण्टा पहले इन अछूतों से घृणा करता था, इस समय उन अर्थियों पर फूलों की वर्षा कर रहा था। बलिदान में कितनी शक्ति है!

और सुखदा? वह तो विजय की देवी थी। पग-पग पर उसके नाम की जय-जयकार होती थी। कहीं फूलों की वर्षा होती थी, कहीं मेवे की, कहीं रुपये की। घड़ी-भर पहले वह नगर में नगण्य थी। इस समय वह नगर की रानी थी। इतना यश बिरले ही पाते हैं। उसे इस समय वास्तव में दोनों तरफ के ऊँचे मकान कुछ नीचे, और सड़क के दोनों ओर खड़े होनेवाले मनुष्य कुछ छोटे मालूम होते थे; पर इतनी नम्रता, इतनी विनय उसमें कभी न थी। मानो इस यश और ऐश्वर्य के भार से उसका सिर झुका जाता हो।

इधर गंगा के तट पर चिताएँ जल रही थीं, उधर मन्दिर इस उत्सव के आनन्द में दीपकों के प्रकाश से जगमगा रहा था, मानो वीरों की आत्माएँ चमक रही हों!





सारे दिन मन्दिर में कितना समारोह हुआ, शहर में कितनी हलचल मची, कितने उत्सव मनाये गये, इसकी चरचा करने की ज़रूरत नहीं। सारे दिन मन्दिर में भक्तों का ताँता लगा रहा। ब्रह्मचारी आज फिर विराजमान हो गये थे, और जितनी दक्षिणा उन्हें आज मिली, उतनी शायद उम्र भर में न मिली होगी। इससे उनके मन का विद्रोह बहुत कुछ शान्त हो गया, किन्तु ऊँची जातिवाले सज्जन अब भी मन्दिर में देह बचाकर आते और नाक सिकोड़े हुए कतराकर निकल जाते थे। सुखदा मन्दिर के द्वार पर खड़ी लोगों का स्वागत कर रही थी। स्त्रियों से गले मिलती थी, बालकों को प्यार करती थी और पुरुषों का सत्कार करती थी।

कल की सुखदा और आज की सुखदा में कितना अन्तर हो गया है! भौंहों पर मारा देनेवाली रमणी आज सेवा और दया की मूर्ति बनी हुई है।

इन दुखियों की भक्ति, श्रद्धा और उत्साह देख-देखकर उसका हृदय पुलकित हो रहा है। किसी की देह पर साबित कपड़े नहीं हैं, आँखों से सूझता नहीं, दुर्बलता के मारे सीधे पाँव नहीं पड़ते; पर भक्ति में मस्त दौड़े चले आ रहे हैं, मानो संसार का राज्य मिल गया हो, जैसे संसार से दुःख, दरिद्रता का लोप हो गया हो। ऐसी सरल, निष्कपट भक्ति के प्रभाव में सुखदा भी बही जा रही थी। प्रायः मनस्वी, कर्मशील, महत्त्वाकांक्षी प्राणियों की यही प्रकृति है। भोग करनेवाले ही वीर होते हैं।

छोटे-बड़े सभी सुखदा को पूज्य समझ रहे थे, और उनकी यह भावना सुखदा में एक गर्वमय सेवा का भाव प्रदीप्त कर रही थी। कल उसने जो कुछ किया, वह एक प्रबल आवेश में किया। उसका फल क्या होगा, इसकी उसे ज़रा भी चिन्ता न थी। ऐसे अवसरों पर हानि-लाभ का विचार मन को दुर्बल बना देता है। आज वह जो कुछ कर रही थी, उसमें उसके मन का अनुराग था, सत्‌भाव था। उसे अब अपनी शक्ति और क्षमता का ज्ञान हो गया है, वह नशा हो गया है, जो अपनी सुधि-बुधि भूलकर सेवा-रत हो जाता है, जैसे अपनी आत्मा को पा गई है।

अब सुखदा नगर की नेत्री है। नगर में जाति-हित के लिए जो काम होता है, सुखदा के हाथों उसका श्रीगणेश होता है। कोई उत्सव हो, कोई परमार्थ का काम हो, कोई राष्ट्र-हित का आन्दोलन हो, सुखदा का उसमें प्रमुख भाग होता है। उसका जी चाहे या न चाहे, भक्त लोग उसे खींच ले जाते हैं। उसकी उपस्थिति किसी जलसे की सफलता की कुञ्जी है। आश्चर्य यह है, कि वह बोलने भी लगी है, और उसके भाषण में चाहे भाषा-चातुर्य न हो, पर सच्चे उद्‌गार अवश्य होते हैं। शहर में कई सार्वजनिक संस्थाएँ हैं, कुछ सामाजिक, कुछ राजनैतिक, कुछ धार्मिक; सभी निर्जीव-सी पड़ी थीं। सुखदा के आते ही उनमें स्फूर्ति-सी आ गई है। मादक वस्तु-बहिष्कार-सभा बरसों से बेजान पड़ी थी। न कुछ प्रचार होता था, न कोई संगठन। उसका मन्त्री एक दिन सुखदा को खींच ले गया। दूसरे ही दिन उस सभा की एक भजन-मण्डली बन गई, कई उपदेशक निकल आये, कई महिलायें घर-घर प्रचार करने के लिए तैयार हो गईं, और महल्ले-महल्ले पंचायतें बनने लगीं। एक नये जीवन की सृष्टि हो गई।

अब सुखदा को गरीबों की दुर्दशा का यथार्थ रूप देखने के अवसर मिल लगे। अब तक इस विषय मे उसे जो कुछ ज्ञान था, वह सुनी-सुनाई बा पर आधारित था। आँखों से देखकर उसे ज्ञात हुआ, देखने और सुनने में ब अन्तर है। शहर की उन अँधेरी, तंग गलियो में, जहाँ वायु और प्रकाश कभी गुजर ही न होता था, जहाँ की जमीन ही नहीं, दीवारें भी सिली रह थीं, जहाँ दुर्गन्ध के मारे नाक फटती थी, भारत की कमाऊ सन्तान रोग अ दरिद्रता के पैरों-तले दबी हुई अपने क्षीण जीवन को मृत्यु के हाथों से छीनने प्राण दे रही थी। उसे अब मालूम हुआ कि अमरकान्त को धन और विल से जो विरोध था, वह कितना यथार्थ था। उसे खुद अब उस मकान में रह अच्छे वस्त्र पहनते, अच्छे-अच्छे पदार्थ खाते ग्लानि होती थी। नौकरों से क लेना उसने छोड़ दिया। अपनी धोती खुद छाँटती, घर में झाड़ू खुद लगाती वह जो आठ बजे सोकर उठती थी, अब मुँह अँधेरे उठती, और घर के का काज मे लग जाती। नैना तो अब उसकी पूजा-सी करती थी। लालाजी अ घर की यह दशा देख-देख कुढ़ते थे, पर करते क्या! सुखदा का तो अब नि दरबार-सा लगा रहता था। बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े विद्वान् आते रहते थे इसलिए वह अब बहू से कुछ दबते थे। गृहस्थी के जंजाल से अब उनका म ऊबने लगा था। जिस घर में उनसे किसी को सहानुभूति न हो, उस घर कैसे अनुराग होता। जहाँ अपने विचारों का राज हो, वही अपना घर है जो अपने विचारों को मानते हों, वही अपने सगे हैं। यह घर अब उन लिए सराय-मात्र था। सुखदा या नैना, दोनो ही से कुछ कहते उन्हें लगता था।

एक दिन सुखदा ने नैना से कहा—बीबी, अब तो इस घर में रहने को नहीं चाहता। लोग कहते होंगे, आप तो महल में रहती हैं, और हमें उनसे करती हैं। महीनों दौड़ते हो गये, सब कुछ करके हार गईं; पर नशेबाज़ों कुछ भी असर न हुआ। हमारी बातों पर कोई कान ही नहीं देता। अधिक तो लोग अपनी मुसीबतों को भूल जाने ही के लिए नशे करते हैं वह हम क्यों सुनने लगे। हमारा असर तभी होगा, जब हम भी उन्हीं की तरह रहें।

कई दिनों से सर्दी चमक गई थी। कुछ वर्षा हो गई थी, और पूस

ठण्डी हवा आर्द्र होकर आकाश को कुहरे से आच्छन्न कर रही थी। कहीं-कहीं पाला भी पड़ गया था। लल्लू बाहर जाकर खेलना चाहता था—वह अब लटपटाता हुआ चलने लगा था—पर नैना उसे ठण्ढ के भय से रोके हुए थी। उसके सिर पर ऊनी कनटोप बाँधती हुई बोली—यह तो ठीक है; पर उनकी तरह रहना हमारे लिए साध्य भी है, यह देखना है। मैं तो शायद एक ही महीने में मर जाऊँ।

सुखदा ने जैसे मन-ही-मन निश्चय करके कहा—मैं तो सोच रही हूँ, किसी गली में छोटा-सा घर लेकर रहूँ—इसका कनटोप उतारकर छोड़ क्यों नहीं देतीं। बच्चों को गमलों के पौधे बनाने की जरूरत नहीं, जिन्हें लू का एक झोंका भी सुखा सकता है। इन्हें तो जङ्गल के वृक्ष बनाना चाहिये, जो धूप और वर्षा, ओले और पाले किसी की परवा नहीं करते।

नैना ने मुसकिराकर कहा—शुरू से तो इस तरह रखा नहीं, अब बेचारे की साँसत करने चली हो। कहीं ठण्ड-वण्ड लग जाय, तो लेने के देने पड़ें।

'अच्छा भई, जैसे चाहो रखो, मुझे क्या करना है।'

'क्यों, हमें अपने साथ उस छोटे से घर में न रखोगी?'

'जिसका लड़का है, वह जैसे चाहे रखे। मैं कौन होती हूँ।'

'अगर भैया के सामने तुम इस तरह रहतीं, तो तुम्हारे चरण धो-धोकर पीते।'

सुखदा ने अभिमान के स्वर में कहा—मैं तो जो तब थी, वही अब भी हूँ। जब दादाजी से बिगड़कर उन्होंने अलग घर ले लिया था, तो क्या मैंने उनका साथ न दिया था। वह मुझे विलासिनी समझते थे, पर मैं कभी विलास की लौंडी नहीं रही। हाँ, मैं दादाजी को रुष्ट नहीं करना चाहती थी। यही बुराई मुझमें थी। मैं अब भी अलग रहूँगी, तो उनकी आज्ञा से। तुम देख लेना, मैं इस ढंग से यह प्रश्न उठाऊँगी कि वह बिलकुल आपत्ति न करेंगे। चलो ज़रा डॉक्टर शान्तिकुमार को देख आवें। मुझे तो इधर जाने का अवकाश ही नहीं मिला।

नैना प्रायः एक बार रोज शान्तिकुमार को देख आती थी, हाँ सुखदा कुछ कहती न थी। वह अब उठने-बैठने लगे थे; पर अभी इतने दुर्बल

थे, कि लाठी के सहारे बगैर एक पग भी न चल सकते थे। चोटें इ खाईं—छः महीने से शय्या-सेवन कर रहे थे—और यश सुखदा ने लूटा। दुःख उन्हें और घुलाये डालता था। यद्यपि उन्होंने अंतरंग मित्रों से भी अपनी मनोव्यथा नहीं कही, पर यह काँटा खटकता अवश्य था। अगर सु स्त्री न होती और वह भी प्रिय शिष्य और मित्र की तो कदाचित् वह शहर छो कर भाग जाते। सबसे बड़ा अनर्थ यह था कि इन छः महीनों में सुखदा दो-चार से ज़्यादा इन्हें देखने न गई थी। वह भी अमरकान्त के मित्र थे और नाते से सुखदा को उन पर विशेष श्रद्धा न थी।

नैना को सुखदा के साथ जाने में कोई आपत्ति न हुई। रेणुकाबा कुछ दिनों से मोटर रख लिया था, पर वह रहता था सुखदा ही की सवारी दोनो उस पर बैठकर चलीं। लल्लू भला क्यों अकेले रहने लगा था। नैन उसे भी ले लिया।

सुखदा ने कुछ दूर जाने के बाद कहा—यह सब अमीरों के चोंचले हैं। चाहूँ तो दो-तीन आने में अपना निर्वाह कर सकती हूँ।

नैना ने विनोद-भाव से कहा—पहले करके दिखा दो, तो मुझे विश आये। मैं तो नहीं कर सकती।

'जब तक इस घर में रहूँगी मैं भी न कर सकूँगी। इसी लिए तो मैं अ रहना चाहती हूँ।'

'लेकिन साथ तो किसी को रखना ही पड़ेगा?'

'मैं कोई ज़रूरत नहीं समझती। इसी शहर में हज़ारों औरतें अ रहती हैं। फिर मेरे लिए क्या मुश्किल है। मेरी रक्षा करनेवाले बहुत मैं ख़ुद अपनी रक्षा कर सकती हूँ। (मुसकिराकर) हाँ, ख़ुद किसी पर लगूँ, तो दूसरी बात है।'

शान्तिकुमार सिर से पाँव तक कम्बल लपेटे, अँगीठी जलाये, कुरसी पर एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पुस्तक पढ रहे थे। वह कैसे जल्द से जल्द भले चं जायँ, आज-कल उन्हें यही चिन्ता रहती थी। दोनो रमणियों के आने का स चार पाते ही किताब रख दी और कम्बल उतारकर रख दिया। अँगीठी ना चाहते थे; पर इसका अवसर न मिला। दोनो ज्योंही कमरे में

उन्हे प्रणाम करके कुरसियों पर बैठने का इशारा करते हुए बोले—मुझे आप लोगों पर ईर्ष्या हो रही है। आप इस शीत मे घूम-फिर रही है और मैं अँगीठी जलाये पड़ा हूँ। करूँ क्या, उठा ही नही जाता। जिन्दगी के ६ महीने मानो कट गये, बल्कि आधी उम्र कहिये। मैं अच्छा होकर भी आधा हो रहूँगा। कितनी लज्जा आती है, कि देवियाँ बाहर निकलकर काम करे और मैं कोठरी मे बन्द पडा रहूँ।

सुखदा ने जैसे आँसू पोंछते हुए कहा—आपने इस नगर में जितनी जाग्रति फैला दी, उस हिसाब से तो आपकी उम्र चौगुनी हो गई। मुझे तो बैठे-बैठाये यश मिल गया।

शान्तिकुमार के पीले मुख पर आत्मगौरव की आभा झलक पडी। सुखदा के मुँह से यह सनद पाकर, मानो उनका जीवन सफल हो गया। बोले—यह आपकी उदारता है। आपने जो कुछ कर दिखाया और कर रही हैं, वह आप ही कर सकती हैं। अमरकान्त आवेंगे, तो उन्हे मालूम होगा, कि अब उनके लिए यहाँ स्थान नहीं है। यहाँ साल भर में जो कुछ हो गया, इसकी वह स्वप्न में भी कल्पना न कर सकते थे। यहाँ सेवाश्रम में लडकों की संख्या बडी तेज़ी से बढ रही है। अगर यही हाल रहा, तो कोई दूसरी जगह लेनी पड़ेगी। अध्यापक कहाँ से आवेंगे, कह नहीं सकता। सभ्य समाज की यह उदासीनता देखकर मुझे तो कभी-कभी बड़ी चिन्ता होने लगती है। जिसे देखिये स्वार्थ में मगन है। जो जितना ही महान् है, उसका स्वार्थ भी उतना ही महान् है। योरप की डेढ सौ साल तक उपासना करके हमें यही वरदान मिला है; लेकिन यह सब होने पर भी हमारा भविष्य उज्ज्वल है। मुझे इसमें सन्देह नहीं। भारत की आत्मा अभी जीवित है और मुझे विश्वास है, कि वह समय आने मे देर नहीं है, जब हम सेवा और त्याग के पुराने आदर्श पर लौट आवेंगे। तब धन हमारे जीवन का ध्येय न होगा। तब हमारा मूल्य धन के काँटे पर न तौला जायगा।

लल्लू ने कुरसी पर चढकर मेज़ पर से दवात उठा ली थी और अपने मुँह पर कालिमा पोत-पोतकर खुश हो रहा था। नैना ने दौडकर उसके हाथ से दवात छीन ली और एक धौल जमा दिया। शान्तिकुमार ने उठने की अस-

फल चेष्टा करके कहा—क्यों मारती है नैना, देखो तो कितना महान् पुरुष है, अपने मुँह में कालिमा पोतकर भी प्रसन्न होता है, नहीं तो हम अपनी कालिमा को सात परदों के अन्दर छिपाते हैं।

नैना ने बालक को उनकी गोद में देते हुए कहा—तो लीजिये इस महापुरुष को आप ही। इसके मारे चैन से बैठना मुशकिल है।

शान्तिकुमार ने बालक को छाती से लगा लिया। उस गर्म और गुदगुदे स्पर्श में उनकी आत्मा ने जिस परितृप्ति और माधुर्य का अनुभव किया, वह उनके जीवन में बिलकुल नया था। अमरकान्त से उन्हें जितना स्नेह था, वह जैसे इस छोटे से रूप में सिमटकर और ठोस और भारी हो गया था। अमर की याद करके उनकी आँखें सजल हो गईं। अमर ने अपने को कितने अतुल आनन्द से वंचित कर रखा है, इसका अनुमान करके वह जैसे दब गये। आज उन्हें स्वयं अपने जीवन में एक अभाव का, एक रिक्तता का आभास हुआ। जिन कामनाओं का वह अपने विचार में सम्पूर्णतः दमन कर चुके थे, वह राख में छिपी हुई चिनगारियों की भाँति सजीव हो गईं।

लल्लू ने हाथों की स्याही शान्तिकुमार के मुख में पोतकर नीचे उतरने के लिए आग्रह किया, मानो इसीलिए वह उनकी गोद में गया था। नैना ने हँसकर कहा—ज़रा अपना मुँह तो देखिये डाक्टर साहब! इस महान् पुरुष ने आपके साथ होली खेल डाली। बड़ा बदमाश है।

सुखदा भी हँसी को रोक न सकी। शान्तिकुमार ने शीशे में मुँह देखा, तो वह भी ज़ोर से हँसे। वह कलंक का टीका उन्हें इस समय यश के तिलक से भी कहीं उल्लास-मय जान पड़ा।

सहसा सुखदा ने पूछा—आपने शादी क्यों नहीं की डाक्टर साहब?

शान्तिकुमार सेवा और व्रत का जो आधार बनाकर अपने जीवन का निर्माण कर रहे थे, वह इस शय्या-सेवन के दिनों में कुछ नीचे खिसकता हुआ जान पड़ रहा था। जिसे उन्होंने जीवन का मूल सत्य समझा था, वह अब उतना दृढ़ न रह गया था। इस आपत्काल में ऐसे कितने ही अवसर आये, जब उन्हें अपना जीवन भार-सा मालूम हुआ। तीमारदारों की कमी न थी। आठों पहर दो-चार आदमी घेरे ही रहते थे। नगर के बड़े-बड़े नेताओं का आना

जाना भी बराबर होता रहता था ; पर शान्तिकुमार को ऐसा जान पड़ता था, कि वह दूसरों की दया वा शिष्टता पर बोझ हो रहे हैं। इन सेवाओं में वह माधुर्य, वह कोमलता न थी, जिससे आत्मा की तृप्ति होती। भिक्षुक को क्या अधिकार है कि वह किसी के दान का निरादर करे। दान-स्वरूप उसे जो कुछ मिल जाय, वह सभी स्वीकार करना होगा। इन दिनों उन्हें कितनी ही बार अपनी माता की याद आई थी। वह स्नेह कितना दुर्लभ था। नैना जो एक क्षण के लिए उनका हाल पूछने आ जाती थी, इसमें उन्हें न-जाने क्यों एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव होता था। वह जब तक रहती थी, उनकी व्यथा जाने कहाँ छिप जाती थी। उसके जाते ही फिर वही कराहना; वही बेचैनी। उनकी समझ में कदाचित् यह नैना का सरल अनुराग ही था, जिसने उन्हें मौत के मुँह से निकाल लिया, लेकिन वह स्वर्ग की देवी! कुछ नहीं।

सुखदा का यह प्रश्न सुनकर, मुसकिराते हुए बोले—इसी लिए कि विवाह करके किसी को सुखी नहीं देखा।

सुखदा ने समझा यह उस पर चोट है। बोली—दोष भी बराबर स्त्रियों का ही देखा होगा, क्यों?

शान्तिकुमार ने जैसे अपना सिर पत्थर से बचाया—यह तो मैंने नहीं कहा। शायद इसकी उलटी बात हो। शायद नहीं, बल्कि उलटी है।

'खैर इतना तो आपने स्वीकार किया, धन्यवाद। इससे तो यही सिद्ध हुआ कि पुरुष चाहे तो विवाह करके सुखी हो सकता है।'

'लेकिन पुरुष में थोड़ी-सी पशुता होती है, जिसे वह इरादा करके भी हटा नहीं सकता। वही पशुता उसे पुरुष बनाती है। विकास के क्रम में वह स्त्री से पीछे है। जिस दिन वह पूर्ण विकास को पहुँचेगा, वह भी स्त्री हो जायगा। वात्सल्य, स्नेह, कोमलता, दया इन्हीं आधारों पर यह सृष्टि थमी हुई है, और यह स्त्रियों के गुण हैं। अगर स्त्री इतना समझ ले, तो फिर दोनों का जीवन सुखी हो जाय। स्त्री पशु के साथ पशु हो जाती है, जभी दोनों दुखी होते हैं।'

सुखदा ने उपहास के स्वर में कहा—इस समय तो आपने सचमुच एक आविष्कार कर डाला। मैं तो हमेशा यह सुनती आती हूँ, कि स्त्री मूर्ख है,

ताडना के योग्य है, पुरुषों के गले का बन्धन है और जाने क्या-क्या। इधर से भी मरदों की जीत, उधर से भी मरदों की जीत। अगर पुरुष नीचे है, तो उसे स्त्रियों का शासन क्यों अप्रिय लगे? परीक्षा करके देखा तो होता। आप तो दूर से ही डर गये!'

शान्तिकुमार ने कुछ झेंपते हुए कहा—अब अगर चाहूँ भी, तो बूढ़ों को कौन पूछता है।

'अच्छा! आप बूढ़े भी हो गये? तो किसी अपनी-जैसी बुढ़िया से कर लीजिये न?'

'जब तुम-जैसी विचारशील और अमर-जैसे गम्भीर स्त्री-पुरुष में न बनी, तो फिर मुझे किसी तरह की परीक्षा करने की ज़रूरत नहीं रही। अमर-जैसा विनय और त्याग मुझमें नहीं है, और तुम-जैसी उदार और...,

सुखदा ने बात काटी—मैं उदार नहीं हूँ, न विचारशील हूँ। हाँ, पुरुष के प्रति अपना धर्म समझती हूँ। आप मुझसे बड़े हैं, और मुझसे कहीं बुद्धिमान् हैं। मैं आपको अपने बड़े भाई के तुल्य समझती हूँ। आज आपका स्नेह और सौजन्य देखकर मेरे चित्त को बड़ी शान्ति मिली। मैं आपसे बेगर्ज़ होकर पूछती हूँ, ऐसे पुरुष को, जो स्त्री के प्रति अपना धर्म न समझे, क्या अधिकार है कि वह स्त्री से व्रतधारिणी रहने की आशा रखे? आप सत्यवादी हैं। मैं आपसे पूछती हूँ, यदि मैं उस व्यवहार का बदला उसी व्यवहार से दूँ, तो आप मुझे क्षम्य समझेंगे?

शान्तिकुमार ने निश्शंक भाव से कहा—नहीं!

'उन्हें आपने क्षम्य समझ लिया?'

'नहीं!'

'और यह समझकर भी आपने उनसे कुछ नहीं कहा? कभी एक पत्र भी नहीं लिखा? मैं पूछती हूँ इस उदासीनता का क्या कारण है? यही न कि इस अवसर पर एक नारी का अपमान हुआ है। यदि वही कृत्य मुझसे हुआ होता, तब भी आप इतने ही उदासीन रह सकते? बोलिये।'

शान्तिकुमार रो पड़े। नारी-हृदय की संचित व्यथा आज इस भीषण विद्रोह

सुखदा उसी आवेश में बोली—कहते है आदमी की पहचान उसकी सगति से होती है। जिसकी संगत आप और मुहम्मद सलीम और स्वामी आत्मानन्द जैसे महानुभावों की हो, वह अपने धर्म को इतना भूल जाय, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। मैं यह नहीं कहती कि मै निर्दोष हूँ। कोई स्त्री यह दावा नहीं कर सकती, और न कोई पुरुष ही यह दावा कर सकता है। मैंने सकीना से मुलाक़ात की है। सभव है उसमें वह गुण हों, जो मुझमें नहीं हैं। वह ज्यादा मधुर है, उसके स्वभाव में कोमलता है, हो सकता है, वह प्रेम भी अधिक कर सकती हो; लेकिन यदि इसी तरह सभी पुरुष और स्त्रियाँ तुलना करने बैठ जायँ तो संसार की क्या गति होगी ! फिर तो यहाँ रक्त और आँसुओं की नदियों के सिवा और न दिखाई देगा।

शान्तिकुमार ने परास्त होकर कहा—मैं अपनी ग़लती को मानता हूँ सुखदा देवी। मैं तुम्हें न जानता था और इस भ्रम मे था, कि तुम्हारी ज्यादती है। मैं आज ही अमर को पत्र......

सुखदा ने फिर बात काटी—नहीं, मै आपसे यह प्रेरणा करने नहीं आई हूँ, और न यह चाहती हूँ कि आप उनसे मेरी ओर से दया की भिक्षा माँगे। यदि वह मुझसे दूर भागना चाहते हैं, तो मैं भी उनको बाँधकर नहीं रखना चाहती। पुरुष को जो आज़ादी मिली है, वह उसे मुबारक रहे; वह अपना तन-मन गली-गली बेचता फिरे। मैं अपने बंधन में प्रसन्न हूँ। और ईश्वर से यही विनती करती हूँ, कि वह इस बंधन मे मुझे डाले रखे। मैं जलन या ईर्ष्या से विचलित हो जाऊँ, उस दिन के पहले वह मेरा अंत कर दे। मुझे आपसे मिलकर आज जो तृप्ति हुई, उसका प्रमाण यही है, कि मैं आपसे वह बातें कह गई, जो मैने अभी अपनी माता से भी नहीं कहीं। बीबी आपका जितना बखान करती थीं, उससे ज्यादा सज्जनता आपमें पाई; मगर आपको मैं अकेला न रहने दूँगी। ईश्वर वह दिन लाये कि मै इस घर मे भाभी के दर्शन करूँ।

जब दोनो रमणियाँ यहाँ से चलीं, तो डाक्टर साहब लाठी टेकते हुए फाटक तक उन्हे पहुँचाने आये और फिर कमरे मे आकर लेटे, तो ऐसा जान पड़ा कि उनका यौवन जाग उठा है। सुखदा के वेदना से भरे हुए शब्द उनके

सुखदा का जीवन इतना त्यागमय हो जायगा। मुझे इस अज्ञान ने क
न रखा। जी मे आता है, आकर सुखदा से अपने अपराध क्षमा कराऊँ
कौन-सा मुँह लेकर आऊँ। मेरे सामने अन्धकार है, अभेद्य अन्धकार है।
नहीं सूझता। मेरा सारा आत्म-विश्वास नष्ट हो गया है। ऐसा ज्ञात हो
कोई अदेख शक्ति मुझे खिला-खिलाकर कुचल डालना चाहती है। मैं
की भाँति काँटे में फँसा हुआ हूँ। काँटा मेरे कण्ठ में चुभ गया है।
हाथ मुझे खींच लेता है, खिंचा चला जाता हूँ। फिर डोर ढीली हो
और मैं भागता हूँ। अब जान पड़ा कि मनुष्य विधि के हाथ का
है। इसलिए अब उसकी निर्दय क्रीडा की शिकायत नहीं करूँगा। क
कुछ नहीं जानता; किधर जा रहा हूँ, कुछ नहीं जानता। अब जीवन में
भविष्य नहीं है। भविष्य पर विश्वास नहीं रहा। इरादे झूठे साबित
कल्पनाएँ मिथ्या निकलीं। मैं आपसे सत्य कहता हूँ; सुखदा मुझे नच
है। उस मायाविनी के हाथों में मैं कठपुतली बना हुआ हूँ। पहले एक
दिखाकर उसने मुझे भयभीत कर दिया और अब दूसरा रूप दिखाकर मुझे
स्त कर रही है। कौन उसका वास्तविक रूप है, नहीं जानता। सकीना
रूप देखा था, वह भी उसका सच्चा रूप था, नहीं कह सकता। मैं अप
विषय में कुछ नहीं जानता। आज क्या हूँ, कल क्या हो जाऊँगा कुछ
जानता। अतीत दुःखदायी है, भविष्य स्वप्न है। मेरे लिए केवल वर्तमा

आपने अपने विषय में मुझसे जो सलाह पूछी है, उसका मैं क्या
दूँ। आप मुझसे कहीं बुद्धिमान हैं। मेरा तो विचार है कि सेवा मनु
को जाति से गुज़ारा—केवल गुज़ारा—लेने का अधिकार है। यदि व
स्वार्थ को मिटा सके, तो और भी अच्छा।'

शान्तिकुमार ने असन्तोष के भाव से पत्र को मेज़ पर रख दिया।
विषय पर उन्होंने विशेष रूप में राय पूछी थी, उसे केवल दो श
उड़ा दिया।

सहसा उन्होंने सलीम से पूछा—तुम्हारे पास भी कोई खत आया है?

'जी हाँ, इसके साथ ही आया था।'

'कुछ मेरे बारे में लिखा था?'

रेणुका ने डाक्टर साहब की ओर देखकर कहा—सुना आपने बाबूजी ? यह इसी तरह रोज़ जलाया करती है। कितनी बार कहा कि चल हम दोनों वहाँ से पकड़ लावें। देखें कैसे नहीं आता। जवानी की उम्र में थोड़ी-त नादानी सभी करते है; मगर यह न ख़ुद मेरे साथ चलती है, न मुझे ले जाने देती है। भैया, एक दिन भी ऐसा नहीं जाता कि बग़ैर रोये मुँह मे जाता हो। तुम क्यों नहीं चले जाते भैया। तुम उसके गुरु हो, तुम्हारा व करता है। तुम्हारा कहना वह नहीं टाल सकता।

सुखदा ने मुसकिराकर कहा—हाँ, यह तो तुम्हारे कहने से आज ही चले गे। यह तो और ख़ुश होते होंगे, कि शिष्यों मे एक तो ऐसा निकला, इनके आदर्श का पालन कर रहा है। विवाह को यह लोग समाज का कलंक मते हैं। इनके पंथ में पहले तो किसी को विवाह करना ही न चाहिए, अगर दिल न माने, तो किसी को रख लेना चाहिये। इनके दूसरे शिष्य सलीम हैं। हमारे बाबूसाहब तो न जाने किस दबाव मे पड़कर विवाह बैठे। अब उसका प्रायश्चित्त कर रहे हैं।

शान्तिकुमार ने झेंपते हुए कहा—देवीजी, आप मुझपर मिथ्यारोप कर रही अपने विषय मे मैंने अवश्य यही निश्चय किया है, कि एकान्त जीवन तेत करूँगा; इसलिए कि आदि से ही सेवा का आदर्श मेरे सामने था।

सुखदा ने पूछा—क्या विवाहित जीवन में सेवा-धर्म का पालन असम्भव या स्त्री इतनी स्वार्थान्ध होती है, कि आपके कामों मे बाधा डाले बिना ही नहीं सकती? गृहस्थ जितनी सेवा कर सकता है, उतनी एकान्तजीवी भी नहीं कर सकता, क्योंकि वह जीवन के कष्टों का अनुभव नहीं कर सकता।

शान्तिकुमार ने विवाह से बचने की चेष्टा करके कहा—यह तो झगड़े का षय है देवीजी, और तय नहीं हो सकता। मुझे आपसे एक विषय मे सलाह नी है। आपकी माताजी भी हैं, यह और भी शुभ है। मैं सोच रहा हूँ, यों न नौकरी से इस्तीफा देकर सेवाश्रम का काम करूँ?

सुखदा ने इस भाव से कहा, मानो यह प्रश्न करने की बात ही नहीं—गर आप सोचते हैं, आप बिना किसी के सामने हाथ फैलाये अपना निर्वाह कर कते हैं, तो जरूर इस्तीफा दे दीजिये, यों तो काम करनेवाले का भार संस्था

पर होता है ; लेकिन इससे भी अच्छी बात यह है, उसकी सेवा में स्वार्थ का लेश भी न हो।

शान्तिकुमार ने जिस तर्क से अपना चित्त शान्त किया था, वह यहाँ फिर जवाब दे गया। फिर उसी उधेड़-बुन में पड़ गये।

सहसा रेणुका ने कहा—आपके आश्रम में कोई कोष भी है ?

आश्रम में अब तक कोई कोष न था। चन्दा इतना न मिलता था कि कुछ बचत हो सकती। शान्तिकुमार ने इस अभाव को मानो अपने ऊपर एक लाञ्छन समझकर कहा—जी नहीं, अभी तक तो कोष नहीं बन सका ; पर मैं युनिवर्सिटी से छुट्टी पा जाऊँ, तो इसके लिए उद्योग करूँ।

रेणुका ने पूछा—कितने रुपए हों, तो आपका आश्रम चलने लगे ?

शान्तिकुमार ने आशा की स्फूर्ति का अनुभव करके कहा—आश्रम तो एक युनिवर्सिटी भी बन सकता है, लेकिन मुझे तीन-चार लाख रुपए मिल जायँ, तो मैं उतना ही काम कर सकता हूँ, जितना युनिवर्सिटी में बीस लाख में भी नहीं हो सकता।

रेणुका ने मुसकिराकर कहा—अगर आप कोई ट्रस्ट बना सकें, तो मैं आपकी कुछ सहायता कर सकती हूँ। बात यह है कि जिस सम्पत्ति को अब तक संचित करती आती थी, उसका अब कोई भोगनेवाला नहीं है। अमर का हाल आप देख ही चुके। सुखदा भी उसी रास्ते पर जा रही है। तो फिर मैं भी अपने लिए कोई रास्ता निकालना चाहती हूँ। मुझे आप गुज़ारे के लिए सौ रुपए महीना ट्रस्ट से दिला दीजियेगा। मेरे जानवरों के खिलाने-पिलाने का भार ट्रस्ट पर होगा।

शान्तिकुमार ने डरते-डरते कहा—मैं तो आपकी आज्ञा तभी स्वीकार कर सकता हूँ, जब अमर और सुखदा मुझे सहर्ष अनुमति दें। फिर बच्चे का हक भी तो है।

सुखदा ने कहा—मेरी तरफ़ से इस्तीफ़ा है। और बच्चे को दादा का क्या थोड़ा है। औरों की मैं नहीं कह सकती।

रेणुका खिन्न होकर बोली—अमर को धन की परवाह अगर है, तो औरों से कम। दौलत कोई दीपक तो है नहीं, जिससे प्रकाश फैलता रहे। जिन

उसकी ज़रूरत नहीं, उनके गले क्यों लगाई जाय। रुपए का भार कुछ कम नहीं होता। मैं ख़ुद नहीं सँभाल सकती। किसी शुभ कार्य में लग जाय, यह कहीं अच्छा। लाला समरकान्त तो मन्दिर और शिवाले की राय देते हैं; पर मेरा जी उधर नहीं जाता। मन्दिर तो यों ही इतने हो रहे हैं, कि पूजा करनेवाले नहीं मिलते। शिक्षा-दान महादान है और वह भी उन लोगों में, जिनका समाज ने हमेशा बहिष्कार किया हो। मैं कई दिन से सोच रही हूँ, और आपसे मिलनेवाली थी। अभी मैं दो-चार महीने और दुविधे में पड़ी रहती; पर आपके आ जाने से मेरी दुविधाएँ मिट गईं। धन देनेवालों की कमी नहीं है। लेनेवालों की कमी है। आदमी यही चाहता है, कि धन सुपात्रों को दे, जो दाता की इच्छानुसार उसे ख़र्च करें; यह नहीं कि मुफ़्त का धन पाकर उड़ाना शुरू कर दें। दिखाने को दाता के इच्छानुसार थोड़ा-बहुत ख़र्च कर दिया। बाक़ी किसी-न-किसी बहाने से घर में रख लिया।

यह कहते हुए उसने मुसकिराकर शान्तिकुमार से पूछा—आप तो धोखा न देंगे?

शान्तिकुमार को यह प्रश्न, हँसकर पूछे जाने पर भी, बुरा मालूम हुआ—मेरी नीयत क्या होगी, यह मैं ख़ुद नहीं जानता। आपको मुझ पर इतना विश्वास कर लेने का कोई कारण भी नहीं है।

सुखदा ने बात सँभाली—यह बात नहीं है डाक्टर साहब। अम्माँ ने तो हँसी की थी।

'विष मधु के साथ भी अपना असर करता है।'

'यह तो बुरा मानने की बात न थी।'

'मैं बुरा नहीं मानता। अभी दस-पाँच वर्ष मेरी परीक्षा होने दीजिये। अभी मैं इतने बड़े विश्वास के योग्य नहीं हुआ।'

रेणुका ने परास्त होकर कहा—अच्छा साहब, मैं अपना प्रश्न वापस लेती हूँ। आप कल मेरे घर आइयेगा। मैं मोटर भेज दूँगी। ट्रस्ट बनना पहला काम है। मुझे अब कुछ नहीं पूछना है। आपके ऊपर मुझे पूरा विश्वास है।

डाक्टर साहब ने धन्यवाद देते हुए कहा—मैं आपके विश्वास को बनाये रखने की चेष्टा करूँगा।

रेणुका—मैं चाहती हूँ, जल्द ही इस काम को कर डालूँ। फिर नैना का विवाह आ पड़ेगा, तो महीनों फ़ुरसत न मिलेगी।

शान्तिकुमार ने जैसे सिहरकर कहा—अच्छा, नैना देवी का विवाह होने वाला है। यह तो बड़ी शुभ सूचना है। मैं कल ही आपसे मिलकर सारी बातें तय कर लूँगा। अमर को भी सूचना दे दूँ!

सुखदा ने कठोर स्वर में कहा—कोई ज़रूरत नहीं।

रेणुका बोली—नहीं, आप उनको सूचना दे दीजिये। शायद आवें। मुझे तो आशा है ज़रूर आवेंगे।

डाक्टर साहब यहाँ से चले, तो नैना बालक को लिये मोटर से उतर रही थी।

शान्तिकुमार ने आहत कण्ठ से कहा—तुम अब चली जाओगी नैना!

नैना ने सिर झुका लिया, पर उसकी आँखें सजल थीं।



छः महीने गुज़र गये।

सेवाश्रम का ट्रस्ट बन गया। केवल स्वामी आत्मानन्दजी ने, जो आश्रम के प्रमुख कार्यकर्त्ता और एक घोर समष्टिवादी थे, इस प्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर इस्तीफ़ा दे दिया। वह आश्रम में धनिकों को नहीं घुसने देना चाहते थे; उन्होंने बहुत ज़ोर मारा कि ट्रस्ट न बनने पावे। उनकी राय में धन पर आश्रम की आत्मा का बेचना, आश्रम के लिए घातक होगा। धन ही की प्रभुता से तो हिन्दू समाज ने नीचों को अपना गुलाम बना रखा है, धन ही के कारण तो नीच-ऊँच का भेद आ गया है; उसी धन पर आश्रम की स्वाधीनता क्यों बेची जाय; लेकिन स्वामीजी की कुछ न चली और ट्रस्ट की स्थापना हो गई। उसका शिलान्यास रखा सुखदा ने। जल्से

हुआ, दावत हुई, गाना-बजाना हुआ। दूसरे दिन शान्तिकुमार ने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

सलीम की परीक्षा भी समाप्त हो गई। और उसने जो पेशीनगोई की थी, वह अक्षरशः पूरी हुई। गजट में उसका नाम सबसे नीचे था। शान्तिकुमार के विस्मय की सीमा न रही। अब उसे क़ायदे के मुताबिक़ दो साल के लिए इँगलैण्ड जाना चाहिये था; पर सलीम इँगलैण्ड न जाना चाहता था। दो-चार महीने के लिए सैर करने तो वह शौक़ से जा सकता था; पर दो साल तक वहाँ पड़े रहना उसे मंजूर न था। उसे जगह न मिलनी चाहिये थी; मगर यहाँ भी उसने कुछ ऐसी दौड़-धूप की, कुछ ऐसे हथकण्डे खेले, कि वह इस क़ायदे से मुस्तसना कर दिया गया। जब सूबे का सबसे बड़ा डाक्टर कह रहा है, कि इँगलैण्ड की ठण्डी हवा में इस युवक का दो साल रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं, तो फिर कौन इतनी बड़ी ज़िम्मेदारी लेता। हाफिज सलीम लड़के को भेजने को तैयार थे, रुपये ख़र्च करने को तैयार थे, लेकिन लड़के का स्वास्थ्य बिगड़ गया, तो वह किसका दामन पकड़ेंगे। आख़िर यहाँ भी सलीम की विजय रही। उसे उसी हलके का चार्ज भी मिला, जहाँ उसका दोस्त अमरकान्त पहले ही से मौजूद था। उस ज़िले को उसने ख़ुद पसन्द किया।

इधर सलीम के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन हो गया था। हँसोड़ तो उतना ही था; पर उतना शौक़ीन, उतना रसिक न था। शायरी से भी अब उतना प्रेम न था। विवाह से उसे जो पुरानी अरुचि थी, वह अब बिलकुल जाती रही थी। यह परिवर्तन एकाएक कैसे हो गया, हम नहीं जानते; लेकिन इधर वह कई बार सकीना के घर गया था और दोनों मे गुप्त रूप से पत्र व्यवहार भी हो रहा था। अमर के उदासीन हो जाने पर भी सकीना उसके अतीत प्रेम को कितनी एकाग्रता से हृदय में पाले हुए थी, इस अनुराग ने सलीम को परास्त कर दिया था। इस ज्योति से अब वह अपने जीवन को आलोकित करने के लिए विकल हो रहा था। अपनी मामा से सकीना के उस अपार प्रेम का वृत्तान्त सुन-सुनकर वह बहुधा रो दिया करता। उसका कवि-हृदय जो भ्रमर की भाँति नये-नये पुष्पों के रस लिया करता था, अब संयमित अनुराग से परिपूर्ण होकर उसके जीवन में एक विशाल साधना की सृष्टि कर रहा था।

नैना का विवाह भी हो गया। लाला धनीराम नगर के सबसे ध
आदमी थे। उनके जेठे पुत्र लाला मनीराम बड़े होनहार नौजवान थे। सम
कान्त को तो आशा न थी, कि यहाँ सम्बन्ध हो सकेगा; क्योंकि धनीरा
मन्दिरवाली घटना के दिन से ही इस परिवार को हेय समझने लगे थे;
समरकान्त की थैलियों ने अन्त में विजय पाई। बड़ी-बड़ी तैयारियाँ हुईं; ब
धूम-धाम से विवाह हुआ, दूर-दूर से नातेदारों की टोलियाँ आईं; लेकिन अम
कान्त न आया, और न समरकान्त ने उसे बुलाया। धनीराम ने कहला दि
था, कि अमरकान्त विवाह में सम्मिलित हुआ तो बरात द्वार से लौट आवेगी
यह बात अमरकान्त के कानों तक पहुँच गई थी। नैना न प्रसन्न थी, न दु
थी। वह न कुछ कह सकती थी, न बोल सकती थी। पिता की इच्छा
सामने वह क्या कहती। मनीराम के विषय में तरह-तरह की बातें सुनती थी-
शराबी है, व्यभिचारी है, मूर्ख है, घमण्डी है; लेकिन पिता की इच्छा के साम
सिर झुकाना उसका कर्तव्य था। अगर समरकान्त उसे किसी देवता की बलि
वेदी पर चढ़ा देते, तब भी वह मुँह न खोलती। केवल बिदाई के समय व
रोई; पर उस समय भी उसे यह ध्यान रहा कि पिताजी को दुःख न हो। सम
कान्त की आँखों में धन ही सबसे मूल्यवान् वस्तु थी। नैना को जीवन क
क्या अनुभव था। ऐसे महत्त्व के विषय में पिता का निश्चय ही उसके लि
मान्य था। उसका चित्त सशंक था; पर उसने जो कुछ अपना कर्तव्य सम
रखा था, उसका पालन करते हुए उसके प्राण भी चले जायँ तो उसे दु
न होगा।

इधर सुखदा और शान्तिकुमार का सहयोग दिन-दिन घनिष्ठ होता ज
था। धन का अभाव तो था नहीं, हरेक मुहल्ले में सेवाश्रम की शाखाएँ खु
रही थीं, और मादक वस्तुओं का बहिष्कार भी जोरों से हो रहा था। सुखदा
जीवन में अब एक कठोर तप का संचार होता जाता था। वह अब प्रातःक
संध्या और व्यायाम करती। भोजन में स्वाद से अधिक पोषकता का विच
रखती। संयम और निग्रह ही अब उसकी जीवनचर्या के प्रधान अङ्ग थे
उपन्यासों की अपेक्षा अब उसे इतिहास और दार्शनिक विषयों में अधिक आनन्द
था, और उसकी बोलने की शक्ति तो इतनी बढ़ गई थी, कि सुननेवाले

को आश्चर्य होता था। देश और समाज की दशा देखकर उसे सच्ची वेदना होती थी और यही वाणी में प्रभाव का मुख्य रहस्य है। इस सुधार के प्रोग्राम में एक बात और आ गई थी। वह थी ग़रीबों के लिए मकानों की समस्या। अब यह अनुभव हो रहा था, कि जब तक जनता के लिए मकानों की समस्या हल न होगी, सुधार का कोई प्रस्ताव सफल न होगा, मगर यह काम चन्दे का नहीं, इसे तो म्युनिसिपैलिटी ही हाथ में ले सकती थी। पर यह संस्था इतना बड़ा काम हाथ में लेते हुए भी घबराती थी। हाफ़िज़ हलीम प्रधान थे। लाला धनीराम उप-प्रधान। ऐसे दक़ियानूसी महानुभावों के मस्तिष्क में इस समस्या की आवश्यकता और महत्त्व को जमा देना कठिन था। दो-चार ऐसे सज्जन तो निकल आये थे, जो ज़मीन मिल जाने पर दो-चार लाख रुपए लगाने को तैयार थे। उनमें लाला समरकान्त भी थे। अगर चार आने सैकड़े का सूद भी निकलता आवे, तो वह सन्तुष्ट थे; मगर प्रश्न था ज़मीन कहाँ से आवे। सुखदा का कहना था, जब मिलों के लिए, स्कूलों और कॉलेजों के लिए, जमीन का प्रबन्ध हो सकता है, तो इस काम के लिए क्यों न म्युनिसिपैलिटी मुफ़्त ज़मीन दे।

सन्ध्या का समय था। शान्तिकुमार नक़शों का एक पुलिन्दा लिये हुए सुखदा के पास आये और एक एक नक़्शा खोलकर दिखाने लगे। यह उन मकानों के नक़्शे थे, जो बनवाये जायँगे, एक नक़शा आठ आने महीने के मकान का था, दूसरा एक रुपए के किराये का और तीसरा दो रुपए का। आठ आने-वाले में एक कमरा था, एक रसोई, एक बरामदा, सामने एक बैठक और छोटा-सा सहन। एक रुपयावालों में भीतर दो कमरे थे और दो रुपएवालों में तीन कमरे।

कमरों में खिड़कियाँ थीं, फ़र्श और दो फीट ऊँचाई तक दीवारें पक्की। ठाठ खपरैल का था।

दो रुपयेवालों में शौच-गृह भी थे। बाक़ी दस-दस घरों के बीच में एक शौच-गृह बनाया गया था।

सुखदा ने पूछा—आपने लागत का तख़मीना भी किया है?

'और क्या यों ही नक़्शे बनवा लिये हैं! आठ आनेवाले घरों की लागत दो

सौ होगी, एक रुपयावालों की तीन सौ और दो रुपएवालों की चार सौ। चार आने का सूद पड़ता है।'

'पहले कितने मकानों का प्रोग्राम है?'

'कम-से-कम तीन हज़ार। दक्खिन तरफ लगभग इतने ही मकानों की ज़रूरत होगी। मैंने हिसाब लगा लिया है। कुछ लोग तो ज़मीन मिलने पर रुपए लगावेंगे; मगर कम से-कम दस लाख की ज़रूरत और होगी।'

'मार डाला! दस लाख! एक तरफ़ के लिए।'

'अगर पाँच लाख के हिस्सेदार मिल जायँ, तो बाक़ी रुपए जनता हुड़ लगा देगी, मज़दूरी में बड़ी किफ़ायत होगी। राज, बेलदार, बढ़ई, लोहार आधी मजूरी पर काम करने को तैयार हैं। ठेलेवाले, गधेवाले, गाड़ीवाले, यहाँ तक कि एक्के और ताँगेवाले भी बेगार में काम करने पर राज़ी हैं।'

'देखिये शायद चल जाय। दो-तीन लाख शायद दादाजी लगा दें, अम्माँ के पास भी अभी कुछ-न-कुछ होगा ही। बाक़ी रुपए की फ़िक्र करनी है; सबसे बड़ी ज़मीन की मुशकिल है।'

'मुश्किल क्या है। दस बँगले गिरा दिये जायँ, तो ज़मीन ही ज़मीन निकल आवेगी।'

'बँगलों का गिराना आप आसान समझते हैं?'

'आसान तो नहीं समझता, लेकिन उपाय क्या है। शहर के बाहर मैं कोई रहेगा नहीं। इसलिए शहर के अन्दर ही ज़मीन निकालनी पड़ेगी। बाज़े मकान इतने लम्बे-चौड़े हैं, कि उनमें एक हज़ार आदमी फैलकर रह सकते हैं। आप ही का मकान क्या छोटा है। इसमें दस ग़रीब परिवार बड़े मज़े में रह सकते हैं।'

सुखदा मुसकिराई—आप तो हम लोगों पर ही हाथ साफ़ करना चाहते हैं!

'जो राह बताये, उसे आगे चलना पड़ेगा।'

'मैं तैयार हूँ; लेकिन म्युनिसिपैलिटी के पास कुछ प्लाट तो ख़ाली होंगे?'

'हाँ, हैं क्यों नहीं। मैंने उन सभों का पता लगा लिया है; मगर हाकिम फ़रमाते हैं उन प्लाटों की बातचीत तय हो चुकी है।'

सलीम ने मोटर से उतरकर शान्तिकुमार को पुकारा। उन्होंने उसे मुझे बुला लिया और पूछा—किधर से आ रहे हो?

सलीम ने प्रसन्न मुख से कहा—कल रात को चला जाऊँगा। सोचा, आपसे रुख़सत होता चलूँ। इसी बहाने देवीजी से भी नियाज हासिल हो गया।

शान्तिकुमार ने पूछा—अरे तो यों ही चले जाओगे क्या भाई? कोई जलसा, दावत, कुछ नहीं? वाह!

'जलसा तो कल शाम को है। कार्ड तो आपके यहाँ भेज दिया था। मगर आपसे तो जलसे की मुलाक़ात काफी नहीं।'

'तो चलते-चलाते हमारी थोड़ी-सी मदद करो। दक्खिन तरफ म्युनिसिपैलिटी के जो प्लाट है, वह हमे दिला दो मुफ़्त में।'

सलीम का मुख गम्भीर हो गया। बोला—उन प्लाटों की तो शायद बातचीत हो चुकी है। कई मेम्बर ख़ुद बेटों और बीवियों के नाम से ख़रीदने को मुँह खोले बैठे हैं।

सुखदा विस्मित हो गई—अच्छा! भीतर ही भीतर यह कपट-लीला भी होती है। तब तो आपकी मदद की और ज़रूरत है। इस माया-जाल को तोड़ना आपका कर्त्तव्य है।

सलीम ने आँखें चुराकर कहा—अब्बाजान इस मुआमले में मेरी एक न सुनेंगे। और हक़ यह है, कि जो मुआमला तय हो चुका, उसके बारे में कुछ ज़ोर देना भी तो मुनासिब नहीं।

यह कहते हुए उसने सुखदा और शान्तिकुमार से हाथ मिलाया और दोनों से कल शाम के जलसे में आने का आग्रह करके चला गया। वहाँ बैठने में अब उसकी ख़ैरियत न थी।

शान्तिकुमार ने कहा—देखा आपने! अभी जगह पर गये नहीं; पर मिज़ाज में अफ़सरी की बू आ गई। कुछ अजब तिलिस्म है, कि जो उसमें क़दम रखता है, उस पर जैसे नशा हो जाता है। इस तजवीज़ के यह पक्के समर्थक थे; पर आज कैसा निकल गये। हाफ़िज़जी से अगर ज़ोर देकर कहें

सौ हों'सुखदा के मुख पर आत्मगौरव की झलक आ गई—हमें न्याय की लड़ाई लड़नी है। न्याय हमारी मदद करेगा। हम और किसी की मदद के मुहताज नहीं हैं।

इसी समय लाला समरकान्त आ गये। शान्तिकुमार को बैठे देखकर जरा झिझके। फिर पूछा—कहिये डाक्टर साहब, हाफ़िज़जी से क्या बात-चीत हुई?

शान्तिकुमार ने अब तक जो कुछ किया था, वह सब कह सुनाया।

समरकान्त ने असन्तोष का भाव प्रकट करते हुए कहा—आप लोग विलायत के पढ़े हुए साहब, मैं भला आपके सामने क्या मुँह खोल सकता हूँ, लेकिन आप जो चाहें कि न्याय और सत्य के नाम पर आपको ज़मीन मिल जाय, तो चुपके हो रहिये। इस काम के लिए दस-बीस हज़ार रुपए ख़र्च करने पड़ेंगे—हरेक मेम्बर से अलग-अलग मिलिये, देखिये किस मिज़ाज का, किस विचार का, किस रंग-ढंग का आदमी है। उसी तरह उसे क़ाबू में लाइये—खुशामद से राज़ी हो खुशामद से, चाँदी से राज़ी हो चाँदी से, दुआ-तावीज़, जन्तर-मन्तर, जिस तरह काम निकले, उस तरह निकालिये। हाफ़िज़जी से मेरी पुरानी मुलाक़ात है। पचीस हज़ार की थैली उनकी मामा के हाथ घर में भेज दो, फिर देखें कैसे ज़मीन नहीं मिलती। सरदार कल्याणसिंह को नये मकानों का ठीका देने का वादा कर लो, वह क़ाबू में आ जायँगे। दुबेजी को पाँच तोले चन्द्रोदय भेंट करके पटा सकते हो। खन्ना से योगाभ्यास की बातें करो और किसी सन्त से मिला दो, ऐसा सन्त हो, जो उन्हें दो-चार आसन सिखा दे। राय साहब धनीराम के नाम पर अपने नये मुहल्ले का नाम रख दो। उनसे कुछ रुपए भी मिल जायँगे। यह है काम करने के ढंग। रुपए की तरफ़ से निश्चिन्त रहो। बनियों को चाहे बदनाम कर लो; पर परमार्थ के काम में बनिये ही आगे आते हैं। दस हज़ार तक का बीमा तो मैं लेता हूँ। बड़े भाइयों से तो चोट ले आया। मुझे तो रात को नींद नहीं आती। यही सोचा करता हूँ, कि कैसे यह काम सिद्ध हो। जब तक काम सिद्ध न हो जायगा, मेरे सिर पर बोझा रहेगा।

शान्तिकुमार ने दबी आवाज़ से कहा—यह फ़न तो मुझे अभी सीखना

पड़ेगा सेठजी। मुझे न रकम खाने का तजरबा है, न खिलाने का। मुझे तो किसी भले आदमी से यह प्रस्ताव करते शर्म आती है। यह ख़याल भी आता है कि वह मुझे कितना ख़ुदग़रज समझ रहा होगा। डरता हूँ, कहीं झुडक न बैठे।

समरकान्त ने जैसे कुत्ते को दुतकारकर कहा—तो फिर तुम्हें ज़मीन मिल चुकी। सेवाश्रम मे लडके पढाना दूसरी बात है, मामले पटाना दूसरी बात है। मैं ख़ुद पटाऊँगा।

सुखदा ने जैसे आहत होकर कहा—नहीं, हमें रिशवत देना मजूर नहीं। हम न्याय के लिए खड़े हैं, हमारे पास न्याय का बल है। हम उसी बल से विजय पायेंगे।

समरकान्त ने निराश होकर कहा—तो तुम्हारी स्कीम चल चुकी।

सुखदा ने कहा—स्कीम तो चलेगी, हाँ शायद देर में चले, या धीमी चाल से चले, पर रुक नहीं सकती। अन्याय के दिन पूरे हो गये।

'अच्छी बात है। मैं भी देखूँगा।'

समरकान्त झल्लाये हुए बाहर चले गये। उनकी सर्वज्ञता को जो स्वीकार न करे, उससे वह दूर भागते थे।

शान्तिकुमार ने ख़ुश होकर कहा सेठजी भी विचित्र जीव हैं। इनकी निगाह में जो कुछ है, वह रुपया। मानवता भी कोई वस्तु है, इसे शायद यह मानें ही नहीं।

सुखदा की आँखें सगर्व हो गईं—इनकी बातों पर न जाइये डाक्टर साहब। इनके हृदय में जितनी दया, जितनी सेवा है, वह हम दोनों में मिलकर भी न होगी। इनके स्वभाव में कितना अन्तर हो गया है, इसे आप नहीं देखते? डेढ़ साल पहले बेटे ने इनसे यह प्रस्ताव किया होता, तो आग हो जाते। अपना सर्वस्व लुटाने को तैयार हो जाना साधारण बात नहीं है, और विशेषकर उस आदमी के लिए, जिसने एक-एक कौडी को दाँतों से पकडा हो। पुत्र स्नेह ही ने यह कायापलट की है। मैं इसी को सच्चा वैराग कहती हूँ। आप पहले मेम्बरों से मिलिये। अगर ज़रूरत समझिये तो मुझे भी ले लीजिये। मुझे तो आशा है, हमें बहुमत मिलेगा। नहीं, आप अकेले न जायँ। कल सवेरे

आइये तो हम दोनों चलें। दस बजे तक लौट आयेंगे। इस वक्त मुझे भी नैना से मिलना है। सुना है, महीनों से बीमार है। मुझे तो उस पर श्रद्धा सी हो गई है। समय मिला, तो उधर से ही नैना से मिलती आऊँगी।

डाक्टर साहब ने कुरसी से उठते हुए कहा—उसे गये तो दो महीने गये, आयेगी कब तक?

'यहाँ से तो कई बार बुलावा गया, सेठ धनीराम विदा ही नहीं करते।'

'नैना खुश तो है?'

'मैं तो कई बार मिली, पर अपने विषय में उसने कुछ न कहा। पूछा तो यही बोली—मैं बहुत अच्छी तरह हूँ। पर मुझे तो वह प्रसन्न नहीं दिखी। वह शिकायत करनेवाली लड़की नहीं है। अगर वह लोग उसे लातों मारकर निकालना भी चाहें, तो घर से न निकलेगी, और न किसी से कुछ कहेगी।'

शान्तिकुमार की आँखें सजल हो गईं—उससे कोई अप्रसन्न हो सकता है! मैं तो इसकी कल्पना ही नहीं कर सकता।

सुखदा मुसकिराकर बोली—उसका भाई कुमार्गी है, क्या यह उन लोगों की अप्रसन्नता के लिए काफ़ी नहीं?

'मैंने तो सुना, मनीराम पक्का शोहदा है।'

'नैना के सामने आपने यह शब्द कहा होता, तो आपसे लड़ बैठती।'

'मैं एक बार मनीराम से मिलूँगा ज़रूर।'

'नहीं, आपके हाथ जोड़ती हूँ। आपने उससे कुछ कहा, तो नैना के सिर जायगी।'

'मैं उससे लड़ने नहीं जाऊँगा, मैं उसकी खुशामद करने जाऊँगा। मैं ... जानता नहीं; पर नैना के लिए अपनी आत्मा की हत्या करने में भी मुझे संकोच नहीं है। मैं उसे दुखी नहीं देख सकता। निःस्वार्थ सेवा की देवी अगर मेरे सामने दुःख में है, तो मेरे जीने को धिक्कार है।'

शान्तिकुमार जल्दी से बाहर निकल आये। आँसुओं का वेग रुके न रुकता था।



सुखदा सड़क पर मोटर से उतरकर सकीना का घर खोजने लगी; पर इधर से उधर तक दो-तीन चक्कर लगा आई, कहीं वह घर न मिला। जहाँ वह मकान होना चाहिये था, वहाँ अब एक नया कमरा था, जिस पर क़लई पुती हुई थी। वह कच्ची दीवार और सड़ा हुआ टाट का परदा कहीं न था। आख़िर उसने एक आदमी से पूछा, तब मालूम हुआ कि जिसे वह नया कमरा समझ रही थी, वही सकीना के मकान का दरवाजा है। उसने आवाज़ दी और एक क्षण में द्वार खुल गया। सुखदा ने देखा, वह एक साफ-सुथरा छोटा-सा कमरा है, जिसमे दो-तीन मोढे रखे हुए हैं। सकीना ने एक मोढ़े को बढाकर पूछा—आपको मकान तलाश करना पड़ा होगा। यह नया कमरा बन जाने से पता नहीं चलता।

सुखदा ने उसके पीले, सूखे मुँह की ओर देखते हुए कहा—हाँ, मैंने दो-तीन चक्कर लगाये। अब यह घर कहलाने लायक़ हो गया; मगर तुम्हारी यह क्या हालत है? बिलकुल पहचानी ही नहीं जाती।

सकीना ने हँसने की चेष्टा करके कहा—मैं तो मोटी-ताज़ी कभी न थी।

'इस वक्त़ तो पहले से भी उतरी हुई हो।'

सहसा पठानिन आ गई और यह प्रश्न सुनकर बोली—महीनों से बुख़ार आ रहा है बेटी; लेकिन दवा नहीं खाती। कौन कहे, मुझसे तो बोल-चाल बन्द है। अल्लाह जानता है, तुम्हारी बड़ी याद आती थी बहूजी; पर आऊँ कौन मुँह लेकर। अभी थोड़ी ही देर हुई लालाजी भी गये हैं। जुग-जुग जियें। सकीना ने मना कर दिया था, इसलिए तलब लेने न गई थी। वही देने आये थे। दुनिया में ऐसे-ऐसे ख़ुदा के बंदे पड़े हुए हैं। दूसरा होता, तो मेरी सूरत न देखता। उनका बसा-बसाया घर मुझ नसीबोंजली के कारन उजड़ गया। मगर लाला का दिल वही है, वही ख़याल है, वही परवरिश की

निगाह है। मेरी आँखो पर न-जाने क्यों परदा पड़ गया था, कि मैंने भोले-भाले लड़के पर वह इलज़ाम लगा दिया। ख़ुदा करे मुझे मरने के बाद कब्र भी न नसीब हो! मैंने इतने दिनों बड़ी छान-बीन की बेटी! सभी ने मेरी लानत-मलामत की। इस लडकी ने तो मुझसे बोलना छोड़ दिया। ख है, पूछो। ऐसी-ऐसी बाते कहती है, कि कलेजे में चुभ जाती हैं। सुनवाता है, तभी तो सुनती हूँ। वैसा काम न किया होता, तो क्यों पड़ता। उस अँधेरे घर में इसके साथ देखकर मुझे शुभा हो गया और ज ग़रीब ने देखा, कि बेचारी औरत बदनाम हो रही है, तो उसकी ख़ातिर धरम देने को भी राज़ी हो गया। मुझ निगोड़ी को उस ग़ुस्से में यह भी न रहा, कि अपने ही मुँह में तो कालिख लगा रही हूँ।

सकीना ने तीव्र कण्ठ से कहा—अरे, हो तो चुका, अब कब तक दुखड़ा जाओगी। कुछ और बातचीत करने दोगी या नहीं?

पठानिन ने फ़रियाद की—इसी तरह यह मुझे झिड़कती रहती है बोलने नहीं देती। पूछो तुमसे दुखड़ा न रोऊँ, तो किसके पास रोने जाऊँ।

सुखदा ने सकीना से पूछा—अच्छा, तुमने अपना वसीक़ा लेने से क्यों कार कर दिया था? वह तो बहुत पहले से मिल रहा है?

सकीना कुछ बोलना ही चाहती थी, कि पठानिन फिर बोल उठी—इ पीछे मुझसे लड़ा करती है वहू। कहती है, क्यों किसी की ख़ैरात लें। नहीं सोचती, कि उसी से तो हमारी परवरिश हुई है। बस, आजकल सिलाई धुन है। बारह-बारह बजे रात तक बैठी आँखें फोड़ती रहती है। ज़रा देखो, इसी से बुख़ार भी आने लगा है; पर दवा के नाम से भागती है। क हूँ, जान रखकर काम कर, कौन लाव-लश्कर खानेवाला है; लेकिन यह धुन है, घर भी अच्छा हो जाय, सामान भी अच्छे बन जायँ। इधर काम अ मिला है, और मजूरी भी अच्छी मिल रही है; मगर सब इसी टीम-टाम में जाती है। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक ईसाइन रहती है, वह रोज़ सुबह को पढ़ आती है। हमारे ज़माने में तो बेटा सिपारा और रोज़ा-नमाज़ का रिवाज थ जगह से शादी के पैगाम आये...

सकीना ने कठोर होकर कहा—अरे, तो अब चुप भी रहोगी। हो तो चुका। आपकी क्या ख़ातिर करूँ बहन। आपने इतने दिनों बाद मुझ बद-नसीब को याद तो किया।

सुखदा ने उदार मन से कहा—याद तो तुम्हारी बराबर आती रहती थी, और आने को जी भी चाहता था; पर डरती थी, तुम अपने दिल में न-जाने क्या समझो। यह तो आज मियाँ सलीम से मालूम हुआ कि तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है। जब हम लोग तुम्हारी ख़िदमत करने को हर तरह हाज़िर हैं, तो तुम नाहक़ क्यों जान देती हो।

सकीना जैसे शर्म को निगलकर बोली—बहन मैं चाहे मर जाऊँ। पर इस ग़रीबी को मिटाकर छोड़ूँगी। मैं इस हालत में न होती, तो बाबूजी को क्यों मुझपर रहम आता, क्यों वह मेरे घर आते, क्यों उन्हें बदनाम होकर घर से भागना पड़ता। सारी मुसीबत की जड़ ग़रीबी है। इसका ख़ातमा करके छोड़ूँगी।

एक क्षण के बाद उसने पठानिन से कहा—ज़रा जाकर किसी तम्बोली से पान ही लगवा लाओ। अब और क्या ख़ातिर करें आपकी।

बुढ़िया को इस बहाने से टालकर सकीना धीमे स्वर में बोली—यह मुहम्मद सलीम का ख़त है। आप जब मुझ पर इतना करम करती हैं, तो आपसे क्या पर्दा करूँ। जो होना था, वह तो हो ही गया। बाबूजी यहाँ कई बार आये। ख़ुदा जानता है जो उन्होंने कभी मेरी तरफ़ आँख उठाई हो। मैं भी उनका अदब करती थी। हाँ, उनकी शराफ़त का असर ज़रूर मेरे दिल पर होता था। एकाएक मेरी शादी का ज़िक्र सुनकर बाबूजी एक नशे की-सी हालत में आये और मुझसे मुहब्बत ज़ाहिर की। ख़ुदा गवाह है बहन, मैं एक बात भी ग़लत नहीं कह रही हूँ। उनकी प्यार की बातें सुनकर मुझे भी सुध-बुध भूल गई। मेरी जैसी औरत के साथ ऐसा शरीफ़ आदमी यों मुहब्बत करे, मुझे ले उड़ा। मैं वह नेमत पाकर दीवानी हो गई। जब वह अपना तन-मन मुझ पर निसार कर रहे थे, तो मैं काठ की पुतली तो न थी। मुझमें उन्होंने क्या ख़ूबी देखी, यह मैं नहीं जानती। उनकी बातों से यही मालूम होता था, कि वह आपसे ख़ुश नहीं हैं। बहन, मैं इस वक़्त आपसे साफ़-साफ़ बातें कर रही हूँ, मुआफ़ कीजियेगा। आप की तरफ़ से उन्हें कुछ मलाल

ज़रूर था और जैसे फ़ाक़ा करने के बाद अमीर आदमी भी ज़रदा पुलाव भू
कर सत्तू पर टूट पडता है, उसी तरह उनका दिल आपकी तरफ़ से मायूस हो
मेरी तरफ़ लपका। वह मुहब्बत के भूखे थे। मुहब्बत के लिए उनकी
तडपती रहती थी। शायद यह नेमत उन्हें कभी मयस्सर ही न हुई। वह गुमा
से .खुश होनेवाले आदमी नहीं हैं। वह दिल और जान से किसी के हो जा
चाहते हैं और उसे भी दिल और जान से अपना कर लेना चाहते हैं। मुझे
अफ़सोस हो रहा है, कि मै उनके साथ चली क्यो न गई। बेचारे सत्तू पर गि
तो वह भी सामने से खींच लिया गया। आप अब भी उनके दिल पर क़
कर सकती हैं। बस, एक मुहब्बत में डूबा हुआ ख़त लिख दीजिये। वह दू
ही दिन दौड़े हुए आयेंगे। मैने एक हीरा पाया है और जब तक कोई उ
मेरे हाथो से छीन न ले, उसे छोड नही सकती। महज़ यह ख़याल कि मे
पास हीरा है; मेरे दिल को हमेशा मजबूत और .खुश बनाये रहेगा।

वह लपककर घर में गई और एक इत्र में बसा हुआ लिफ़ाफ़ा लाकर सुख
के हाथ पर रखती हुई बोली—यह मियाँ मुहम्मद सलीम का ख़त है। आ
पढ सकती है। कोई ऐसी बात नहीं है, वह भी मुझ पर आशिक़ हो गये हैं
पहले अपने ख़िदमतगार के साथ मेरा निकाह करा देना चाहते थे। अब ख़ु
निकाह करना चाहते हैं। पहले चाहे जो कुछ रहे हो, पर अब उनमें व
छिछोरापन नहीं है। उनकी मामा उनका हाल बयान किया करती है। मेरी
निस्बत भी उन्हें जो कुछ मालूम हुआ होगा, मामा से ही मालूम हुआ होगा।
मैंने उन्हे दो-चार बार अपने दरवाज़े पर भी ताकते-झाँकते देखा है। सुन
हूँ, किसी ऊँचे ओहदे पर आ गये है। मेरी तो जैसे तक़दीर खुल गई; लेकि
मुहब्ब की जिस नाज़ुक जजीर में बँधी हुई हूँ, उसे बडी से बडी ताक़त भी न
तोड सकती। अब तो जब तक मुझे मालूम न हो जायगा, कि बाबूजी ने मु
दिल से निकाल दिया, तब तक उन्हीं की हूँ, और उनके दिल से निकाले ज
पर भी इस मुहब्बत को हमेशा याद रखूँगी। ऐसी पाक मुहब्बत का एक लम्हा
इन्सान को उम्र-भर मतवाला रखने के लिए काफी है। मैंने इसी मज़मून
का जवाब लिख दिया है। कल ही तो उनके जाने की तारीख़ है।
ख़त पढकर रोने लगे। अब यह ठान ली है, कि या तो मुझसे शादी

ा बिनब्याहे रहेंगे। उसी ज़िले में तो बाबूजी भी हैं। दोनों दोस्तों में हीं फैसला होगा। इसीलिए इतनी जल्द भागे जा रहे हैं।

बुढ़िया एक पत्ते की गिलोरी में पान लेकर आ गई। सुखदा ने निष्क्रिय ाव से पान लेकर खा लिया और फिर विचारों में डूब गई। इस दरिद्र ने से आज पूर्ण रूप से परास्त कर दिया था। आज वह अपनी विशाल सम्पत्ति और महती कुलीनता के साथ उसके सामने भिखारिन-सी बैठी हुई थी। आज सका मन अपना अपराध स्वीकार करता हुआ जान पड़ा। अब तक उसने स तर्क से मन को समझाया था, कि पुरुष छिछोरे और हरजाई होते ही हैं, इस ुवती के हाव-भाव, हास-विलास ने उन्हें मुग्ध कर लिया। आज उसे ज्ञात हुआ, कि, यहाँ न हाव-भाव है, न हास-विलास है, न वह जादू-भरी चितवन है। यह ो एक शान्त, करुण संगीत है, जिसका रस वही ले सकते हैं, जिनके पास हृदय ।। लम्पटों और विलासियों को जिस चटपटे, उत्तेजक गाने में आनन्द ाता है, वह यहाँ नहीं है। उस उदारता के साथ, जो द्वेष की आग से िकलकर खरी हो गई थी, उसने सकीना की गरदन में बाँहें डाल दीं और ोली—बहन, आज तुम्हारी बातों ने मेरे दिल का बोझ हलका कर िया। सम्भव है, तुमने मेरे ऊपर जो इलज़ाम लगाया है, वह ठीक हो। ुम्हारी तरफ़ से मेरा दिल आज साफ़ हो गया। मेरा यही कहना है कि ाबूजी को अगर मुझसे शिकायत हुई थी, तो उन्हें मुझसे कहना चाहिये था। ें भी ईश्वर से कहती हूँ, कि अपनी जान में मैंने उन्हें कभी असन्तुष्ट नहीं िया। हाँ, अब मुझे कुछ ऐसी बातें याद आ रही हैं, जिन्हें उन्होंने मेरी ठुरता समझी होगी; पर उन्होंने मेरा जो अपमान किया, उसे मैं अब भी मा नहीं कर सकती। उन्हें प्रेम की भूख थी, तो मुझे प्रेम की भूख कुछ कम थी। मुझसे वह जो चाहते थे, वही मैं भी उनसे चाहती थी। जो चीज़ वे मुझे न दे सके, वह मुझसे न पाकर वह क्यों उद्दण्ड हो गये? क्या इसी ए कि वह पुरुष हैं और पुरुष चाहे स्त्री को पाँव की जूती समझे; पर स्त्री ा धर्म है, कि वह उसके पाँव से लिपटी रहे? बहन, जिस तरह तुमने ुझसे कोई परदा नहीं रखा, उसी तरह मैं भी तुमसे निष्कपट बातें कर रही हूँ। ी जगह पर एक क्षण के लिए अपने को रख लो। तब तुम मेरे भावों को

पहचान सकोगी। अगर मेरी ख़ता है, तो उतनी ही उनकी ख़ता भी है। जिस तरह मैं अपनी तक़दीर को ठोककर बैठ गई थी, क्या वह भी न बैठ सकते थे? तब शायद सफाई हो जाती; लेकिन अब तो जब तक उनकी तरफ़ से हाथ न बढ़ाया जायगा, मैं अपना हाथ नहीं बढ़ा सकती, चाहे सारी ज़िदगी इसी दशा में पड़ी रहूँ। औरत निर्बल है और इसी लिए उसे मान-अपमान का दुःख भी ज़्यादा होता है। अब मुझे आज्ञा दो बहन, जरा नैना से मिलना है। मैं तुम्हारे लिए सवारी भेजूँगी, कृपा करके कभी-कभी हमारे यहाँ आ जाया करो।

वह कमरे से बाहर निकली, तो सकीना रो रही थी, न जाने क्यों।

१०

सुखदा सेठ धनीराम के घर पहुँची, तो नौ बज रहे थे। बड़ा विशाल, आसमान से बातें करनेवाला भवन था, जिसके द्वार पर एक तेज बिजली की बत्ती जल रही थी और दो दरबान खड़े थे। सुखदा को देखते ही भीतर-बाहर हलचल मच गई। लाला मनीराम घर में से निकल आये और उसे अन्दर ले गये। दूसरी मंज़िल पर सजा हुआ मुलाक़ाती कमरा था। सुखदा वहाँ बैठाई गई। घर की स्त्रियाँ इधर-उधर परदों से उसे झाँक रही थीं, कमरे में आने का साहस न कर सकती थीं।

सुखदा ने एक कोच पर बैठकर पूछा—सब कुशल-मंगल?

मनीराम ने एक सिगार सुलगाकर धुआँ उड़ाते हुए कहा—आपने शायद पेपर नहीं देखा। पापा को दो दिन से ज्वर आ रहा है। मैंने तो कलकत्ता से मि० लैसेट को बुला लिया है। यहाँ किसी पर मुझे विश्वास नहीं। मैंने पेपर में तो दे दिया था। बूढ़े हुए, कहता हूँ आप शान्त होकर बैठिये, और

९ चाहते भी हैं, पर यहाँ जब कोई बैठने भी दे। गवर्नर प्रयाग आये थे।

उनके यहाँ से ख़ास उनके प्राइवेट सेक्रेटरी का निमन्त्रण आ पहुँचा। जाना लाज़िम हो गया। इस शहर में और किसी के नाम निमन्त्रण नहीं आया। इतने बड़े सम्मान को कैसे ठुकरा दिया जाता। वहीं सरदी खा गये। सम्मान ही तो आदमी की ज़िन्दगी में एक चीज़ है, यों तो अपना-अपना पेट सभी पालते हैं। अब यह समझिये, कि सुबह से शाम तक शहर के रईसों का ताँता लगा रहता है। सवेरे डिप्टी कमिश्नर और उनकी मेम साहब आई थीं। कमिश्नर ने भी हमदर्दी का तार भेजा है। दो-चार दिन की बीमारी कोई बात नहीं, यह सम्मान तो प्राप्त हुआ। सारा दिन अफ़सरों की खातिरदारी में कट रहा है।

नौकर पान-इलायची की तश्तरी रख गया। मनीराम ने सुखदा के सामने तश्तरी रख दी। फिर बोले—मेरे घर में ऐसी औरत की ज़रूरत थी, जो सोसाइटी का आचार-व्यवहार जानती हो और लेडियों का स्वागत-सत्कार कर सके। इस शादी से तो वह बात पूरी हुई नहीं। मुझे मजबूर होकर दूसरा विवाह करना पड़ेगा। पुराने विचार की स्त्रियों की तो हमारे यहाँ यों भी कमी न थी, पर वह लेडियों की सेवा-सत्कार तो नहीं कर सकतीं। लेडियों के सामने तो उन्हें ला ही नहीं सकते। ऐसी फूहड़, गँवार औरतों को उनके सामने लाकर अपना अपमान कौन कराये।

सुखदा ने मुसकिराकर कहा—तो किसी लेडी से आपने क्यों न विवाह किया?

मनीराम निस्संकोच भाव से बोला—धोखा हुआ और क्या। हम लोगों को क्या मालूम था, कि ऐसे शिक्षित परिवार में लड़कियाँ ऐसी फूहड़ होंगी। अम्माँ, बहनें और आस-पास की स्त्रियाँ तो नई बहू से बहुत ही सन्तुष्ट हैं। वह व्रत रखती है, पूजा करती है, सिन्दूर का टीका लगाती है; लेकिन मुझे तो संसार में कुछ काम, कुछ नाम करना है। मुझे पूजा-पाठवाली औरतों की ज़रूरत नहीं, पर अब तो विवाह हो ही गया, यह तो टूट नहीं सकता। मजबूर होकर दूसरा विवाह करना पड़ेगा। अब यहाँ दो-चार लेडियाँ रोज़ ही आया चाहें, उनका सत्कार न किया जाय तो काम नहीं चलता। सब समझती होंगी, यह लोग कितने मूर्ख हैं।

सुखदा को इस इक्कीस वर्षवाले युवक की इस निस्संकोच सांसारिकता प घृणा हो रही थी। उसकी स्वार्थ-सेवा ने जैसे उसकी सारी कोमल भावनाओं को कुचल डाला था, यहाँ तक कि वह हास्यास्पद हो गई थी।

'इस काम के लिए तो आपको थोड़े-से वेतन में किरानियों की स्त्रियाँ मिल जायँगी, जो लेडियों के साथ साहबों का भी सत्कार करेंगी।'

'आप इन व्यापार-सम्बन्धी समस्याओं को नहीं समझ सकतीं। बड़े बड़े मिलों के एजेंट आते हैं। अगर मेरी स्त्री उनसे बातचीत कर सकती तो कुछ न कुछ कमीशन रेट बढ़ जाता। यह काम तो कुछ औरत ही क सकती है।'

'मैं तो कभी न करूँ। चाहे सारा कारोबार जहन्नुम में मिल जाय।'

'विवाह का अर्थ जहाँ तक मैं समझा हूँ, वह यही है कि स्त्री पुरुष क सहगामिनी है। अँग्रेज़ों के यहाँ बराबर स्त्रियाँ सहयोग देती हैं।'

'आप सहगामिनी का अर्थ नहीं समझे।'

मनीराम मुँहफट था। उसके मुसाहिब इसे साफ़गोई कहते थे। उसक विनोद भी गाली से शुरू होता था और गाली तो गाली थी ही। बोला—

'कम से कम आपको इस विषय में मुझे उपदेश करने का अधिकार नहीं आपने इस शब्द का अर्थ समझा होता, तो इस वक्त आप अपने पति से अल न होतीं और न वह गली-कूचों की हवा खाते होते।'

सुखदा का मुख-मण्डल लज्जा और क्रोध से आरक्त हो उठा। उस कुरसी से उठकर कठोर स्वर में कहा—मेरे विषय में आपको टीका करने क कोई अधिकार नहीं है, लाला मनीराम! ज़रा भी अधिकार नहीं है। आ अँग्रेज़ी सभ्यता के बड़े भक्त बनते हैं। क्या आप समझते हैं कि अँग्रेज़ी प नाचना और सिगार ही उस सभ्यता के मुख्य अंग हैं? उसका प्रधान अंग है महिलाओं का आदर और सम्मान। वह अभी आपको सीखना बाक़ी है। को कुलीन स्त्री इस तरह आत्म-सम्मान खोना स्वीकार न करेगी।

उसका गर्जन सुनकर सारा घर थर्रा उठा और मनीराम की तो जैसे ज़बा हो गई। नैना अपने कमरे में बैठी हुई भावज का इन्तज़ार कर रही थी

उसकी गरज सुनकर समझ गई, कि कोई न कोई बात हो गई। दौड़ी हुई आकर बड़े कमरे के द्वार पर खड़ी हो गई।

'मैं तुम्हारी राह देख रही थी भाभी, तुम यहाँ कैसे बैठ गईं?'

सुखदा ने उसकी ओर ध्यान न देकर उसी रोष में कहा—धन कमाना अच्छी बात है, पर इज्जत बेचकर नहीं। और विवाह का उद्देश्य वह नहीं है, जो आप समझते हैं। मुझे आज मालूम हुआ कि स्वार्थ में पड़कर आदमी का कहाँ तक पतन हो सकता है।

नैना ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे उठाती हुई बोली—अरे, तो यहाँ से उठोगी भी।

सुखदा और भी उत्तेजित होकर बोली—मैं क्यों अपने स्वामी के साथ नहीं गई! इसलिए कि वह जितने त्यागी हैं, मैं उतना त्याग नहीं कर सकती थी। आपको अपना व्यवसाय और धन अपनी पत्नी के आत्मसम्मान से प्यारा है। उन्होंने दोनों ही को लात मार दी। आपने गली-कूचों को जो बात कही, इसका अगर वही अर्थ है, जो मैं समझी हूँ, तो यह मिथ्या कलंक है। आप अपने रुपए कमाते जाइये; आपका उस महान् आत्मा पर छींटे उड़ाना छोटा मुँह बड़ी बात है।

सुखदा लोहार की एक को सोनार की सौ से बराबर करने की असफल चेष्टा कर रही थी। वह एक वाक्य उसके हृदय में जितना चुभा, वैसा पैना कोई वाक्य वह न निकाल सकी।

नैना के मुँह से निकला—भाभी, तुम किसके मुँह लग रही हो?

मनीराम क्रोध से मुट्ठी बाँधकर बोला मैं अपने ही घर में अपना यह अपमान नहीं सह सकता।

नैना ने भावज के सामने हाथ जोड़कर कहा भाभी, मुझ पर दया करो। ईश्वर के लिए यहाँ से चलो।

सुखदा ने पूछा—कहाँ हैं सेठजी, ज़रा मुझे उनसे दो-दो बातें करनी हैं।

मनीराम ने कहा—आप इस वक्त उनसे नहीं मिल सकतीं। उनकी तबीयत अच्छी नहीं है और ऐसी बातें सुनना वह पसन्द न करेंगे।

'अच्छी बात है, न जाऊँगी। नैना देवी, कुछ मालूम है तुम्हें, तुम्हारी एक अँग्रेज़ी सौत आनेवाली है बहुत जल्द।'

'अच्छा ही है, घर में आदमियों का आना किसे बुरा लगता है। एक-दो जितनी चाहें आवें, मेरा क्या बिगड़ता है।'

मनीराम इस परिहास पर आपे से बाहर हो गया। सुखदा नैना के साथ चली, तो सामने आकर बोला—आप मेरे घर में नहीं जा सकतीं!

सुखदा रुककर बोली—अच्छी बात है, जाती हूँ, मगर याद रखियेगा, इस अपमान का नतीजा आपके हक़ में अच्छा न होगा।,

नैना पैरों पड़ती रही; पर सुखदा झल्लाई हुई बाहर निकल गई।

एक क्षण में घर की सारी औरतें और बच्चे जमा हो गये और सुखदा पर आलोचनाएँ होने लगीं। किसी ने कहा—इसकी आँख का पानी मर गया। किसी ने कहा—ऐसी न होती, तो ख़सम छोड़कर क्यों चला जाता। नैना सिर झुकाये सुनती रही। उसकी आत्मा उसे धिक्कार रही थी—तेरे सामने यह अनर्थ हो रहा है, और तू बैठी सुन रही है; लेकिन उस समय ज़बान खोलना क़हर हो जाता। वह लाला समरकान्त की बेटी है, इस अपराध को उसकी निष्कपट सेवा भी न मिटा सकी थी। वाल्मीकीय रामायण की कथा के अवसर पर समरकान्त ने लाला धनीराम का मस्तक नीचा करके इस वैमनस्य का बीज बोया था। उसके पहले दोनों सेठों में मित्र-भाव था। उस दिन से द्वेष उत्पन्न हुआ। समरकान्त का मस्तक नीचा करने ही के लिए धनीराम ने यह विवाह स्वीकार किया। विवाह के बाद उनकी द्वेष ज्वाला ठण्ढी हो गई थी। मनीराम ने मेज़ पर पैर रखकर इस भाव से कहा, मानो सुखदा को वह कुछ नहीं समझता—मैं इस औरत को क्या जवाब देता। कोई मर्द होता, तो उसे बताता। लाला समरकान्त ने जुआ खेलकर धन कमाया है। उसी पाप का फल भोग रहे हैं। यह मुझसे बातें करने चली हैं। इनकी माता हैं, उन्हें उस शोहदे शान्तिकुमार ने बेवकूफ़ बनाकर सारी जायदाद लिखा ली। अब टके-टके को मुहताज हो रही हैं। समरकान्त का भी यही हाल होनेवाला है। और यह देवी देश का उपकार करने चली हैं। अपना पुरुष तो मारा-मारा फिरता और आप देश का उद्धार कर रही हैं। अछूतों को मन्दिर क्या खुलवा

दिया, अब किसी को कुछ समझती ही नहीं। अब म्युनिसिपैलिटी से जमीन के लिए लड रही हैं। ऐसा गचा खायँगी, कि याद करेंगी। मैंने इस दो साल में जितना कारोबार बढ़ाया है, लाला समरकान्त सात जन्म में नहीं बढ़ा सकते।

मनीराम का सारे घर पर आधिपत्य था। वह धन कमा सकता था, इसलिए, उसके आचार-व्यवहार को पसन्द न करने पर भी घर उसका ग़ुलाम था। उसी ने तो कागज़ और चीनी की एजेंसी खोली थी। लाला धनीराम घी का काम करते थे और घी के व्यापारी बहुत थे। लाभ कम होता था। काग़ज़ और चीनी का वह अकेला एजेंट था। नफ़ा का क्या ठिकाना। इस सफलता से उसका सिर फिर गया था। किसी को न गिनता था; अगर कुछ आदर करता था, तो लाला धनीराम का। उन्हीं से कुछ दबता भी था।

यही लोग बातें कर ही रहे थे, कि लाला धनीराम खाँसते, लाठी टेकते हुए आकर बैठ गये।

मनीराम ने तुरन्त पंखा बन्द करते हुए कहा—आपने क्यो कष्ट किया बाबूजी। मुझे बुला लेते। डाक्टर साहब ने आपको चलने-फिरने को मना किया था।

लाला धनीराम ने पूछा—क्या आज लाला समरकान्त की बहू आई थी?

मनीराम कुछ डर गया—जी हाँ, अभी-अभी चली गईं।

धनीराम ने आँखें निकालकर कहा—तो तुमने अभी से मुझे मरा समझ लिया। मुझे ख़बर तक न दी।

'मैं तो रोक रहा था; पर वह भल्लाई हुई चली गईं।'

'तुमने अपनी बातचीत से उसे अप्रसन्न कर दिया होगा, नहीं वह मुझसे मिले बिना न जाती।'

'मैंने तो केवल यही कहा था कि उनकी तबीयत अच्छी नहीं है।'

'तो तुम समझते हो, जिसकी तबीयत अच्छी न हो, उसे एकान्त में मरने देना चाहिये? आदमी एकान्त मे मरना भी नहीं चाहता। उसकी हार्दिक इच्छा होती है, कि कोई संकट पडने पर उसके सगे-सम्बन्धी आकर उसे घेर ले।'

लाला धनीराम को खाँसी आ गई। ज़रा देर के बाद वह फिर बोले—

मैं कहता हूँ, तुम कुछ सिड़ी तो नहीं हो गये हो। व्यवसाय में सफलता पा जाने ही से किसी का जीवन सफल नहीं हो जाता। समझ गये। सफल मनुष्य वह है, जो दूसरो से अपना काम भी निकाले और उन पर एहसान भी रखे। शेख़ी मारना सफलता की दलील नहीं, ओछेपन की दलील है। वह मेरे पास आती, तो यहाँ से प्रसन्न होकर जाती और उसकी सहायता बड़े काम की वस्तु है। नगर में उसका कितना सम्मान है, शायद तुम्हें इसकी ख़बर नहीं। वह अगर तुम्हें नुक़सान पहुँचाना चाहे, तो एक दिन में तबाह कर सकती है। और वह तुम्हें तबाह करके छोड़ेगी। मेरी बात गिरह बाँध लो। वह एक ही ज़िद्दिन औरत है। जिसने पति की परवाह न की, अपने प्राणों की परवाह न की ''न जाने तुम्हें कब अक्ल आयेगी।

लाला धनीराम को खाँसी का दौरा आ गया। मनीराम ने दौड़कर उन्हें सँभाला और उनकी पीठ सहलाने लगा। एक मिनट के बाद लालाजी को साँस आई।

मनीराम ने चिन्तित स्वर में कहा—इस डाक्टर की दवा से आपको कोई फ़ायदा नहीं हो रहा है। कविराज को क्यों न बुला लिया जाय। मैं उन्हें तार दिये देता हूँ।

धनीराम ने लम्बी साँस खींचकर कहा—अच्छा तो हूँगा बेटा, मैं किसी साधु की चुटकी-भर राख ही से। हाँ, यह तमाशा चाहे कर लो, और यह तमाशा बुरा नहीं रहा। थोड़े-से रुपए ऐसे तमाशों में ख़र्च कर देने का मैं विरोध नहीं करता; लेकिन इस वक्त के लिए इतना बहुत है। कल डाक्टर साहब से कह दूँगा, मुझे बहुत फायदा है, आप तशरीफ़ ले जायँ।

मनीराम ने डरते-डरते पूछा—कहिये तो मैं सुखदा देवी के पास जाऊँ?

धनीराम ने गर्व से कहा—नहीं, मैं तुम्हारा अपमान कराना नहीं चाहता। ज़रा मुझे देखना है कि उसकी आत्मा कितनी उदार है। मैंने कितनी ही बार हानियाँ उठाईं; पर किसी के सामने नीचा नहीं बना। समरकान्त को मैंने देखा। वह लाख बुरा हो; पर दिल का साफ़ है, दया और धर्म को कभी नहीं छोड़ता। अब उनकी बहू की परीक्षा लेनी है।

यह कहकर उन्होंने लकड़ी उठाई और धीरे-धीरे अपने कमरे की तरफ़ चले। मनीराम उन्हें दोनों हाथों से सँभाले हुए था।

———



सावन में नैना मैके आई। ससुराल चार क़दम पर थी; पर छः महीने से पहले आने का अवसर न मिला। मनीराम का वश होता तो अब भी न आने देता; लेकिन सारा घर नैना की तरफ़ था। सावन में सभी बहुएँ मैके जाती हैं। नैना पर इतना बड़ा अत्याचार नहीं किया जा सकता।

सावन की झड़ी लगी हुई थी। कहीं कोई मकान गिरता था, कहीं कोई छत बैठती थी। सुखदा बरामदे में बैठी हुई आँगन में उठते हुए बुलबुलों की सैर कर रही थी। आँगन कुछ गहरा था, पानी रुक जाया करता था। बुलबुलों का बताशों की तरह उठकर कुछ दूर चलना और ग़ायब हो जाना उसके लिए मनोरंजक तमाशा बना हुआ था। कभी-कभी दो बुलबुले आमने-सामने आ जाते, और जैसे हम कभी-कभी किसी के सामने आ जाने पर कतराकर निकल जाना चाहते हैं; पर जिस तरफ़ हम मुड़ते हैं, उसी तरफ़ वह भी मुड़ता है और एक सेकेंड तक यही दाँव-घात होता रहता है वही तमाशा यहाँ भी हो रहा था। सुखदा को ऐसा आभास हुआ, मानो यह जानदार हैं, मानो नन्हे-नन्हे बालक गोल टोपियाँ लगाये जल-क्रीड़ा कर रहे हैं।

इसी वक़्त नैना ने पुकारा—भाभी आओ, नाव-नाव खेलें। मैं नाव बना रही हूँ।

सुखदा ने बुलबुलों की ओर ताकते हुए जवाब दिया—तुम खेलो, मेरा जी नहीं चाहता।

नैना ने न माना। दो नावें लिये आकर सुखदा को उठाने लगी—जिसकी नाव किनारे तक पहुँच जाय उसकी जीत। पाँच-पाँच रुपये की बाज़ी।

सुखदा ने अनिच्छा से कहा—तुम मेरी तरफ से भी एक नाव छोड़ दो। जीत जाना, तो रुपए ले लेना, पर उसकी मिठाई नहीं आवेगी, बताये देती हूँ।

'तो क्या दवायें आवेंगी ?'

'वाह उससे अच्छी और क्या बात होगी। शहर में हज़ारों आदमी खाँसी और ज्वर में पड़े हुए हैं। उनका कुछ उपकार हो जायगा।'

सहसा लल्लू ने आकर दोनों नावें छीन लीं और उन्हें पानी में डालकर तालियाँ बजाने लगा।

नैना ने बालक का चुम्बन लेकर कहा—वहाँ दो-एक बार रोज़ इसे याद करके रोती थी। न-जाने क्यों बार-बार इसी की याद आती रहती थी।

'अच्छा, मेरी याद भी कभी आती थी ?'

'कभी नहीं, हाँ, भैया की याद बार-बार आती थी, और वह इतने निठुर हैं, कि छः महीने में एक पत्र भी न भेजा। मैंने भी ठान लिया है, कि जब तक उनका पत्र न आयेगा, एक ख़त भी न लिखूँगी।'

'तो क्या सचमुच तुम्हें मेरी याद न आती थी ? और मैं समझ रही थी, कि तुम मेरे लिए विकल हो रही होगी। आखिर अपने भाई की बहन ही तो हो। आँख की ओट होते ही ग़ायब।'

'मुझे तो तुम्हारे ऊपर क्रोध आता था। इन छ: महीनों में केवल तीन बार गईं और फिर भी लल्लू को न ले गईं।'

'यह जाता, तो आने का नाम न लेता।'

'तो क्या मैं इसकी दुश्मन थी ?'

'उन लोगों पर मेरा विश्वास नहीं है, मैं क्या करूँ। मेरी तो यही समझ नहीं आता, कि तुम वहाँ कैसे रहती थीं।'

'तो क्या करती, भाग आती ? तब भी तो ज़माना मुझी को हँसता।'

'अच्छा सच बताना, पतिदेव तुमसे प्रेम करते हैं ?'

'वह तो तुम्हें मालूम ही है।'

'मैं तो ऐसे आदमी से एक बार भी न बोलती।'

'मैं भी कभी नहीं बोली।'

'सच ! बहुत बिगड़े होंगे। अच्छा, सारा वृत्तान्त कहो। सोहागरात को क्या हुआ ? देखो, तुम्हें मेरी क़सम एक शब्द भी झूठ न कहना।'

नैना माथा सिकोड़कर बोली—भाभी, तुम मुझे दिक़ करती हो, लेकर क़सम रखा दी। जाओ मैं कुछ नहीं बताती।

'अच्छा न बताओ भाई, कोई ज़बरदस्ती है।'

यह कहकर वह उठकर ऊपर चली। नैना ने उसका हाथ पकड़कर कहा—अब भागी कहाँ जाती हो, क़सम तो रखा चुकीं। बैठकर सुनती जाओ। आज तक मेरी और उनकी एक बार भी बोल-चाल नहीं हुई।

सुखदा ने चकित होकर कहा—अरे ! सच कहो।

नैना ने व्यथित हृदय से कहा—हाँ, बिलकुल सच है भाभी। जिस दिन मैं गई, उस दिन रात को वह गले में हार डाले, आँखें नशे से लाल, उन्मत्त की भाँति पहुँचे, जैसे कोई प्यादा असामी से महाजन के रुपए वसूल करने जाय। और मेरा घूँघट हटाते हुए बोले—मैं तुम्हारा घूँघट देखने नहीं आया हूँ, और न मुझे यह ढकोसला पसन्द है। आकर इस कुरसी पर बैठो। मैं उन दक़ियानूसी मर्दों में नहीं हूँ, जो यह गुड़ियों के खेल खेलते हैं। तुम्हें हँसकर मेरा स्वागत करना चाहिये था और तुम घूँघट निकाले बैठी हो, मानो तुम मेरा मुँह नहीं देखना चाहती। उनका हाथ पड़ते ही मेरी देह में जैसे किसी सर्प ने काट लिया। मैं सिर से पाँव तक सिहर उठी। इन्हें मेरी देह को स्पर्श करने का क्या अधिकार है ? यह प्रश्न एक ज्वाला की भाँति मेरे मन में उठा। मेरी आँखों से आँसू गिरने लगे। वह सारे सोने के स्वप्न, जो मैं कई दिनों से देख रही थी, जैसे उड़ गये। इतने दिनों से जिस देवता की उपासना कर रही थी, क्या उसका यही रूप था ! इसमें न देवत्व था, न मनुष्यत्व था, केवल मदान्धता थी, अधिकार का गर्व था और हृदयहीन निर्लज्जता थी। मैं श्रद्धा के थाल में, अपनी आत्मा का सारा अनुराग, सारा आनन्द, सारा प्रेम स्वामी के चरणों पर समर्पित करने को बैठी हुई थी। उनका यह रूप देखकर, जैसे थाल मेरे हाथ से छूटकर गिर पड़ा और उसका धूप-दीप-नैवेद्य जैसे भूमि पर बिखर गया। मेरी चेतना का एक-एक रोम, जैसे इस अधिकार-गर्व से विद्रोह करने लगा। कहाँ था वह आत्म-समर्पण का भाव, जो मेरे अणु-अणु में व्याप्त

हो रहा था। मेरे जी में आया, मैं भी कह दूँ कि तुम्हारे साथ मेरे विवाह का यह आशय नहीं है, कि मैं तुम्हारी लौंडी हूँ! तुम मेरे स्वामी हो, तो मैं भी तुम्हारी स्वामिनी हूँ। प्रेम के शासन के सिवा मैं कोई दूसरा शासन स्वीकार नहीं कर सकती और न चाहती हूँ, कि तुम स्वीकार करो; लेकिन जी ऐसा जल रहा था, कि मैं इतना तिरस्कार भी न कर सकी। तुरन्त वहाँ से उठकर बरामदे में आ खड़ी हुई। वह कुछ देर कमरे में मेरी प्रतीक्षा करते रहे, फिर झल्लाकर उठे और मेरा हाथ पकड़कर कमरे में ले जाना चाहा। मैंने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया और कठोर स्वर मे बोली—मैं यह अपमान नहीं सह सकती।

आप बोले—उफ्फोह! इस रूप पर इतना अभिमान!

मेरी देह में आग लग गई। कोई जवाब न दिया। ऐसे आदमी से बोलना भी मुझे अपमानजनक मालूम हुआ। मैंने अन्दर जाकर किवाड़ बन्द कर लिये, और उस दिन से फिर न बोली। मैं तो ईश्वर से यही मनाती हूँ, कि वह अपना विवाह कर लें और मुझे छोड़ दें। जो स्त्री में केवल रूप देखना चाहता है, जो केवल हाव-भाव और दिखावे का गुलाम है, जिसके लिए स्त्री केवल स्वार्थसिद्धि का साधन है, उसे मैं अपना स्वामी नहीं स्वीकार कर सकती।

सुखदा ने विनोद-भाव से पूछा—लेकिन तुमने ही अपने प्रेम का कौन सा परिचय दिया। क्या विवाह के नाम में ही इतनी बरकत है, कि पतिदेव आते ही-आते तुम्हारे चरणों पर सिर रख देते।

नैना गम्भीर होकर बोली—हाँ, मैं तो समझती हूँ, विवाह के नाम में ही बरकत है। जो विवाह को धर्म का बन्धन नहीं समझता, इसे केवल वासना की तृप्ति का साधन समझता है, वह पशु है।

सहसा शान्तिकुमार पानी में लथपथ आकर खड़े हो गये।

सुखदा ने पूछा—भीग कहाँ गये, क्या छतरी न थी?

शान्तिकुमार ने बरसाती उतारकर अलगनी पर रख दी और बोले—आज बोर्ड का जलसा था। लौटते वक्त कोई सवारी न मिली।

'क्या हुआ बोर्ड में? हमारा प्रस्ताव पेश हुआ?'

'वही हुआ, जिसका भय था।'

'कितने वोटो से हारे ?'

'सिर्फ़ पाँच वोटो से। इन्हीं पाँचो ने दगा दी। लाला धनीराम ने कोई बात उठा नहीं रखी।'

सुखदा ने हतोत्साह होकर कहा—तो फिर अब ?

'अब तो समाचार-पत्रों और व्याख्यानों से आन्दोलन करना होगा।'

सुखदा उत्तेजित होकर बोली—जी नही, मैं इतनी सहनशील नहीं हूँ लाला धनीराम और उनके सहयोगियो को मै चैन की नींद न सोने दूँगी इतने दिनों सबकी खुशामद करके देख लिया। अब अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना पडेगा। फिर दस-बीस प्राणो की आहुति देनी पडेगी, तब लोगों की आँखे खुलेंगी। मै इन लोगो का शहर मे रहना मुश्किल कर दूँगी।

शान्तिकुमार लाला धनीराम से जले हुए थे। बोले—यह उन्हीं सेठ धनीराम के हथकण्डे हैं।

सुखदा ने द्वेष-भाव से कहा—किसी राम के हथकण्डे हों, मुझे इसकी परवाह नहीं। जब बोर्ड ने एक निश्चय किया, तो उसकी ज़िम्मेदारी एक आदमी के सिर नहीं। सारे बोर्ड पर है। मैं इन महल-निवासियो को दिखा दूँगी, कि जनता के हाथों में भी कुछ बल है। लाला धनीराम ज़मीन के उन टुकड़ों पर अपने पाँव न जमा सकेंगे।

शान्तिकुमार ने कातर भाव से कहा—मेरे ख़याल मे तो इस वक्त़ प्रोपेगेंडा करना ही काफी है। अभी मामला तूल हो जायगा।

ट्रस्ट बन जाने के बाद से शान्तिकुमार किसी जोखिम के काम मे आगे क़दम उठाते हुए घबराते थे। अब उनके ऊपर एक सस्था का भार था और अन्य साधको की भाँति वह भी साधना को ही सिद्धि समझने लगे थे। अब उन्हे बात-बात में बदनामी और अपनी संस्था के नष्ट हो जाने की शंका होती थी।

सुखदा ने उन्हे फटकार बताई—आप क्या बाते कर रहे हैं डाक्टर साहब! मैंने इन पढ़े-लिखे स्वार्थियों को ख़ूब देख लिया। मुझे अब मालूम हो गया, कि यह लोग केवल बातो के शेर हैं। मैं उन्हे दिखा दूँगी, कि जिन ग़रीबों को तुम अब तक कुचलते आये हो, वही अब साँप बनकर तुम्हारे पैरों से लिपट जायँगे। अब तक यह लोग उनसे रिआयत चाहते थे, अब अपना हक़ माँगेगे।

रिआयत न करने का उन्हें अख़तियार है, पर हमारे हक से हमें कौन वंचित सकता है। रिआयत के लिए कोई जान नहीं देता, पर हक़ के लिए जान देना जानते हैं। मैं भी देखूँगी, लाला धनीराम और उनके पिट्ठू कितने पानी में

यह कहती हुई सुखदा पानी बरसते में कमरे से निकल आई।

एक मिनट के बाद शान्तिकुमार ने नैना से पूछा—कहाँ चली गईं ? ज जल्द गर्म हो जाती हैं।

नैना ने इधर-उधर देखकर कहार से पूछा, तो मालूम हुआ, सुखदा ब चली गई। उसने आकर शान्तिकुमार से कहा।

शान्तिकुमार ने विस्मित होकर कहा इस पानी में कहाँ गई होंगी ! डरता हूँ, कहीं हड़ताल-वड़ताल न कराने लगें। तुम तो वहाँ जाकर मुझे गईं नैना, एक पत्र भी न लिखा।

एकाएक उन्हें ऐसा जान पड़ा कि उनके मुँह से एक अनुचित बात नि गई है। उन्हें नैना से यह प्रश्न न पूछना चाहिये था। इसका वह मन में क्या आशय समझे। उन्हें मालूम हुआ, जैसे कोई उनका गला दब हुए है। वह वहाँ से भाग जाने के लिए रास्ता खोजने लगे। वह अब एक क्षण भी नहीं बैठ सकते। उनके दिल में हलचल होने लगी, कहीं नै अप्रसन्न होकर कुछ कह न बैठे। ऐसी मूर्खता उन्होंने कैसे कर डाली ! तो उनकी इज्जत ईश्वर के हाथ है !

नैना का मुख लाल हो गया। वह कुछ जवाब न देकर लल्लू को पुकार हुई कमरे से निकल गई। शान्तिकुमार मूर्तिवत् बैठे रहे। अन्त को उठकर सिर झुकाये इस तरह चले, मानो जूते पड़ गये हों। नैना का वह आर मुख-मण्डल एक दीपक की भाँति उनके अन्त:पट को जैसे जलाये डालता था

नैना ने सहृदयता से कहा—कहाँ चले डाक्टर साहब, पानी तो नि जाने दीजिये।

शान्तिकुमार ने कुछ बोलना चाहा; पर शब्दों की जगह कण्ठ में जैसे नम का डला पड़ा हुआ था। वह जल्दी से बाहर चले गये, इस तरह लड़खड़ हुए, मानो अब गिरे, अब गिरे। आँखों में आँसुओं का सागर उमड़ा हुआ था

१२

अब भी मूसलाधार वर्षा हो रही थी। सन्ध्या से पहले सन्ध्या हो गई थी। और सुखदा ठाकुरद्वारे में बैठी हुई ऐसी हड़ताल का प्रबन्ध कर रही थी, जो म्युनिसिपलबोर्ड और उसके कर्णधारों का सिर हमेशा के लिए नीचा कर दे, उन्हें हमेशा के लिए सबक़ ल जाय कि जिन्हें वे नीच समझते हैं, उन्हीं की दया और सेवा पर उनके वन का आधार है। सारे नगर में एक सनसनी-सी छाई हुई है, मानो किसी ु ने नगर को घेर लिया हो। कहीं धोबियों का जमाव हो रहा है, कहीं मारों का, कहीं मेहतरों का। नाई-कहारों की पंचायत अलग हो रही है। बदा देवी की आज्ञा कौन टाल सकता था? सारे शहर में इतनी जल्द संवाद गया कि यक़ीन न आता था। ऐसे अवसरों पर न-जाने कहाँ से दौड़नेवाले कल आते हैं, जैसे हवा में भी हलचल होने लगती है। महीनों से जनता आशा हो रही थी, कि नये-नये घरों में रहेंगे, साफ़-सुथरे हवादार घरों में धूप होगी, हवा होगी, प्रकाश होगा। सभी एक नये जीवन का स्वप्न रहे थे। आज नगर के अधिकारियों ने उनकी सारी आशाएँ धूल में ला दीं।

नगर की जनता अब उस दशा में न थी, कि उस पर कितना ही अन्याय और वह चुपचाप सहती जाय। उसे अपने स्वत्व का ज्ञान हो चुका था, न्हें मालूम हो गया था, कि उन्हें भी आराम से रहने का उतना ही अधिकार जितना धनियों को। एक-बार संगठित आग्रह की सफलता देख चुके थे। धिकारियों की यह निरंकुशता, यह स्वार्थपरता उन्हे असह्य हो गई। और यह ई सिद्धान्त की राजनैतिक लड़ाई न थी, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप जनता की मझ में मुश्किल से आता है। इस आन्दोलन का तत्काल फल उनके सामने ा। भावना या कल्पना पर ज़ोर देने की ज़रूरत न थी। शाम होते-होते कुरद्वारे में अच्छा ख़ासा बाज़ार लग गया।

धोबियों का चौधरी मैकू अपनी बकरे की-सी दाढ़ी हिलाता हुआ बोला, नशे

से आँखें लाल थीं—कपड़े बना रहा था कि ख़बर मिली। भगा आ रहा हूँ घर में कहीं कपड़े रखने की जगह नहीं है। गीले कपड़े कहाँ सूखें।

इस पर जगन्नाथ महरा ने डाँटा—झूठ न बोलो मैकू, तुम कपड़े बना रहे थे अभी? सीधे ताड़ीख़ाने से चले आ रहे हो। कितना समझाया गया; पर तुमने अपनी टेव न छोड़ी।

मैकू ने तीखे होकर कहा—ले अब चुप रहो चौधरी, नहीं अभी सारी कलई खोल दूँगा। घर में बैठकर बोतल के बोतल उड़ा जाते हो और यहाँ आकर सेखी बघारते हो।

मेहतरों का जमादार मतई खड़ा होकर अपनी जमादारी की शान दिखाकर बोला—पंचो, यह बखत बादहवाई बातें करने का नहीं है। जिस काम के लिए देवीजी ने बुलाया है, उसको देखो और फैसला करो कि अब हमें क्या करना है। उन्हीं बिलों में पड़े सड़ते रहें, या चलकर हाकिमों से फरियाद करें।

सुखदा ने विद्रोह-भरे स्वर में कहा—हाकिमों से जो कुछ कहना-सुनना था, कह-सुन चुके, किसी ने भी कान न दिया। छः महीने से यही कहा-सुनी हो रही है। जब अब तक उसका कोई फल न निकला, तो अब क्या निकलेगा। हमने आरज़ू मिन्नत से काम निकालना चाहा था; पर मालूम हुआ, सीधी उँगली से घी नहीं निकलता। हम जितना दबेंगे, यह बड़े आदमी हमें उतना ही दबावेंगे। आज तुम्हें तय करना है कि तुम अपने हक़ के लिए लड़ने को तैयार हो या नहीं।

चमारों का मुखिया सुमेर लाठी टेकता हुआ, मोटे चश्मे लगाये पोपले मुँह से बोला—अरज-मारूद करने के सिवा और हम कर ही क्या सकते हैं। हमारा क्या बस है।

मुरली खटिक ने बड़ी-बड़ी मूछों पर हाथ फेरकर कहा—बस कैसे नहीं है। हम आदमी नहीं हैं, कि हमारे बाल-बच्चे नहीं हैं। किसी को तो महल और बँगला चाहिये, हमें कच्चा घर भी न मिले। मेरे घर में पाँच जने हैं। उनमें से चार आदमी महीने भर से बीमार हैं। उस काल-कोठरी में बीमार न हों, तो क्या हों। सामने से गन्दा नाला बहता है। साँस लेते नाक फटती है।

ईदू कुँजड़ा अपनी झुकी हुई कमर को सीधी करने की चेष्टा करते हुए

बोला—अगर मुक़द्दर में आराम करना लिखा होता, तो हम भी किसी बड़े आदमी के घर न पैदा होते। हाफिज हलीम आज बड़े आदमी हो गये हैं, यहीं मेरे सामने जूते बेचते थे। लडाई में बन गये। अब रईसो के ठाठ हैं। सामने चला जाऊ, तो पहचानेंगे भी नहीं। नहीं तो पैसे-धेले की मूली-तुरई उधार ले जाते थे। अल्लाह बडा कारसाज है। अब तो लडका भी हाकिम हो गया है। क्या पूछना है।

जंगली घोसी पूरा काला देव था, शहर का मशहूर पहलवान। बोला मैं तो पहले ही जानता था कुछ होना-हवाना नहीं है। अमीरों के सामने हमे कौन पूछता है।

अमीर बेग पतली, लम्बी गरदन निकालकर बोला—बोर्ड के फ़ैसले की अपील तो कहीं होती होगी। हाईकोर्ट में अपील करनी चाहिये। हाईकोर्ट न सुने, तो बादशाह से फ़रियाद की जाय।

सुखदा ने मुसकिराकर कहा—बोर्ड के फैसले की अपील वही है, जो इस वक्त तुम्हारे सामने हो रही है। आप ही लोग हाईकोर्ट हैं, आप ही लोग जज हैं। बोर्ड अमीरों का मुँह देखता है। ग़रीबो के मुहल्ले खोद-खोदकर फेंक दिये जाते हैं, इसलिए कि अमीरों के महल बनें। ग़रीबो को दस पाँच रुपए मुआवज़ा देकर उसी ज़मीन के हजारों वसूल किये जाते हैं। उस रुपए से अफ़सरों को बडी-बडी तनख्वाह दी जाती है। जिस ज़मीन पर हमारा दावा था, वह लाला धनीराम को दे दी गई। वहाँ उनके बँगले बनेंगे। बोर्ड को रुपए प्यारे हैं, तुम्हारी जान की उसकी निगाह में कोई कीमत नहीं। इन स्वार्थियो से इन्साफ़ की आशा छोड दो। तुम्हारे पास कितनी शक्ति है, इसका उन्हें ख़याल नहीं है। वे समझते हैं, यह ग़रीब लोग हमारा कर ही क्या सकते हैं। मैं कहती हूँ, तुम्हारे ही हाथो में सब कुछ है। हमे लड़ाई नहीं करनी है, फ़साद नहीं करना है। सिर्फ़ हडताल करना है, यह दिखाने के लिए कि तुमने बोर्ड के फैसले को मंज़ूर नहीं किया, और यह हडताल एक-दो दिन की नहीं होगी। यह उस वक्त तक रहेगी, जब तक बोर्ड [illegible] कहा—तुम क्या करके हमें यह ज़मीन [illegible] मैं [illegible]

है। आप लोगों में बहुत ऐसे हैं, जिनके घर में एक दिन का भी भोजन न है: मगर यह भी जानती हूँ, कि बिना तकलीफ़ उठाये आराम नहीं मिलता।

सुमेर की जूते की दूकान थी। तीन-चार चमार नौकर थे। ख़ुद ज काट दिया करता था। मजूरी से पूँजीपति बन गया था। घासवालों औ साईसों को सूद पर रुपए भी उधार दिया करता था। मोटी ऐनकों के पी से बिज्जू की भाँति ताकता हुआ बोला—हरताल होना तो हमारी बिरादरी मुश्किल है बहूजी। यों आपका ग़ुलाम हूँ और जानता हूँ कि आप जो कु करेंगी, हमारी ही भलाई के लिए करेंगी; पर हमारी बिरादरी में हरताल मुश्किल है। बेचारे दिन भर घास करते हैं, साँझ को बेचकर आटा-दा जुटाते हैं, तब कहीं चूल्हा जलता है। कोई सहीस है, कोई कोचवान, बेचा की नौकरी जाती रहेगी। अब तो सभी जातवाले सहीसी, कोचवानी करते हैं उनकी नौकरी दूसरे उठा लें, तो बेचारे कहाँ जायँगे।

सुखदा विरोध सहन न कर सकती थी। इन कठिनाइयों का उसकी निगा में कोई मूल्य न था। तिनककर बोली तो क्या तुमने समझा था कि बिना कुछ किये-धरे अच्छे मकान रहने को मिल जायँगे? संसार में जो अधिक से अधिक का सह सकता है, उसी की विजय होती है।

मतई जमादार ने कहा—हड़ताल से नुक़सान तो सभी का होगा, क्या हु हुए क्या हम हुए; लेकिन बिना धुँए के आग तो नहीं जलती। बहूजी के सामने हम लोगों ने कुछ न किया, तो समझ लो जनम-भर ठोकर खानी पड़ेगी फिर ऐसा कौन है, जो हम ग़रीबों का दुख-दरद समझेगा। जो कहो नौकरी चली जायगी, तो नौकर तो हम सभी हैं। कोई सरकार का नौकर है, को रईस का नौकर है। हमको यहाँ कौल-क़सम भी कर लेनी होगी, कि जब त हड़ताल रहे, कोई किसी की जगह पर न जाय, चाहे भूखों मर भले ही जाय।

सुमेर ने मतई को झिड़क दिया—तुम जमादार बात तो समझते नहीं, बी में कूद पड़ते हो। तुम्हारी और बात है, हमारी और बात है। हमारा काम से ... ते हैं, तुम्हारा काम और कोई नहीं कर सकता।

तो क्या है। ... का समर्थन किया—यह तुमने बहुत ठीक कहा सुमेर चौधरी।

ईदू कुँजड़ा अपने-लिखे आदमी बुनाई का काम करने लगे हैं। जगह

आई कम्पनी खुल गई हैं। गाहक के यहाँ पहुँचने में एक दिन की भी देर हो जाती है, तो वह कपड़े कम्पनी में भेज देता है। हमारे हाथ से गाहक निकल जाता है। हड़ताल दस-पाँच दिन चली, तो हमारा रोज़गार मिट्टी में मिल जायगा। अभी पेट की रोटियाँ तो मिल जाती हैं। तब तो रोटियों के भी लाले पड़ जायँगे।

मुरली खटिक ने ललकारकर कहा—जब कुछ करने का बूता नहीं, तो अपने किस बिरते पर चले थे? क्या समझते थे, रो देने से दूध मिल जायगा। वह ज़माना अब नहीं है। अगर अपना और बाल-बच्चों का सुख देखना चाहते हो, तो सब तरह की आफत-बला सिर पर लेनी पड़ेगी। नहीं जाकर घर में आराम से बैठो और मक्खियों की तरह मरो।

ईदू ने धार्मिक गम्भीरता से कहा—होगा वही, जो मुक़द्दर में है। हाय-हाय करने से कुछ होने का नहीं। हाफ़िज़ हलीम तक़दीर ही से बड़े आदमी हो गये। अल्लाह की रज़ा होगी, तो मकान बनते देर न लगेगी।

जंगली ने इसका समर्थन किया—बस तुमने लाख रुपए की बात कह दी ईदू मियाँ। हमारा दूध का सौदा ठहरा। एक दिन दूध न पहुँचे या देर हो जाय, तो लोग घुड़कियाँ जमाने लगते हैं—हम डेरी से दूध लेंगे, तुम बहुत देर करते हो। हड़ताल दस-पाँच दिन चल गई, तो हमारा तो दीवाला निकल जायगा। दूध तो ऐसी चीज़ नहीं कि आज न बिके, कल बिक जाय।

ईदू बोला—वही हाल तो साग-पात का भी है भाई, फिर बरसात के दिन हैं, सुबू की चीज़ शाम को सड़ जाती हैं, और कोई सेंत भी नहीं पूछता।

अमीरबेग ने अपनी सारस की-सी गरदन उठाई—बहूजी, मैं तो कोई क़ायदा-क़ानून नहीं जानता, मगर इतना जानता हूँ; कि बादशाह रैयत के साथ इन्साफ़ ज़रूर करते हैं। रातों को भेस बदलकर रैयत का हाल-चाल जानने के लिए निकलते हैं, अगर ऐसी अरज़ी तैयार की जाय जिस पर हम सबके दसखत हों और वह बादशाह के सामने पेश की जाय, तो उस पर जरूर लिहाज किया जायगा।

सुखदा ने जगन्नाथ की ओर आशा-भरी आँखों से देखकर कहा—तुम क्या कहते हो जगन्नाथ, इन लोगों ने तो जवाब दे दिया!

जगन्नाथ ने बगलें झाँकते हुए कहा—तो बहूजी, अकेला चना तो भाड़ नहीं फोड़ सकता। अगर सब भाई साथ दें, तो मैं तैयार हूँ। हमारी बिरादरी का आधार नौकरी है। कुछ लोग खोंचे लगाते हैं, कोई डोली ढोता है; पर बहुत करके लोग बड़े आदमियों की सेवा-टहल करते हैं। दो-चार दिन बड़े घरों की औरतें भी घर का काम-धंधा कर लेंगी। हम लोगों का तो सत्यानाश ही हो जायगा।

सुखदा ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया और मतई से बोली—तुम क्या कहते हो, क्या तुमने भी हिम्मत छोड़ दी?

मतई ने छाती ठोंककर कहा—बात कहकर निकल जाना पाजियों का काम है सरकार, आपका जो हुकुम होगा, उससे बाहर नहीं जा सकता। चाहे जान रहे या जाय। बिरादरी पर भगवान की दया से इतनी धाक है, कि जो बात मैं कहूँगा, उसे कोई दुलक नहीं सकता।

सुखदा ने निश्चय-भाव से कहा—अच्छी बात है, कल से तुम अपनी बिरादरी की हड़ताल करवा दो। और चौधरी लोग जायँ। मैं ख़ुद घर-घर घूमूँगी द्वार-द्वार जाऊँगी, एक-एक के पैर पड़ूँगी और हड़ताल कराके छोड़ूँगी, और हड़ताल न हुई, तो मुँह में कालिख लगाकर डूब मरूँगी। मुझे तुम लोगों से बड़ी आशा थी, तुम्हारा बड़ा ज़ोर था, बड़ा अभिमान था। तुमने मेरा अभिमान तोड़ दिया।

यह कहती हुई वह ठाकुरद्वारे से निकलकर पानी में भीगती हुई चली गई मतई भी उसके पीछे-पीछे चला गया। और चौधरी लोग अपनी अपराधी सूरतें लिये बैठे रहे।

एक क्षण के बाद जगन्नाथ बोला—बहूजी ने सेर का कलेजा पाया है।

सुमेर ने पोपला मुँह चुबलाकर कहा—लच्छमी का औतार है। लेकिन भाई, रोज़गार तो नहीं छोड़ा जाता। हाकिमों की कौन चलावे, दस दिन पन्द्रह दिन न सुनें, तो यहाँ तो मर मिटेंगे

ईदू को दूर की सूझी—मर नहीं मिटेंगे पंचो, चौधरियों को जेहल में ठूँस दिया जायगा। हो किस फेर में। हाकिमों से लड़ना ठट्ठा नहीं है।

जंगली ने हामी भरी—हम क्या खाकर रईसों से लड़ेंगे। बहूजी के पास

धन है, इलम है, वह अफसरों से दो-दो बातें कर सकती हैं। हर तरह का नुकसान सह सकती हैं। हमारी तो वधिया बैठ जायगी।

किन्तु सभी मन में लज्जित थे, जैसे मैदान से भागा सिपाही। उसे अपने प्राणों के बचने का जितना आनन्द होता है, उससे कहीं ज़्यादा भागने की लज्जा होती है। वह अपनी नीति का समर्थन मुँह से चाहे कर ले, हृदय से नहीं कर सकता।

ज़रा देर में पानी रुक गया और यह लोग भी यहाँ से चले, लेकिन उनके उदास चेहरों में, उनकी मन्द चाल में, उनके झुके हुए सिरों में, उनके चिन्तामय मौन में उनके मन के भाव साफ झलक रहे थे।

———

१३

सुखदा घर पहुँची, तो बहुत उदास थी। सार्वजनिक जीवन में हार का उसे यह पहला ही अनुभव था और उसका मन किसी चाबुक खाये हुए अल्हड़ बछेड़े की तरह सारा साज और बस और बन्धन तोड़-ताड़कर कहीं भाग जाने के लिए व्यग्र हो रहा था। ऐसे कायरों से क्या आशा की जा सकती है! जो लोग स्थायी लाभ के लिए थोड़े से कष्ट नहीं उठा सकते, उनके लिए संसार में अपमान और दुःख के सिवा और क्या है?

नैना मन में इस हार पर ख़ुश थी। अपने घर में उसकी कुछ पूछ न थी, उसे अब तक अपमान ही अपमान मिला था, फिर भी उसका भविष्य उसी घर से संबद्ध हो गया था। अपनी आँखें दुखती हैं, तो फोड़ नहीं दी जातीं। सेठ धनीराम ने जो जमीन हजारों में ख़रीदी थी, थोड़े ही दिनों में उसके लाखों में बिकने की आशा थी। वह सुखदा से कुछ कह तो न सकती थी; पर यह आन्दोलन उसे बुरा मालूम होता था। सुखदा के प्रति अब उसकी वह भक्ति न

रही थी। अपनी द्वेष-तृष्णा शान्त करने ही के लिए तो वह नगर में आग लगा रही है! इन तुच्छ भावनाओं से दबकर सुखदा उसकी आँखों में कुछ संकुचित हो गई थी।

नैना ने आलोचक बनकर कहा—अगर यहाँ के आदमियों को संगठित कर लेना इतना आसान होता, तो आज यह दुर्दशा ही क्यों होती।

सुखदा आवेश में बोली—हड़ताल तो होगी, चाहे चौधरी लोग मानें या न मानें। चौधरी मोटे हो गये हैं और मोटे आदमी स्वार्थी हो जाते हैं।

नैना ने आपत्ति की—डरना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। जिसमें पुरुषार्थ है, ज्ञान है, बल है, वह बाधाओं को तुच्छ समझ सकता है। जिसके पास व्यंजनों से भरा हुआ थाल है, वह एक टुकड़ा कुत्ते के सामने फेंक सकता है। जिसके पास एक ही टुकड़ा हो, वह तो उसी से चिमटेगा।

सुखदा ने मानो इस कथन को सुना ही नहीं—मन्दिरवाले झगड़े में न-जाने सभों में कैसे साहस आ गया था। मैं एक बार फिर वही कांड दिखा देना चाहती हूँ।

नैना ने काँपकर कहा—नहीं भाभी, इतना बड़ा भार सिर पर मत लो। समय आ जाने पर सब कुछ आप ही हो जाता है। देखो हम लोगों के देखते देखते बाल-विवाह, छूत-छात का रिवाज कितना कम हो गया। शिक्षा का प्रचार कितना बढ़ गया। समय आ जाने पर गरीबों के घर भी बन जायँगे।

'यह तो कायरों की नीति है। पुरुषार्थ वह है, जो समय को अपने अनुकूल बनावे।'

'इसके लिए प्रचार करना चाहिये।'

'छः महीनेवाली राह है।'

'लेकिन जोखिम तो नहीं है।'

'जनता को मुझ पर विश्वास नहीं है।'

एक क्षण बाद उसने फिर कहा—अभी मैंने ऐसी कौन-सी सेवा की है, कि लोगों को मुझ पर विश्वास हो। दो-चार घण्टे गलियों का चक्कर लगा लेना कोई सेवा नहीं है।

'मैं तो समझती हूँ, इस समय हड़ताल कराने से जनता को जो थोड़ी-बहुत सहानुभूति है, वह भी गायब हो जायगी।'

सुखदा ने अपनी जाँघ पर हाथ पटककर कहा—सहानुभूति से काम चलता, तो फिर रोना किस बात का था। लोग स्वेच्छा से नीति पर चलते, तो कानून क्यों बनाने पड़ते। मैं इस घर मे रहकर और अमीर का ठाट रखकर जनता के दिलों पर क़ाबू नहीं पा सकती। मुझे त्याग करना पड़ेगा। इतने दिनों से सोचती ही रह गई।

दूसरे दिन शहर में अच्छी ख़ासी हड़ताल थी। मेहतर तो एक भी काम करता न नजर आता था। कहारों और इक्के-गाड़ीवालों ने भी काम बन्द कर दिया था। साग-भाजी की दुकानें भी आधी से ज्यादा बन्द थीं। कितने ही घरों में दूध के लिए हाय-हाय मची हुई थी। पुलीस दूकानें खुलवा रही थी और मेहतरों को काम पर लाने की चेष्टा कर रही थी। उधर जिले के अधिकारी मण्डल में इस समस्या को हल करने का विचार हो रहा था। शहर के रईस और अमीर भी उसमे शामिल थे।

दोपहर का समय था। घटा उमड़ी चली आती थी, जैसे आकाश पर पीला लेप किया जा रहा हो। सड़कों और गलियों मे जगह-जगह पानी जमा था। उसी कीचड़ में जनता इधर-उधर दौड़ती फिरती थी। सुखदा के द्वार पर एक भीड़ लगी हुई थी, कि सहसा शान्तिकुमार घुटने तक कीचड़ लपेटे आकर बरामदे में खड़े हो गये। कल की बातों के बाद आज वहाँ आते उन्हें संकोच हो रहा था। नैना ने उन्हे देखा, पर अन्दर न बुलाया। सुखदा अपनी माता से बातें कर रही थी। शान्तिकुमार एक क्षण खड़े फिर हताश होकर चलने को तैयार हुए।

सुखदा ने उनकी रोनी सूरत देखी, फिर भी उन पर व्यंगप्रहार करने से न चूकी—किसी ने आपको यहाँ आते देख तो नहीं लिया डाक्टर साहब?

शान्तिकुमार ने इस व्यंग की चोट को विनोद से रोका—ख़ूब देख-भालकर आया हूँ। कोई यहाँ देख भी लेगा, तो कह दूँगा, रुपये उधार लेने आया हूँ।

रेणुका ने डाक्टर साहब से देवर का नाता जोड़ लिया था। आज सुखदा ने कल का वृत्तान्त सुनाकर उसे डाक्टर साहब को आड़े हाथों लेने की सामग्री

दे दी थी, हालाँकि अदृश्य रूप से डाक्टर साहब की नीति-भेद का कारण वह खुद थीं। उसी ने ट्रस्ट का भार उनके सिर रखकर उन्हें सचिन्त कर दिया था।

उसने डाक्टर का हाथ पकड़कर कुरसी पर बैठाते हुए कहा—तो चूड़ियाँ पहनकर बैठो ना, यह मूछें क्यों बढ़ा ली हैं।

शान्तिकुमार ने हँसते हुए कहा—मैं तैयार हूँ; लेकिन मुझसे शादी करने के लिए तैयार रहियेगा। आपको मर्द बनना पड़ेगा।

रेणुका ताली बजाकर बोली—मैं तो बूढ़ी हुई; लेकिन तुम्हारा खसम ऐसा ढूँढूँगी, जो तुम्हें सात परदों के अन्दर रखे और गालियों से बात करे। गहने मैं बनवा दूँगी। सिर में सेंदुर डालकर घूँघट निकाले रहना। पहले खसम खा लेगा, तो उसकी जूठन मिलेगी, समझ गये, और उसे देवता का प्रसाद समझकर खाना पड़ेगा। ज़रा भी नाक-भौं सिकोड़ी, तो कुलच्छनी कहलाओगे। उसके पाँव दबाने पड़ेंगे, उसकी धोती छाँटनी पड़ेगी। वह बाहर से आवेगा, तो उसके पाँव धोने पड़ेंगे, और बच्चे भी जनने पड़ेंगे। बच्चे न हुए, तो वह दूसरा ब्याह कर लेगा, फिर घर में लौंडी बनकर रहना पड़ेगा।

शान्तिकुमार पर लगातार इतनी चोटें पड़ीं, कि हँसी भूल गई। मुँह ज़रा-सा निकल आया। मुर्दनी ऐसी छा गई कि जैसे मुँह बँध गया। जबड़े फैलाने से भी न फैलते थे। रेणुका ने उनकी दो-चार बार पहले भी हँसी की थी; पर आज तो उसने उन्हें रुलाकर छोड़ा। परिहास में औरत अजेय होती है, खासकर जब वह बूढ़ी हो।

उन्होंने घड़ी देखकर कहा—एक बज रहा है। आज तो हड़ताल अच्छी रही।

रेणुका ने फिर चुटकी ली—आप तो घर में लेटे थे, आपको क्या खबर!

शान्तिकुमार ने अपनी कारगुज़ारी जताई—उन आराम से लेटनेवालों में मैं नहीं हूँ। हरेक आन्दोलन में ऐसे आदमियों की भी ज़रूरत होती है, जो गुप्त रूप से उसकी मदद करते रहें। मैंने अपनी नीति बदल दी है और मुझे अनुभव हो रहा है कि मैं इस तरह कुछ काम सेवा नहीं कर सकता। आज नौजवान-सभा के दस-बारह युवकों को तैनात कर आया हूँ, नहीं हमारी चौथाई हद भी न होती।

रेणुका ने बेटी की पीठ पर एक थपकी देकर—तब तू इन्हें क्यों बदनाम कर रही थी। बेचारे ने इतनी जान खपाई, फिर भी बदनाम हुए। मेरी समझ में भी यह नीति आ रही है। सबका आग में कूदना अच्छा नहीं।

शान्तिकुमार कल के कार्य-क्रम का निश्चय करके और सुखदा को अपनी ओर से आश्वस्त करते चले गये।

सन्ध्या हो गई थी। बादल खुल गये थे और चाँद की सुनहरी जो[त] [पृ]थ्वी के आँसुओं से भीगे हुए मुख पर जैसे मातृ स्नेह की वर्षा कर रही थी [सु]खदा सन्ध्या करने बैठी हुई थी। उस गहरे आत्म-चिंतन में उसके मन क[ी] [च]ंचलता किसी हठीले बालक की भाँति रोती हुई मालूम हुई। क्या मनीरा[म] उसका वह अपमान न किया होता, तो वह हड़ताल के लिए इतन[ा] [जो]र लगाती?

उसके अभिमान ने कहा—हाँ-हाँ, ज़रूर लगाती। यह विचार बहुत पहले [उ]सके मन में आया था। धनीराम को हानि होती है, तो हो, इस भय से वह [अ]पने कर्तव्य का त्याग क्यों करे। जब वह अपना सर्वस्व इस उद्योग के लिए [हो]म करने को तुली हुई है, तो दूसरों के हानि-लाभ की उसे क्या चिन्ता हो [सक]ती है।

इस तरह मन को समझाकर उसने संध्या समाप्त की और नीचे उतरी थी [कि] लाला समरकान्त आकर खड़े हो गये। उनके मुख पर विषाद की रेखा [झल]क रही थी और ओठ इस तरह फड़क रहे थे, मानो मन का आवेश बाहर [नि]कलने के लिए विकल हो रहा हो।

सुखदा ने पूछा—आप कुछ घबराये हुए हैं दादाजी, क्या बात है?

समरकान्त की सारी देह जैसे काँप उठी। आँसुओं के वेग को बल-पूर्वक [रो]कने की चेष्टा करके बोले—एक पुलीस कर्मचारी अभी दूकान पर ऐसी सूचना [दे] गया है, कि क्या कहूँ...

यह कहते-कहते उनका कंठ-स्वर जैसे गहरे जल में डुबकियाँ खाने लगा।

सुखदा ने सशंकित होकर पूछा—तो कहिये न क्या कहा गया है। हरिद्वार [में] तो सब कुशल है?

समरकान्त ने उसकी आशकाओं को दूसरी ओर बहकते देख जल्दी से कहा—

नहीं-नहीं, उधर की कोई बात नहीं है। तुम्हारे विषय में था। तुम्हारी गिरफ्तारी का वारण्ट निकल गया है।

सुखदा ने हँसकर कहा—अच्छा! मेरी गिरफ्तारी का वारण्ट है! तो उसके लिए आप इतना क्यों घबरा रहे हैं। मगर आखिर मेरा अपराध क्या है!

समरकान्त ने मन को सँभालकर कहा—यही हड़ताल है। आज अफसरों मे सलाह हुई है और वहाँ यही निश्चय हुआ कि तुम्हें और चौधरियों को पकड़ लिया जाय। इनके पास दमन ही एक दवा है। असन्तोष के कारणों को दूर न करेंगे, बस पकड़-धकड़ से काम लेंगे, जैसे कोई माता भूख से रोते बालक को पीटकर चुप करना चाहे।

सुखदा शान्त भाव से बोली—जिस समाज का आधार ही अन्याय पर हो, उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है, लेकिन इससे कोई यह न समझे, कि यह आन्दोलन दब जायगा। उसी तरह, जैसे कोई गेंद टक्कर खाकर और जोर से उछलता है, जितने ही ज़ोर की टक्कर होगी, उतने ही ज़ोर की प्रतिक्रिया भी होगी।

एक क्षण के बाद उसने उत्तेजित होकर कहा मुझे गिरफ्तार कर लें। उन लाखों ग़रीबों को कहाँ ले जायँगे, जिनकी आहे आसमान तक पहुँच रही हैं। यही आहे एक दिन किसी ज्वालामुखी की भाँति फटकर सारे समाज और समाज के साथ सरकार का भी विध्वंस कर देंगी; अगर किसी की आँखें नहीं खुलतीं न खुलें, मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। एक दिन आवेगा, जब आज के देवता कल कंकर-पत्थर की तरह उठा-उठाकर गलियों में फेंक दिये जायँगे और पैरों से ठुकराये जायँगे। मेरे गिरफ्तार हो जाने से चाहे कुछ दिनों के लिए अधिकारियों के कानों में हाहाकार की आवाज़ें न पहुँचें, लेकिन वह दिन दूर नहीं है, जब यही आँसू चिनगारी बनकर अन्याय को भस्म कर देंगे, इसी राख से वह अग्नि प्रज्वलित होगी, जिसकी आन्दोलित शिखाएँ आकाश तक को हिला देंगी।

समरकान्त पर इस प्रलाप का कोई असर न हुआ। वह इस संकट को टालने का उपाय सोच रहे थे। डरते-डरते बोले—एक बात कहूँ बहू, बुरा न [illegible]। ज़मानत......

सुखदा ने त्योरियाँ बदलकर कहा—नहीं कदापि नहीं। मैं क्यों जमान दूँ? क्या इसलिए कि अब मैं कभी जबान न खोलूँगी, अपनी आँखों पर प बाँध लूँगी, अपने मुँह पर जाली लगा लूँगी। इससे तो यह कहीं अच्छा है कि अपनी आँखें फोड़ लूँ, ज़बान कटवा दूँ।

समरकान्त की सहिष्णुता अब सीमा तक पहुँच चुकी थी। गरजक बोले—अगर तुम्हारी ज़बान तुम्हारी क़ाबू में नहीं है, तो कटवा लो। अपने जीते-जी यह नहीं देख सकता कि मेरी बहू गिरफ़्तार की जाय और बैठा देखूँ। तुमने हड़ताल कराने के लिए मुझसे पूछ क्यों न लिया? तुम अपने नाम की लाज न हो, मुझे तो है। मैंने जिस मर्यादा रक्षा के लिए अपने बेटे को त्याग दिया, उस मर्यादा को मैं तुम्हारे हाथों न मिटने दूँगा।

बाहर से मोटर का हार्न सुनाई दिया। सुखदा के कान खड़े हो गये वह आवेश में द्वार की ओर चली। फिर दौड़कर लल्लू को नैना की गोद लेकर उसे हृदय से लगाये हुए अपने कमरे में जाकर अपने आभूषण उतारने लगी। समरकान्त का सारा क्रोध कच्चे रंग की भाँति पानी पड़ते ही उड़ गया लपककर बाहर गये और आकर घबड़ाये हुए बोले—बहू, डिप्टी आ गया। मैं ज़मानत देने जा रहा हूँ। मेरी इतनी याचना स्वीकार करो। थोड़े दिनों का मेहमान हूँ। मुझे मर जाने दो, फिर जो कुछ जी में आवे करना।

सुखदा कमरे के द्वार पर आकर दृढ़ता से बोली—मैं ज़मानत न दूँगी, न इस मुआमले की पैरवी करूँगी। मैंने कोई अपराध नहीं किया है।

समरकान्त ने जीवन में कभी हार न मानी थी, पर आज वह इस अभिमानिनी रमणी के सामने परास्त खड़े थे। उसके शब्दों ने जैसे उनके मुँह पर जाली लगा दी। उन्होंने सोचा—स्त्रियों को संसार अबला कहता है। कितनी बड़ी मूर्खता है। मनुष्य जिस वस्तु को प्राणों से भी प्रिय समझता है, वह स्त्री की मुट्ठी में है।

उन्होंने विनय के साथ कहा—लेकिन अभी तुमने भोजन भी तो नहीं किया। खड़ी मुँह क्या ताकती है नैना, क्या भंग खा गई है? जा बहू को खाना खिला दे। अरे ओ महरा! महरा! यह ससुरा न जाने कहाँ मर रहा। समय पर

एक भी आदमी नज़र नहीं आता। तू बहू को ले जा रसोई में नैना, मैं कुछ मिठाई लेता आऊँ। साथ-साथ कुछ खाने को तो ले जाना ही पड़ेगा।

कहार ऊपर बिछावन लगा रहा था। दौड़ा हुआ आकर खड़ा हो गया। समरकान्त ने उसे ज़ोर से एक धौल मारकर कहा—कहाँ था तू? इतनी देर से पुकार रहा हूँ, सुनता ही नहीं! किसके लिए बिछावन लगा रहा है ससुर! बहू जा रही है। जा दौड़कर बाज़ार से अच्छी मिठाई ला। चौकवाली दूकान से लाना।

सुखदा आग्रह के साथ बोली—मिठाई की मुझे बिलकुल ज़रूरत नहीं है और न कुछ खाने ही की इच्छा है। कुछ कपड़े लिये जाती हूँ। वही मेरे लिए काफ़ी हैं।

बाहर से आवाज़ आई—सेठजी, देवीजी को जल्द भेजिये, देर हो रही है।

समरकान्त बाहर आये और अपराधी की भाँति खड़े हो गये।

डिप्टी दुहरे बदन का, रोबदार पर हँसमुख आदमी था, जो और किसी विभाग मे अच्छी जगह न पाने के कारण पुलीस में चला आया था। अनावश्यक अशिष्टता से उसे घृणा थी और यथासाध्य रिश्वत न लेता था। पूछा—कहिये, क्या राय हुई?

समरकान्त ने हाथ बाँधकर कहा—कुछ नहीं सुनती हुज़ूर, समझाकर हार गया। और मैं उसे क्या समझाऊँ, मुझे वह समझती ही क्या है। अब तो आप लोगों की दया का भरोसा है। मुझसे जो ख़िदमत कहिये, उसके लिए हाज़िर हूँ। जेलर साहब से तो आपका रब्त-जब्त होगा ही, उन्हे भी समझा दीजियेगा। कोई तकलीफ न होने पावे। मैं किसी तरह भी बाहर नहीं हूँ। नाज़ुक मिज़ाज औरत है, हुज़ूर।

डिप्टी ने सेठजी को बराबर की कुरसी पर बैठाते हुए कहा—सेठजी, यह बातें उन मुआमलों मे चलती हैं, जहाँ कोई काम बुरी नीयत से किया जाता है। देवीजी अपने लिए कुछ नहीं कर रही हैं। उनका इरादा नेक है, वह हमारे ग़रीब भाइयो के हक़ के लिए लड़ रही हैं। उन्हे किसी तरह की तकलीफ न [illegible]। नौकरी से मजबूर है, वरना यह देवियाँ तो इस लायक है कि उनके

क़दमों पर सिर रखें। ख़ुदा ने सारी दुनिया की नेमतें दे रखी हैं; मगर उन सब पर लात मार दी और हक़ के लिए सब कुछ झेलने को तैयार हैं। इसके लिए गुर्दा चाहिये साहब। मामूली बात नहीं है।

सेठजी ने सन्दूक़ से दस अशर्फ़ियाँ निकाली और चुपके से डिप्टी की जेब में डालते हुए बोले—यह बच्चों के मिठाई खाने के लिए है।

डिप्टी ने अशर्फ़ियाँ जेब से निकालकर मेज पर रख दीं और बोला—आप पुलीसवालों को बिलकुल जानवर ही समझते हैं क्या सेठजी? क्या लाल पगड़ी सिर पर रखना ही इन्सानियत का ख़ून करना है! मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि देवीजी को कोई तकलीफ़ न होने पावेगी। तकलीफ उन्हे दी जाती है जो दूसरों को तकलीफ़ देते हैं। जो गरीबो के हक़ के लिए अपनी ज़िन्दगी क़ुरबान कर दे, उसे अगर कोई सताये, तो वह इंसान नहीं, हैवान भी नहीं, शैतान है। हमारे सीग़े मे ऐसे आदमी है और कसरत से है। मैं ख़ुद फ़रिश्ता नहीं हूँ; लेकिन ऐसे मुआमले में मैं पान तक खाना हराम समझता हूँ। मन्दिरवाले मुआमले में देवीजी जिस दिलेरी से मैदान में आकर गोलियों के सामने खड़ी हो गई थीं, वह उन्हीं का काम था।

सामने सड़क पर जनता का समूह प्रतिक्षण बढ़ता जाता था। बार-बार जय-जयकार-ध्वनि उठ रही थी। स्त्री और पुरुष देवीजी के दर्शनो को भागे चले आते थे।

भीतर नैना और सुखदा में समर छिड़ा हुआ था।

सुखदा ने थाली सामने से हटाकर कहा—मैंने कह दिया, मैं कुछ न खाऊँगी।

नैना ने उसका हाथ पकड़कर कहा—दो-चार कौर ही खा लो भाभी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। फिर न-जाने यह दिन कब आवे।

उसकी आँखे सजल हो गईं।

सुखदा निष्ठुरता से बोली—तुम मुझे व्यर्थ में दिक़ कर रही हो बीबी, मुझे अभी बहुत-सी तैयारियाँ करनी हैं और उधर डिप्टी जल्दी मचा रहा है। देखती नहीं हो, द्वार पर डोली खड़ी है। इस वक्त खाने की किसे सूझती है।

नैना प्रेम-विह्वल कण्ठ से बोली—तुम अपना काम करती रहो, मैं तु कौर बनाकर खिलाती जाऊँगी।

जैसे माता खेलन्दे बच्चे के पीछे दौड़-दौड़कर उसे खिलाती है, उसी त नैना भाभी को खिलाने लगी। सुखदा कभी इस आलमारी के पास जात कभी उस सन्दूक के पास। किसी सन्दूक से सिन्दूर की डिबिया निकालत किसी से साड़ियाँ। नैना एक कौर खिलाकर फिर थाल के पास जाती औ दूसरा कौर लेकर दौड़ती।

सुखदा ने पाँच छः कौर खाकर कहा—बस, अब पानी पिला दो।

नैना ने उसके मुँह के पास कौर ले जाकर कहा—बस यही और ले लो, मे अच्छी भाभी।

सुखदा ने मुँह खोल दिया और ग्रास के साथ आँसू भी पी गई।

'बस एक और!'

'अब एक कौर भी नहीं।'

'मेरी ख़ातिर से।'

सुखदा ने ग्रास ले लिया।

'पानी भी दोगी या खिलाती ही जाओगी?'

'बस एक ग्रास भैया के नाम का और ले लो।'

'ना! किसी तरह नहीं।'

नैना की आँखों में आँसू थे प्रत्यक्ष, सुखदा की आँखों में भी आँसू थे; म छिपे हुए। नैना शोक से विह्वल थी, सुखदा उसे मनोबल से दबाये हुए थी वह एक बार निष्ठुर बनकर चलते-चलाते नैना के मोह-बन्धन को तोड़ दे चाहती थी, पैने शब्दों से उसके हृदय के चारों ओर खाई खोद देना चाह थी, मोह और शोक और वियोग-व्यथा के आक्रमणों से उसकी रक्षा करने लिए, पर नैना की वह छलछलाई हुई आँखें, वह काँपते हुए ओठ, वह विन दीन मुखश्री, उसे निश्शस्त्र किये देती थी।

नैना ने जल्दी-जल्दी पान के बीड़े लगाये और भाभी को खिलाने लगी, उसके दबे हुए आँसू फव्वारे की तरह उबल पड़े। मुँह ढाँपकर रोने लगी सिसकियाँ और गहरी होकर कंठ तक जा पहुँचीं।

सुखदा ने उसे गले से लगाकर सजल शब्दों में कहा—क्यों रोती हो बीबी, बीच बीच में मुलाकात तो होती ही रहेगी। जेल में मुझसे मिलने आना, तो खूब अच्छी-अच्छी चीज़ें बनाकर लाना। दो-चार महीने मे तो मै फिर आ जाऊँगी।

नैना ने जैसे डूबती हुई नाव पर से कहा—मैं ऐसी अभागिन हूँ, कि आप तो डूबी ही थी, तुम्हें भी ले डूबी।

ये शब्द फोड़े की तरह उसी समय से उसके हृदय में टीस रहे थे, जब से उसने सुखदा की गिरफ्तारी की ख़बर सुनी थी, और यह टीस उसकी मोह-वेदना को और भी दुर्दान्त बना रही थी।

सुखदा ने आश्चर्य से उसके मुँह की ओर देखकर कहा—यह तुम क्या कह रही हो बीबी, क्या तुमने पुलीस बुलाई है?

नैना ने ग्लानि से भरे कण्ठ से कहा—यह पत्थर की हवेलीवालों का कुचक्र है (सेठ धनीराम शहर में इसी नाम से प्रसिद्ध थे)। मैं किसी को गालियाँ नहीं देती, पर उनका किया उनके आगे आवेगा। जिस आदमी के लिए एक मुँह से भी आशीर्वाद न निकलता हो, उसका जीना वृथा है।

सुखदा ने उदास होकर कहा—उनका इसमें क्या दोष है बीबी। वह सब हमारे समाज का, हम सबों का दोष है। अच्छा आओ, अब विदा हो जायँ। वादा करो, मेरे जाने पर रोओगी नहीं।

नैना ने उसके गले से लिपटकर सूजी हुई लाल आँखों से मुसकराकर कहा—नहीं रोऊँगी भाभी।

'अगर मैंने सुना कि तुम रो रही हो, तो मैं अपनी सज़ा बढ़वा लूँगी।'

'भैया को तो यह समाचार देना ही होगा?'

'तुम्हारी जैसी इच्छा हो करना। अम्माँ को समझाती रहना।'

'उनके पास कोई आदमी भेजा गया या नहीं?'

'उन्हें बुलाने से और देर ही तो होती। घण्टों न छोड़तीं।'

'सुनकर दौड़ी आवेंगी।'

'हाँ आवेंगी तो, पर रोयेंगी नहीं। उनका प्रेम आँखों मे है। हृदय तक उसकी जड़ नहीं पहुँचती।'

दोनों द्वार की ओर चलीं। नैना ने लल्लू को मा की गोद से उतारकर प्यार करना चाहा; पर वह न उतरा। नैना से बहुत हिला था, पर आज वह अबोध आँखो से देख रहा था—माता कहीं जा रही है। उसकी गोद से कैसे उतरे। उसे छोड़कर वह चली जाय, तो बेचारा क्या कर लेगा।

नैना ने उसका चुम्बन लेकर कहा—बालक बड़े निर्दयी होते हैं।

सुखदा ने मुसकराकर कहा—लड़का किसका है!

द्वार पर पहुँचकर फिर दोनों गले मिलीं। समरकान्त भी ड्योढ़ी पर खड़े थे। सुखदा ने उनके चरणों पर सिर झुकाया। उन्होंने काँपते हुए हाथों से उसे उठाकर आशीर्वाद दिया। फिर लल्लू को कलेजे से लगाकर फूट फूटकर रोने लगे। यह सारे घर को रोने का सिगनल था। आँसू तो पहले ही से निकल रहे थे। वह मूक रुदन अब जैसे बन्धनों से मुक्त हो गया। शीतल, धीर, गम्भीर बुढ़ापा जब विह्वल हो जाता है, तो मानो पिंजरे के द्वार खुल जाते हैं और पक्षियों को रोकना असम्भव हो जाता है। जब सत्तर वर्ष तक संसार के समर में जमा रहनेवाला नायक हथियार डाल दे, तो रंगरूटों को कौन रोक सकता है।

सुखदा मोटर में बैठी। जय-जयकार की ध्वनि हुई। फूलों की वर्षा की गई।

मोटर चल दी।

हजारों आदमी मोटर के पीछे दौड़ रहे थे और सुखदा हाथ उठाकर उन्हें प्रणाम करती जाती थी। यह श्रद्धा, यह प्रेम, यह सम्मान, क्या धन से मिल सकता है? या विद्या से? इसका केवल एक ही साधन है, और वह सेवा है, और सुखदा को अभी इस क्षेत्र में आये हुए ही कितने दिन थे?

सड़क के दोनों ओर नर-नारियों की दीवार खड़ी थी और मोटर मानो उनके हृदय को कुचलती-मसलती चली जाती थी।

सुखदा के हृदय में गर्व न था, उल्लास न था, द्वेष न था, केवल वेदना थी। जनता की इस दयनीय दशा पर, इस अधोगति पर, जो डूबती हुई दशा में तिनके का सहारा पाकर भी कृतार्थ हो जाती है।

कुछ दूर के बाद सड़क पर सन्नाटा था, सावन की निद्रा-सी काली रात संसार को अपने अंचल में सुला रही थी और मोटर अनन्त में स्वप्न की भाँति

उड़ी चली जाती थी। केवल देह में ठण्डी हवा लगने से गति का ज्ञान होता था। इस अन्धकार में सुखदा के अन्तस्तल में एक प्रकाश-सा उदय हुआ। कुछ वैसा ही प्रकाश, जो हमारे जीवन की अन्तिम घड़ियों मे उदय होता है, जिसमें मन की सारी कालिमाएँ, सारी ग्रंथियाँ, सारी विषमताएँ अपने यथार्थ रूप में नज़र आने लगती हैं। तब हमें मालूम होता है कि जिसे हमने अन्धकार में काला देव समझा था, वह केवल तृण का ढेर था। जिसे काला नाग समझा था, वह रस्सी का एक टुकड़ा था। आज उसे अपनी पराजय का ज्ञान हुआ, अन्याय के सामने नहीं, असत्य के सामने नहीं, बल्कि त्याग के सामने और सेवा के सामने। इसी सेवा और त्याग के पीछे तो उसका पति से मतभेद हुआ था, जो अन्त में इस वियोग का कारण हुआ। उन सिद्धान्तो से अभक्ति रखते हुए भी वह उनकी ओर खिंचती चली आती थी और आज वह अपने पति की अनुगामिनी थी। उसे अमर के उस पत्र की याद आई, जो उसने शान्तिकुमार के पास भेजा था और पहली बार पति के प्रति क्षमा का भाव उसके मन में प्रस्फुटित हुआ। इस क्षमा में दया नहीं, सहानुभूति थी, सहयोगिता थी। अब दोनों एक ही मार्ग के पथिक हैं, एक ही आदर्श के उपासक हैं। उनमे कोई भेद नहीं है, कोई वैषम्य नहीं है। आज पहली बार उसका अपने पति से आत्मिक सामञ्जस्य हुआ। जिस देवता को अमंगलकारी समझ रखा था, उसी को आज धूप-दीप से पूजा कर रही थी।

सहसा मोटर रुकी और डिप्टी ने उतरकर सुखदा से कहा—देवीजी, जेल आ गया। मुझे क्षमा कीजियेगा।

सुखदा ऐसी प्रसन्न थी, मानो अपने जीवन-धन से मिलने आई है।

चौथा भाग

१

अमरकान्त को ज्योंही मालूम हुआ, कि सलीम यहाँ का अफ़सर होकर आया है, वह उससे मिलने चला। समझा, खूब गप-शप होगी। यह खयाल तो आया, कहीं उसमें अफसरी की बू न आ गई हो; लेकिन पुराने दोस्त से मिलने की उत्कण्ठा को न रोक सका। बीस-पचीस मील का पहाड़ी रास्ता था। ठण्ड खूब पड़ने लगी थी। आकाश कुहरे की धुन्ध से मटियाला हो रहा था और उस धुन्ध में सूर्य जैसे टटोल-टटोल कर रास्ता ढूँढ़ता हुआ चला जाता था। कभी सामने आ जाता, कभी छिप जाता। अमर दोपहर के बाद चला था। उसे आशा थी, दिन रहते पहुँच जाऊँगा, किन्तु दिन ढलता जाता था और मालूम नहीं अभी और कितना रास्ता बाक़ी है। उसके पास केवल एक देशी कम्बल था। कहीं रात हो गई, तो किसी वृक्ष के नीचे टिकना पड जायगा। देखते ही देखते सूर्यदेव अस्त भी हो गये। अँधेरा जैसे मुँह खोले संसार को निगलने चला आ रहा था। अमर ने क़दम और तेज़ किये। शहर मे दाखिल हुआ, तो आठ बज गये थे।

सलीम उसी वक्त क्लब से लौटा था। ख़बर पाते ही बाहर निकल आया; मगर उसकी सज-धज देखी, तो झिझका और गले मिलने के बदले हाथ बढ़ा दिया। अरदली सामने ही खड़ा था। उसके सामने इस देहाती से किसी प्रकार घनिष्ठता का परिचय देना बडे साहस का काम था। उसे अपने

सजे हुए कमरे मे भी न ले जा सका। अहाते में छोटा-सा बाग़ था। एक वृक्ष के नीचे उसे ले जाकर उसने कहा—यह तुमने क्या धज बना रखी है जी, इतने हूश कब से हो गये? वाह रे आपका कुरता! मालूम होता है डाक का थैला है, और यह डाबलूश जूता किस दिसावर से मँगवाया है! मुझे डर है, कहीं बेगार में न धर लिये जाओ!

अमर वहीं ज़मीन पर बैठ गया और बोला—कुछ ख़ातिरतवाज़ा तो की नहीं, उलटे और फटकार सुनाने लगे। देहातियों में रहता हूँ, जेंटलमैन बनूँ, तो कैसे निबाह हो। तुम ख़ूब आये भाई, कभी-कभी गप-शप हुआ करेगी। उधर की ख़ैरआफ़ियत कहो। यह तुमने नौकरी क्या कर ली। डटकर कोई रोज़गार करते, सूझी भी तो गुलामी।

सलीम ने गर्व से कहा—गुलामी नहीं है जनाब, हुकूमत है। दस पाँच दिन मे मोटर आया जाता है, फिर देखना किस शान से निकलता हूँ, मगर तुम्हारी यह हालत देखकर दिल टूट गया। तुम्हे यह भेस छोड़ना पड़ेगा।

अमर के आत्म-सम्मान को चोट लगी। बोला—मेरा ख़याल था, और है, कि कपडे महज़ जिस्म की हिफ़ाज़त के लिए हैं, शान दिखाने के लिए नहीं। सलीम ने सोचा, कितनी लचर-सी बात है। देहातियों के साथ रहकर अक़्ल भी खो बैठा। बोला—खाना भी तो महज़ जिस्म की परवरिश के लिए खाया जाता है, तो सूखे चने क्यों नहीं चबाते। सूखे गेहूँ क्यों नहीं फाँकते। क्यों हलवा और मलाई उडाते हो!

'मै सूखे चने ही चबाता हूँ।'

'झूठे हो। सूखे चनो पर ही यह सीना निकल आया है। मुझसे ड्योढ़े हो गये, मैं तो शायद पहचान भी न सकता।'

'जी हाँ, यह सूखे चनों ही की बरकत है। ताक़त साफ़ हवा और सयम में है। हलवा-पूरी से ताक़त नहीं होती, सीना नहीं निकलता। पेट निकल आता है। २५ मील पैदल चला आ रहा हूँ। है दम? जरा पाँच ही मील चलो मेरे साथ।'

'मुआफ कीजिये। किसी ने कहा है—बडी रानी, तो आओ पीसो मेरे। तुम्हें पीसना मुबारक हो। तुम यहाँ कर क्या रहे हो?'

'अब तो आये हो, ख़ुद ही देख लोगे। मैंने ज़िन्दगी का जो नक़्शा दिल में खींचा था, उसी पर अमल कर रहा हूँ। स्वामी आत्मानन्द के आ जाने से काम में और भी सहूलियत हो गई है।'

ठण्ड ज्यादा थी। सलीम को मजबूर होकर अमरकान्त को अपने कमरे में लाना पड़ा।

अमर ने देखा, कमरे में गद्देदार कोच हैं, पीतल के गमले हैं, ज़मीन पर क़ालीन है, मध्य में संगमरमर की गोल मेज है।

अमर ने दरवाज़े पर जूते उतार दिये और बोला—केवाड़ बन्द कर दूँ, नहीं कोई देख ले, तो तुम्हे शर्मिन्दा होना पड़े। तुम साहब ठहरे।

सलीम पते की बात सुनकर झेंप गया। बोला—कुछ-न-कुछ ख़याल तो होता ही है भई, हालाँकि मैं फैशन का ग़ुलाम नहीं हूँ। मैं भी सादा जिन्दगी बसर करना चाहता था; लेकिन अब्बाजान की फरमायश कैसे टालता। प्रिंसिपल तक कहते थे, तुम पास नहीं हो सकते, लेकिन जब रिजल्ट निकला, तो सब दंग रह गये। तुम्हारे ही ख्याल से मैंने यह ज़िला पसन्द किया। कल तुम्हें कलक्टर से मिलाऊँगा। अभी मि० ग़ज़नवी से तो तुम्हारी मुलाक़ात न होगी। बड़ा शौकीन आदमी है; मगर दिल का साफ। पहली ही मुलाक़ात में उससे मेरी बेतकल्लुफी हो गई। चालीस के करीब होंगे; मगर कम्पेबाज़ी नहीं छोड़ी।

अमर के विचार में अफसरों को सच्चरित्र होना चाहिये था। सलीम सच्चरित्रता का क़ायल न था। दोनों मित्रों मे बहस हो गई।

सलीम ने कहा—ख़ुश्क आदमी कभी अच्छा अफसर नहीं हो सकता।

अमर बोला—सच्चरित्र होने के लिए ख़ुश्क होना ज़रूरी नहीं।

'मैंने तो मुल्लाओं को हमेशा ख़ुश्क ही देखा। अफसरों के लिए महज़ क़ानून की पाबन्दी काफी नहीं। मेरे ख़याल मे तो थोड़ी-सी कमज़ोरी इन्सान का ज़ेवर है। मैं ज़िन्दगी में तुमसे ज्यादा कामयाब रहा। मुझे दावा है, कि मुझसे कोई नाराज़ नहीं है। तुम अपनी बीबी तक को ख़ुश न रख सके। मैं इस मुल्लापन को दूर से सलाम करता हूँ। तुम किसी जिले के अफसर बना दिये जाओ तो एक दिन न रह सको। किसी को ख़ुश न रख सकोगे।'

अमर ने बहस को तूल देना उचित न समझा, क्योंकि बहस में वह बहु गर्म हो जाया करता था।

भोजन का समय आ गया था। सलीम ने एक शाल निकालकर अम को ओढा दिया। एक रेशमी स्लीपर उसके पहनने को दिया। फिर दोन ने भोजन किया। एक मुद्दत के बाद अमर को ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला मास तो उसने न खाया, लेकिन और सब चीजें मजे से खाईं।

सलीम ने पूछा—जो चीज खाने की थी, वह तो आपने निकालकर रख दी

अमर ने अपराधी-भाव से कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है; लेकिन भीत से इच्छा नहीं होती। और कहो वहाँ की क्या ख़बरें हैं? कहीं शादी-बाद ठीक हुई। इतनी कसर बाकी है, उसे भी पूरी कर लो।

सलीम ने चुटकी ली—मेरी शादी की फ़िक्र छोड़ो, पहले यह बताओ, कि सकीना से तुम्हारी शादी कब हो रही है। वह बेचारी तुम्हारे इन्तजार मे बैठी हुई है।

अमर का चेहरा फीका पड गया। यह ऐसा प्रश्न था, जिसका उत्तर देन उसके लिए संसार में सबसे मुश्किल काम था। मन की जिस दशा मे वह सकीना की ओर लपका था, वह दशा अब न रही थी। तब सुखदा उसके जीवन में एक बाधा के रूप में खडी थी। दोनो की मनोवृत्तियो में कोई मेल न था। दोनों जीवन को भिन्न-भिन्न कोण से देखते थे। एक में भी यह सामर्थ्य न थी, कि वह दूसरे को हम-ख़याल बना लेता; लेकिन अब वह हालत न थी। किसी दैवी विधान ने उनके सामाजिक बन्धन को और कसकर उनकी आत्माओं को मिला दिया था। अमर को पता नहीं सुखदा ने उसे क्षमा प्रदान की या नहीं, लेकिन वह अब सुखदा का उपासक था। उसे आश्चर्य होता था, कि विलासिनी सुखदा ऐसी तपस्विनी क्योंकर हो गई और यह आश्चर्य उसके अनुराग को दिन-दिन प्रबल करता जाता था। उसे अब अपने उस असन्तोष का कारण अपनी ही अयोग्यता में छिपा हुआ मालूम होता था; अगर वह अब तक सुखदा को कोई पत्र न लिख सका, तो इसके दो कारण थे। एक तो लज्जा और दूसरे अपनी पराजय की कल्पना। शासन का वह पुरुषो-भाव मानो उसका परिहास कर रहा था। सुखदा स्वच्छन्द रूप से अपने

लिए एक नया मार्ग निकाल सकती है, उसकी उसे लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है, यह विचार उसके अनुराग की गर्दन को जैसे दबा देता था। वह अब अधिक से अधिक उसका अनुगामी हो सकता है। सुखदा उसे समरक्षेत्र में जाते समय केवल केसरिया तिलक लगाकर संतुष्ट नहीं है, वह उससे पहले समर में कूदी जा रही है, यह भाव उसके आत्म-गौरव को चोट पहुँचाता था।

उसने सिर झुकाकर कहा—मुझे अब तजर्बा हो रहा है, कि मैं औरतों को खुश नहीं रख सकता। मुझमें वह लियाक़त ही नहीं है। मैंने तय कर लिया है, कि सकीना पर यह ज़ुल्म न करूँगा।

'तो कम से कम अपना फ़ैसला उसे लिख तो देते।'

अमर ने हसरत-भरी आवाज़ मे कहा—यह काम इतना आसान नहीं है सलीम, जितना तुम समझते हो। उसे याद करके मैं अब भी बे-ताब हो जाता हूँ। उसके साथ मेरी ज़िन्दगी जन्नत बन जाती। उसकी इस वफ़ा पर मर जाने को जी चाहता है कि अभी तक...

यह कहते-कहते अमर का कण्ठ-स्वर भारी हो गया।

सलीम ने एक क्षण के बाद कहा—मान लो मैं उसे अपने साथ शादी करने पर राजी कर लूँ, तो तुम्हे नागवार होगा?

अमर को आँखें-सी मिल गईं—नहीं भाई जान, बिलकुल नहीं। अगर तुम उसे राज़ी कर सको, तो मैं समझूँगा, तुमसे ज्यादा खुशनसीब आदमी दुनिया में नहीं है; लेकिन तुम मज़ाक़ कर रहे हो। तुम किसी नवाबज़ादी से शादी करने का ख़याल कर रहे होगे।

दोनों खाना खा चुके और हाथ धोकर दूसरे कमरे मे लेटे।

सलीम ने हुक्के का कश लगाकर कहा—क्या तुम समझते हो, मै मज़ाक़ कर रहा हूँ? उस वक्त मैंने ज़रूर मज़ाक़ किया था; लेकिन इतने दिनों मे मैंने उसे ख़ूब परखा। उस वक्त तुम उससे न मिल जाते, तो इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि वह इस वक्त कहीं और होती। तुम्हें पाकर उसे फिर किसी की ख्वाहिश नहीं रही। तुमने उसे कीचड़ से निकालकर मन्दिर की देवी बना दिया। और देवी की जगह बैठकर वह सचमुच देवी हो गई। अगर तुम उससे शादी कर सकते हो, तो शौक से कर लो। मै तो मस्त हूँ ही, दिलचस्पी का

दूसरा सामान तलाश कर लूँगा, लेकिन तुम न करना चाहो, तो मेरे रास्ते से हट जाओ। फिर अब तो तुम्हारी बीवी भी तुम्हारे ही पंथ में आ गईं; अब तुम्हारे लिए उससे मुँह फेरने का कोई सबब नहीं है।

अमर ने हुक्का अपनी तरफ खींचकर कहा—मैं बड़े शौक से तुम्हारे रास्ते से हट जाता हूँ, लेकिन एक बात बतला दो—तुम सकीना को भी दिलचस्पी की चीज़ समझ रहे हो, या उसे दिल से प्यार करते हो।

सलीम उठ बैठे—देखो अमर, मैंने तुमसे कभी परदा नहीं रखा इसलिए आज भी परदा न रखूँगा। सकीना प्यार करने की चीज़ नहीं, पूजने की चीज़ है। कम से कम मुझे वह ऐसी ही मालूम होती है। मैं क़सम तो नहीं खाता कि उससे शादी हो जाने पर मै कण्ठी-माला पहन लूँगा; लेकिन इतना जानता हूँ, कि उसे पाकर मै ज़िन्दगी मे कुछ कर सकूँगा। अब तक मेरी ज़िन्दगी सैलानीपन में गुजरी है। वह मेरी बहती हुई नाव का लंगर होगी। इस लंगर के बग़ैर नहीं जानता मेरी नाव किस भँवर मे पड़ जायगी। मेरे लिए ऐसी औरत की ज़रूरत है, जो मुझ पर हुकूमत करे, मेरी लगाम को खींचती रहे।

अमर को अपना जीवन इसलिए भार था, कि वह अपनी स्त्री पर शासन न कर सकता था। सलीम ऐसी स्त्री चाहता था, जो उस पर शासन करे, और मज़ा यह था कि दोनों एक ही सुन्दरी में मनोनीत लक्षण देख रहे थे।

अमर ने कुतूहल से कहा—मैं तो समझता हूँ, सकीना में यह बात नहीं है जो तुम चाहते हो।

सलीम जैसे गहराई में डूबकर बोला—तुम्हारे लिए नहीं है; मगर मेरे लिए है। वह तुम्हारी पूजा करती है, मैं उसकी पूजा करता हूँ।

इसके बाद कोई दो-ढाई बजे रात तक दोनों में इधर-उधर की बातें होती रहीं। सलीम ने उस नये आन्दोलन की भी चर्चा की, जो उसके सामने शुरू हो चुका था, और यह भी कहा, कि उसके सफल होने की कोई आशा नहीं है। सम्भव है मुआमला तूल खींचे।

अमर ने विस्मय के साथ कहा—तब तो यों कहो सुखदा ने वहाँ नई जान डाल दी।

'तुम्हारी सास ने अपनी सारी जायदाद सेवाश्रम के नाम वक्फ़ कर दी।'

'अच्छा!'

'और तुम्हारे पिदर बुज़ुर्गवार भी अब क़ौमी कामों में शरीक़ होने लगे हैं।'

'तब तो वहाँ पूरा इनक़लाब हो गया!'

सलीम तो सो गया; लेकिन अमर दिन-भर का थका होने पर भी नींद
ा न बुला सका। वह जिन बातों की कल्पना भी न कर सकता था, वह
ख़ुदा के हाथों पूरी हो गईं; मगर कुछ भी हो, है वही अमीरी, ज़रा बदली
ई सूरत में। नाम की लालसा है और कुछ नहीं; मगर फिर उसने अपने
ा धिक्कारा। तुम किसी के अन्तःकरण की बात क्या जानते हो। आज
ज़ारों आदमी राष्ट्र की सेवा मे लगे हुए हैं। कौन कह सकता है कौन स्वार्थी
, कौन सच्चा सेवक?

न जाने कब उसे भी नींद आ गई।



अमरकान्त के जीवन में एक नया उत्साह चमक उठा है। ऐसा जान पडता है, कि अपनी जीवन-यात्रा में वह अब एक नये घोड़े पर सवार हो गया है। पहले पुराने घोड़े को एड़ और चाबुक लगाने की ज़रूरत पड़ती थी। यह नया घोड़ा कनौतियाँ खडी किये सरपट भागता चला जाता है। स्वामी आत्मानन्द, काशी, पयाग, गूदड़ सभी से उसकी तकरार हो जाती है। इन लोगों के पास वही पुराने घोड़े हैं। दौड में पिछड़ जाते हैं। अमर उनकी मन्द गति पर बिगडता है—इस तरह तो काम नहीं चलने का स्वामीजी। आप काम करते हैं, कि मज़ाक़ करते हैं। इससे तो कहीं अच्छा था, कि आप सेवाश्रम में बने रहते।

आत्मानन्द ने अपने विशाल वक्ष को तानकर कहा—बाबा मेरे से अब और नहीं दौड़ा जाता। जब लोग स्वास्थ्य के नियमों पर ध्यान न देंगे, तो आप बीमार होंगे, आप मरेंगे। मैं नियम बतला सकता हूँ, पालन करना, तो उनके ही अधीन है।

अमरकान्त ने सोचा—यह आदमी जितना मोटा है, उतनी ही मोटी इसकी अक्ल भी है। खाने को डेढ़ सेर चाहिये, काम करते ज्वर आता है। इन्हें संन्यास लेने से न-जाने क्या लाभ हुआ।

उसने आँखों में तिरस्कार भरकर कहा—आपका काम केवल नियम बताना नहीं है, उनसे नियमों का पालन कराना भी है। उनमें ऐसी शक्ति डालिये, कि वे नियमों का पालन किये बिना रह ही न सकें। उनका स्वभाव ही ऐसा हो जाय। मैं आज पिचौरा से निकला; गाँव मे जगह-जगह कूड़े के ढेर दिखाई दिये। आप कल उसी गाँव से हो आये हैं; क्यों वह कूड़ा साफ़ नहीं कराया गया? आप खुद फावड़ा लेकर क्यों नहीं पिल पड़े? गेरुए वस्त्र पहन लेने ही से आप समझते हैं, लोग आपकी शिक्षा को देव-वाणी समझेंगे?

आत्मानन्द ने सफाई दी—मैं कूड़ा साफ़ करने लगता, तो सारा दिन पिचौरा में ही लग जाता। मुझे पाँच-छः गाँवों का दौरा करना था।

'यह आपका कोरा अनुमान है। मैंने सारा कूड़ा आध घण्टे में साफ कर दिया। मेरे फावड़ा हाथ में लेने की देर थी, सारा गाँव जमा हो गया और बात-की-बात में सारा गाँव झक हो गया।'

फिर वह गूदड़ चौधरी की ओर फिरा—तुम भी दादा अब काम मे ढिलाई कर रहे हो। मैंने कल एक पञ्चायत में लोगों को शराब पीते पकड़ा। सौतड़े की बात है। किसी को मेरे आने की ख़बर तो थी नहीं, लोग आनन्द से बैठे हुए थे और बोतलें सरपञ्च महोदय के सामने रखी हुई थीं। मुझे देखते ही तुरन्त बोतलें उड़ा दी गईं और लोग गम्भीर बनकर बैठ गये। मैं दिखावा नहीं चाहता, ठोस काम चाहता हूँ।

अमर ने अपनी लगन, उत्साह, आत्म-बल और कर्मशीलता से अपने सभी सहयोगियों में सेवा-भाव उत्पन्न कर दिया था और उन पर शासन भी करने लगा था। सभी उसका रोब मानते थे। उसके ग़ुलाम थे।

चौधरी ने बिगड़कर कहा—तुमने कौन गाँव बताया, सौताड़ा ? मै आज ही उसके चौधरी को बुलाता हूँ। वही हरखलाल है। जन्म का पियक्कड़। दो फे सज़ा काट आया है। मैं आज ही उसे बुलाता हूँ।

अमर ने जाँघ पर हाथ पटककर कहा—फिर वही डाट-फटकार की बात ! रे दादा ! डाट-फटकार से कुछ न होगा। दिलों में पैठिये। ऐसी हवा ला दीजिये कि ताड़ी-शराब से लोगो को घृणा हो जाय। आप दिन भर अपना ाम करेंगे और चैन से सोयेंगे, तो यह काम हो चुका। यह समझ लो कि हमारी रादरी चेत जायगी, तो बाम्हन-ठाकुर आप ही चेत जायँगे।

गूदड़ने हार मानकर कहा—तो भैया इतना बूता तो अब मुझमें नहीं रहा कि न भर काम करूँ और रात भर दौड़ लगाऊँ। काम न करूँ, तो भोजन हाँ से आवे।

अमरकान्त ने उसे हिम्मत हारते देखकर सहास मुख से कहा—कितना बड़ा ट तुम्हारा है दादा, कि सारे दिन काम करना पड़ता है। अगर इतना बड़ा ट है, तो उसे छोटा करना पड़ेगा।

काशी और पयाग ने देखा कि इस वक्त सबके ऊपर फटकार पड़ रही है, तो हाँ से खिसक गये।

पाठशाले का समय आ गया था। अमरकान्त अपनी कोठरी मे किताब ने गया, तो देखा मुन्नी दूध लिये खड़ी है। बोला—मैंने तो कह दिया था, मैं ध न पिऊँगा, फिर क्यों लाईं ?

आज कई दिनो से मुन्नी अमर के व्यवहार में एक प्रकार की शुष्कता अनु-व कर रही थी। उसे देखकर अब उनके मुख पर उल्लास की झलक नहीं ाती। उससे अब बिना विशेष प्रयोजन के बोलते भी कम हैं। उसे ऐसा ान पड़ता है कि यह मुझसे भागते हैं। इसका कारण वह कुछ नहीं समझ कती। यह काँटा उसके मन में कई दिन से खटक रहा है। आज वह इस ाँटे को निकाल डालेगी।

उसने अविचलित भाव से कहा—क्यो नहीं पियेंगे, सुनूँ ?

अमर पुस्तकों का एक बण्डल उठाता हुआ बोला—अपनी इच्छा है। नहीं ाता—तुम्हें मैं कष्ट नहीं देना चाहता।

मुन्नी ने तिरछी आँखो से देखा—यह तुम्हे कब से मालूम हुआ कि तुम्हारे लिए दूध लाने मे मुझे बहुत कष्ट होता है। और अगर किसी को कष्ट उठाने ही में सुख मिलता हो तो ?

अमर ने हारकर कहा—अच्छा भाई, झगड़ा न करो, लाओ पी लूँ।

एक ही साँस में सारा दूध कड़वी दवा की तरह पीकर अमर चलने लगा, तो मुन्नी ने द्वार छोड़कर कहा—बिना अपराध के तो किसी को सज़ा नहीं दी जाती।

अमर द्वार पर ठिठककर बोला—तुम तो जाने क्या बक रही हो। मुझे देर हो रही है।

मुन्नी ने विरक्त भाव धारण किया—तो मैं तुम्हे रोक तो नहीं रही हूँ, जाते क्यों नहीं।

अमर कोठरी के बाहर पाँव न निकाल सका।

मुन्नी ने फिर कहा—क्या मैं इतना भी नहीं जानती कि मेरा तुम्हारे ऊपर कोई अधिकार नहीं है ? तुम आज चाहो, तो कह सकते हो खबरदार, मेरे पास मत आना ! और मुँह से चाहे न कहते हो, पर व्यवहार से रोज़ ही कह रहे हो। आज कितने दिनों से देख रही हूँ, लेकिन बेहयाई करके आती हूँ, बोलती हूँ, खुशामद करती हूँ। अगर इस तरह आँखे फेरनी थीं, तो पहले ही से उस तरह क्यों न रहे ; लेकिन मैं क्या बकने लगी। तुम्हे देर हो रही है, जाओ।

अमरकान्त ने जैसे रस्सी तुड़ाने को ज़ोर लगाकर कहा—तुम्हारी कोई बात मेरी समझ में नहीं आ रही है, मुन्नी। मैं तो जैसे पहले रहता था, वैसे ही अब भी रहता हूँ। हाँ, इधर काम अधिक होने से ज़्यादा बातचीत का अवसर नहीं मिलता।

मुन्नी ने आँखे नीची करके गूढ़ भाव से कहा—तुम्हारे मन की बात मैं समझ रही हूँ ; लेकिन वह बात नहीं है। तुम्हें भरम हो रहा है।

अमरकान्त ने आश्चर्य से कहा—तुम तो पहेलियों में बातें करने लगीं।

मुन्नी ने उसी भाव से जवाब दिया—आदमी का मन फिर जाता है, तो बातें भी पहेली-सी लगती हैं।

फिर वह दूध का खाली कटोरा उठाकर जल्दी से चली गई।

अमरकान्त का हृदय मसोसने लगा। मुन्नी जैसे सम्मोहन-शक्ति से उसे अपनी ओर खींचने लगी। 'तुम्हारे मन की बात मैं समझ रही हूँ; लेकिन तुम्हें भ्रम हो रहा है।' यह क्या किसी गहरे खड्ड की भाँति उसके हृदय को भयभीत कर रहा था। उसमें उतरते दिल काँपता था, पर रास्ता उसी खड्ड में से जाता था।

वह न-जाने कितनी देर अचेत सा खड़ा रहा। सहसा आत्मानन्द ने पुकारा—क्या आज शाला बन्द रहेगी?





इस इलाके के ज़मींदार एक महन्तजी थे। कारकुन और मुख़्तार उन्हीं के चेले-चापड़ थे। इसलिए लगान बराबर वसूल होता जाता था। ठाकुरद्वारे में कोई-न-कोई उत्सव होता ही रहता था। कभी ठाकुरजी का जन्म है, कभी ब्याह है, कभी यज्ञोपवीत है, कभी झूला है, कभी जल-विहार है। असामियों को इन अवसरों पर बेगार देनी पड़ती थी, भेंट-न्योछावर, पूजा-चढ़ावा आदि नामों से दस्तूरी चुकानी पड़ती थी; लेकिन धर्म के मुआमले में कौन मुँह खोलता। धर्म संकट सबसे बड़ा संकट है। फिर इलाके के काश्तकार सभी नीच जातियों के लोग थे। गाँव पीछे दो-चार घर ब्राह्मण-क्षत्रियों के थे भी, तो उनकी सहानुभूति असामियों की ओर न होकर महन्तजी की ओर थी। किसी-न-किसी रूप में वे सभी महन्तजी के सेवक थे। असामियों को उन्हें भी प्रसन्न रखना पड़ता था। बेचारे एक तो ग़रीब, ऋण के बोझ से लदे हुए, दूसरे मूर्ख, न कायदा जाने न कानून। महन्तजी जितना चाहें इज़ाफ़ा करें, जब चाहें बेदख़ल करें, किसी मे बोलने का साहस न था। अकसर खेतों का लगान इतना बढ़ गया था, कि सारी उपज लगान के बराबर भी

न पहुँचती थी, किन्तु लोग भाग्य को रोकर, भूखे-नंगे रहकर, कुत्तों की मौत मरकर, खेत जोतते जाते थे। करें क्या! कितनों ही ने जाकर शहरों में नौकरी कर ली थी। कितने ही मज़दूरी करने लगे थे। फिर भी असामियों की कमी न थी। कृषि-प्रधान देश में खेती केवल जीविका का साधन नहीं है, सम्मान की वस्तु भी है। गृहस्थ कहलाना गर्व की बात है। किसान गृहस्थी में अपना सर्वस्व खोकर विदेश जाता है, वहाँ से धन कमाकर लाता है और फिर गृहस्थी करता है। मान-प्रतिष्ठा का मोह औरों की भाँति उसे भी घेरे रहता। वह गृहस्थ रहकर जीना और गृहस्थी ही में मरना भी चाहता है। उसका बाल-बाल कर्ज़ से बँधा हो; लेकिन द्वार पर दो-चार बैल बाँधकर वह अपने को धन्य समझता है। उसे साल में ३६० दिन आधे पेट खाकर रहना पड़े, पुआल में घुसकर रातें काटनी पड़ें, बेबसी से जीना और बेकसी से मरना पड़े, कोई चिन्ता नहीं, वह गृहस्थ तो है। यह गर्व उसकी सारी दुर्गति की पुरौती कर देता है।

लेकिन इस साल अनायास ही जिंसों का भाव गिर गया। इतना गिर गया, जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज़ था, किसान अपनी उपज बेच-बाचकर लगान दे लेता था, लेकिन जब दो और तीन की जिंस एक में बिके, तो किसान क्या करे। कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तूरियाँ दे, कहाँ से कर्ज चुकाये। विकट समस्या आ खड़ी हुई; और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मन्दी थी। चार सेर का गुड़ कोई दस सेर में भी नहीं पूछता। आठ सेर का गेहूँ डेढ़ रुपये मन में भी महँगा है। ३०) मन का कपास १०) में जाता है, १६) मन का सन ४) में। किसानों ने एक-एक दाना बेच डाला, भूसे का एक तिनका भी न रखा; लेकिन यह सब कुछ करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके। और ठाकुरद्वारे में वही उत्सव थे, वही जलविहार थे। नतीजा यह हुआ, कि इलके में हाहाकार मच गया। इधर कुछ दिनों से स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त के उद्योग से इलाक़े में विद्या का कुछ प्रचार हो रहा था और कई गाँवों में लोगों ने दस्तूरी देना बन्द कर दिया था। महन्तजी के प्यादे और कारकुन पहले ही से जले बैठे थे। यों तो दाल न

चलती थी। बक़ाया लगान ने उन्हें अपने दिल का ग़ुबार निकालने का मौक़ा दे दिया।

एक दिन गंगा-तट पर इस समस्या पर विचार करने के लिए एक पंचायत हुई। सारे इलाके के स्त्री-पुरुष जमा हुए, मानो किसी पर्व का स्नान करने आये हों। स्वामी आत्मानन्द सभापति चुने गये।

पहले भोला चौधरी खड़े हुए। वह पहले किसी अफसर के कोचवान थे। अब नये साल से फिर खेती करने लगे थे। लम्बी नाक, काला रंग, बड़ी बड़ी मूँछें। और बड़ी-सी पगड़ी। मुँह पगड़ी में छिप गया था। बोले—पञ्चो, हमारे ऊपर जो लगान बँधा हुआ है, वह तेजी के समय का है। इस मंदी में वह लगान देना हमारे क़ाबू से बाहर है। अबकी अगर बैल-बधिया बेचकर दे भी दें, तो आगे क्या करेंगे। बस हमें इसी बात की तसफिया करना है। मेरी गुजारस तो यही है कि हम सब मिलकर महन्त महाराज के पास चलें और उनसे अरज-मारूज करें। अगर वह न सुनें, तो हाकिम जिला के पास चलना चाहिये। मैं औरों की नहीं कहता। मैं गंगा माता की क़सम खाके कहता हूँ, कि मेरे घर में छटाँक भर भी अन्न नहीं है, और, जब मेरा यह हाल है, तो और सभों का भी यही हाल होगा। उधर महन्तजी के यहाँ वही बहार है। अभी परसों एक हज़ार साधुओं को आम की पंगत दी गई है। बनारस और लखनऊ से कई डब्बे आमों के आये हैं। आज सुनते हैं फिर मलाई की पंगत है। हम भूखों मरते हैं, वहाँ मलाई उड़ती है। उस पर हमारा रकत चूसा जा रहा है। बस यही मुझे पञ्चों से कहना है।

गूदड़ ने धँसी हुई आँखें फाड़कर कहा—महन्तजी हमारे मालिक हैं, अन्न-दाता हैं, महात्मा हैं। हमारा दुःख सुनकर ज़रूर से ज़रूर उन्हें हमारे ऊपर दया आवेगी; इसलिए हमें भोला चौधरी की सलाह मञ्ज़ूर करनी चाहिये। अमर भैया हमारी ओर से बातचीत करेंगे हम और कुछ नहीं चाहते। बस हमें और हमारे बाल-बच्चों को आध-आध सेर रोजीना के हिसाब से दिया जाय। उपज जो कुछ हो वह सब महन्तजी ले जायँ। हम घी-दूध नहीं माँगते, दूध-मलाई नहीं माँगते। ख़ाली आध सेर मोटा अनाज माँगते हैं। इतना भी न

मिलेगा, तो हम खेती न करेंगे। मजूरी और बीज किसके घर से लायँगे। हम खेत छोड़ देंगे इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं है।

सलोनी ने हाथ चमकाकर कहा—खेत क्यों छोड़े ? बाप-दादों की निसानी है। उसे नहीं छोड़ सकते। खेत पर परान दे दूँगी। एक था, तब दो हुए, तब चार हुए, अब क्या धरती सोना उगलेगी ?

अलगू कोरी बिज्जू-सी आँखें निकालकर बोला—भैया, मैं तो बात बेलाग कहता हूँ, महन्त के पास चलने से कुछ न होगा। राजा ठाकुर हैं। कहीं क्रोध आ गया, तो पिटवाने लगेंगे। हाकिम के पास चलना चाहिये। गोरों में फिर भी दया है।

आत्मानन्द ने सभों का विरोध किया—मैं कहता हूँ, किसी के पास जाने से कुछ नहीं होगा। तुम्हारी थाली की रोटी तुमसे कहे मुझे न खाओ, तो तुम मानोगे ?

चारों तरफ से आवाज़ें आईं—कभी नहीं मान सकते।

'तो तुम जिनकी थाली की रोटियाँ हो, वह कैसे मान सकते हैं !'

बहुत-सी आवाज़ों ने समर्थन किया—कभी नहीं मान सकते हैं।

'महन्त को उत्सव मनाने को रुपए चाहिये। हाकिमों को बड़ी-बड़ी तलब चाहिये। उनकी तलब में कमी नहीं हो सकती। वे अपनी शान नहीं छोड़ सकते। तुम मरो या जियो उनकी बला से। वह तुम्हें क्यों छोड़ने लगे।

बहुत-सी आवाज़ों ने हामी भरी—कभी नहीं छोड़ सकते।

अमरकान्त स्वामीजी के पीछे बैठा हुआ था। स्वामीजी का यह रुख देखकर घबड़ाया, लेकिन सभापति को कैसे रोके ? यह तो वह जानता था, यह गर्म मिजाज का आदमी है, लेकिन इतनी जल्द इतना गर्म हो जायगा, इसकी उसे आशा न थी। आखिर यह महाशय चाहते क्या हैं ?

आत्मानन्द गरजकर बोले—तो अब तुम्हारे लिए कौन-सा मार्ग है ? अगर मुझसे पूछते हो, और तुम लोग आज परन करो कि उसे मानोगे, तो मैं बता सकता हूँ, नहीं तुम्हारी इच्छा।

बहुत-सी आवाज़ें आईं—ज़रूर बतलाइये स्वामीजी, बतलाइये।

जनता चारों ओर से खिसककर और समीप आ गई। स्वामीजी उनके

हृदय को स्पर्श कर रहे हैं, यह उनके चेहरों से झलक रहा था। जन-रुचि सदैव उग्र की ओर होती है।

आत्मानन्द बोले—तो आओ, आज हम सब चलकर महन्तजी का मकान और ठाकुरद्वारा घेर लें और जब तक वह लगान बिलकुल न छोड़ दें, कोई उत्सव न होने दें।

बहुत-सी आवाजें आईं—हम लोग तैयार हैं।

'खूब समझ लो, कि वहाँ तुम पान-फूल से पूजे न जाओगे।'

'कुछ परवाह नहीं। मर तो रहे हैं। सिसक-सिसककर क्यों मरें!'

'तो इसी वक्त चलो। हम दिखा दें कि ..'

सहसा अमर ने खड़े होकर प्रदीप्त नेत्रों से कहा—ठहरो!

समूह में सन्नाटा छा गया। जो जहाँ था, वहीं खड़ा रह गया।

अमर ने छाती ठोंककर कहा—जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो, वह उद्धार का रास्ता नहीं है—सर्वनाश का रास्ता है। तुम्हारा बैल अगर बीमार पड़ जाय, तो तुम उसे जोतोगे?

किसी तरफ से कोई आवाज़ न आई।

'तुम पहले उसकी दवा करोगे, और जब तक वह अच्छा न हो जायगा, उसे न जोतोगे; क्योंकि तुम बैल को मारना नहीं चाहते। उसके मरने से तुम्हारे खेत परती पड़ जायँगे।'

गूदड़ बोले—बहुत ठीक कहते हो भैया।

'घर में आग लगने पर हमारा क्या धर्म है? क्या हम आग को फैलने दें और घर की बची-बचाई चीज़ें भी लाकर उसमें डाल दें?'

गूदड़ ने कहा—कभी नहीं। कभी नहीं।

'क्यों? इसीलिए कि हम घर को जलाना नहीं, बचाना चाहते हैं। हमें इस घर में रहना है। उसी में जीना है। यह विपत्ति कुछ हमारे ही ऊपर नहीं पड़ी है। सारे देश में यही हाहाकार मचा हुआ है। हमारे नेता इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ हमें भी चलना है।'

उसने एक लम्बा भाषण किया; पर वही जनता जो उसका भाषण सुनकर

नस्त हो जाती थी, आज उदासीन बैठी थी। उसका सम्मान सभी करते थे, इसीलिए कोई ऊधम न हुआ, कोई धमचख न मचा; पर जनता पर कोई असर न हुआ। आत्मानन्द इस समय जनता का नायक बना हुआ था।

सभा बिना कुछ निश्चय किये उठ गई; लेकिन बहुमत किस तरफ़ है, यह किसी से छिपा न था।



अमर घर लौटा, तो बहुत हताश था। अगर जनता को शान्त करने का उपाय न किया गया, तो अवश्य उपद्रव हो जायगा। उसने महन्तजी से मिलने का निश्चय किया। इस समय उसका चित्त इतना उदास था कि एक बार जी में आया, यहाँ से छोड़-छाड़कर चला जाय। उसे अभी तक यह अनुभव न हुआ था कि जनता सदैव तेज़ मिज़ाजों के पीछे चलती है। वह न्याय और धर्म, हानि-लाभ, अहिंसा और त्याग, सब कुछ समझाकर भी आत्मानन्द के फूँके हुए जादू को उतार न सका। आत्मानन्द इस वक्त यहाँ मिल जाते, तो दोनों मित्रों में जरूर लड़ाई हो जाती; लेकिन वह आज ग़ायब थे। उन्हें आज घोड़े का आसन मिल गया था। किसी गाँव में संगठन करने चले गये थे।

आज अमर का कितना अपमान हुआ। किसी ने उसकी बातों पर कान तक न दिया। उनके चेहरे कह रहे थे, तुम क्या बकते हो, तुमसे हमारा उद्धार न होगा। इस घाव पर कोमल शब्दों के मरहम की जरूरत थी—कोई उसे लेटाकर उसके घाव को फाहे से धोये, उस पर शीतल लेप करे।

मुन्नी रस्सी और कलसा लिये हुए निकली और बिना उसकी ओर ताके कुएँ

अच्छी होती, तो बाक़ी देके चार महीने निवाह हो जाता। इस डाँडी में आग लगे, आधी बाकी भी न निकली। अमर भैया को तू समझाती नहीं, स्वामीजी को बढने नहीं देते।

मुन्नी ने मुँह फेरकर कहा—मुझसे तो आजकल रूठे हुए हैं, बोलते ही नहीं काम-धन्धे से फ़ुरसत ही नहीं मिलती। घर के आदमी से बातचीत करने के भी फ़ुरसत चाहिये! जब फटेहालों आये थे, तब फुरसत थी। यहाँ जब दुनिया मानने लगी, नाम हुआ, बड़े आदमी बन गये, तो अब फ़ुरसत नहीं है।

सलोनी ने विस्मय-भरी आँखों से मुन्नी को देखा—क्या कहती है बहू, वा तुझसे रूठे हुए हैं? मुझे तो विश्वास नहीं आता। तुझे धोखा हुआ है बेचारा रात-दिन तो दौड़ता है, न मिली होगी फुरसत। मैंने तुझे जो असीस दिया है, वह पूरा होके रहेगा, देख लेना।

मुन्नी अपनी अनुदारता पर सकुचाती हुई बोली—मुझे किसी की परवा नहीं है काकी। जिसे सौ बार गरज पड़े बोले, नहीं न बोले। वह समझते होंगे—मैं उनके गले पड़ी जा रही हूँ। मैं तुम्हारे चरन छूकर कहती हूँ काकी, जो यह बात कभी मेरे मन में आई हो। मैं तो उनके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ। हाँ, इतना चाहती हूँ कि वह मुझसे मन से बोलें, जो कुछ थोड़ी-बहुत सेवा करूँ, उसे मन से लें। मेरे मन में बस इतनी ही साध है, कि मैं जल चढ़ाती जाऊँ और वह चढ़वाते जायँ। और कुछ नहीं चाहती।

सहसा अमर ने पुकारा। सलोनी ने बुलाया—आओ भैया, अभी बहू आ गई, उसी से बतिया रही हूँ।

अमर ने मुन्नी की ओर देखकर तीखे स्वर में कहा—मैंने तुम्हें दो बार पुकारा मुन्नी, तुम बोली क्यों नहीं?

मुन्नी ने मुँह फेर कर कहा—तुम्हें किसी से बोलने की फुरसत नहीं है, तो कोई क्यों जाय तुम्हारे पास। तुम्हें बड़े-बड़े काम करने पड़ते हैं, तो औरों को भी तो अपने छोटे-छोटे काम करने ही पड़ते हैं।

अमर पत्नीव्रत की धुन में मुन्नी से कुछ खिंचा रहने लगा था। पहले वह चट्टान पर था, सुखदा उसे नीचे से खींच रही थी। अब सुखदा टीले के ऊपर पर पहुँच गई और उसके पास पहुँचने के लिए उसे आत्मबल और

...ोग की ज़रूरत थी। उसका जीवन आदर्श होना चाहिये किन्तु प्रयास ...पर भी वह सरलता और श्रद्धा की इस मूर्ति को दिल से न निकाल सकता ...। उसे ज्ञात हो रहा था कि आत्मोन्नति के प्रयास मे उसका जीवन शुष्क ...हो गया है। उसने मन में सोचा, मैंने तो समझा था, हम दोनों एक-...के इतने समीप आ गये हैं, कि अब बीच मे किसी भ्रम की गु जाइश नहीं ...। मैं चाहे यहाँ रहूँ, चाहे काले कोसो चला जाऊँ, लेकिन तुमने ...हृदय में जो दीपक जला दिया है, उसकी ज्योति ज़रा भी मन्द ...ड़ेगी।

...उसने मीठे तिरस्कार से कहा—मैं यह मानता हूँ मुन्नी, कि इधर काम ...रहने से मैं तुमसे कुछ अलग रहा; लेकिन मुझे आशा थी कि अगर ...न्ताओं से झुँझलाकर मैं तुम्हें दो-चार कडवे शब्द भी सुना दूँ, तो तुम मुझे ...मा करोगी। अब मालूम हुआ कि वह मेरी भूल थी।

मुन्नी ने उसे कातर नेत्रों से देखकर कहा—हाँ लाला, वह तुम्हारी भूल ...। दरिद्र को सिंहासन पर भी बैठा दो तब भी उसे अपने राजा होने का ...श्वास न आयेगा। वह उसे सपना ही समझेगा। मेरे लिए भी यही सपना ...वन का आधार है। मैं कभी जागना नहीं चाहती। नित्य वही सपना ...खती रहना चाहती हूँ। तुम मुझे थपकियाँ देते जाओ, बस मैं इतना ही ...ाहती हूँ। क्या इतना भी नहीं कर सकते? क्या हुआ, आज स्वामीजी से ...म्हारा झगड़ा क्यों हो गया?

सलोनी अभी तो आत्मानन्द की तारीफ़ कर रही थी। अब अमर की ...र-देखी कहने लगी—

भैया ने तो लोगों को समझाया था कि महन्त के पास चलो। इसी पर ...ोग बिगड़ गये। पूछो, और तुम कर ही क्या सकते हो? महन्तजी पिटवाने ...गें, तो भागने की राह न मिले।

मुन्नी ने इसका समर्थन किया—महन्तजी धर्मात्मा आदमी हैं। भला ...ोग भगवान् के मन्दिर को घेरते, तो कितना अपजस होता। संसार भगवान् ...भजन करता है। हम चले उनकी पूजा रोकने। न-जाने स्वामी को यह ...सूझी क्या। और लोग उनकी बात मान गये। कैसा अंधेर है!

अमर ने चित्त में शान्ति का अनुभव किया। स्वामीजी से तो ज्या समझदार ये अपद स्त्रियाँ हैं। और आप शास्त्रों के ज्ञाता हैं। ऐसे ही मू आपको भक्त मिल गये!

उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—उस नक्कारख़ाने में तूती की आवाज़ को सुनता था काकी। लोग मन्दिर को घेरने जाते, तो फ़ौजदारी हो जाती। ज़रा ज़रा-सी बात में तो आजकल गोलियाँ चलती हैं।

सलोनी ने भयभीत होकर कहा—तुमने बहुत अच्छा किया भैया, जो उन साथ न हुए। नहीं ख़ून-ख़च्चर हो जाता।

मुन्नी आर्द्र होकर बोली—मैं तो तुम्हें उनके साथ कभी न जाने दे लाला। हाकिम संसार पर राज करता है, तो क्या रैयत का दुख-दर्द न सुनेगा स्वामीजी आवेंगे, तो पूछूँगी।

आग की तरह जलता हुआ घाव सहानुभूति और सहृदयता से भरे हु शब्दों से शीतल होता जान पड़ा। अब अमर कल अवश्य महन्तजी की सेव में जायगा। उसके मन में अब कोई शंका, कोई दुविधा नहीं है।



अमर गूदड़ चौधरी के साथ महन्त आशाराम गिरि के पास पहुँचा। सन्ध्या का समय था। महन्तजी एक सोने की कुरसी पर बैठे हुए थे, जिस पर मख़मली गद्दा था। उनके इर्द-गिर्द भक्तों की भीड़ लगी हुई थी, जिसमें महिलाओं की संख्या ही अधिक थी। सभी धुले हुए संगमरमर के फ़र्श पर बैठी हुई थीं। पुरुष दूसरी ओर बैठे थे। महन्तजी पूरे छः फीट के विशाल-काय, सौम्य पुरुष थे। अवस्था कोई पैंतीस वर्ष की थी। गोरा रंग, दुहरी देह, तेजस्वी मूर्ति, वस्त्र काषाय तो थे; किन्तु रेशमी। पाँव लटकाये बैठे हुए थे। भक्त लोग जाकर उनके चरणों को आँखों से

आते थे, पूजा चढ़ाते थे और अपनी जगह पर आ बैठते थे। गूदड़ तो अन्दर जा न सकते थे, अमर अन्दर गया; पर वहाँ उसे कौन पूछता। आख़िर जब खड़े-खड़े आठ बज गये, तो उसने महन्तजी के समीप जाकर कहा—महाराज मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है।

महन्तजी ने इस तरह उसकी ओर देखा, मानो उन्हें आँखें फेरने मे भी कष्ट है।

उनके समीप एक दूसरा साधु खड़ा था। उसने आश्चर्य से उनकी ओर देखकर पूछा—कहाँ से आते हो?

अमर ने गाँव का नाम बताया।

हुकुम हुआ, आरती के बाद आओ।

आरती में तीन घण्टे की देर थी। अमर यहाँ कभी न आया था। सोचा, यहाँ की सैर ही कर ले। इधर-उधर घूमने लगा। यहाँ से पश्चिम तरफ़ तो विशाल मन्दिर था। सामने पूरब की ओर सिंहद्वार, दाहिने-बायें दो दरवाज़े और भी थे। अमर दाहिने दरवाज़े के अन्दर घुसा, तो देखा चारों तरफ़ चौड़े बरामदे हैं और भण्डार हो रहा है। कहीं बड़ी-बड़ी कढ़ाइयों मे पूरियाँ-कचौरियाँ बन रही हैं, कहीं भाँति-भाँति की शाक-भाजी चढ़ी हुई है, कहीं दूध उबल रहा है, कहीं मलाई निकाली जा रही है। बरामदे के पीछे, कमरों मे खाद्य-सामग्री भरी हुई थी। ऐसा मालूम होता था अनाज, शाक-भाजी, मेवे, फल, मिठाई की मंडियाँ हैं। एक पूरा कमरा तो केवल परवलों से भरा हुआ था। इस मौसम में परवल कितने महँगे होते हैं; पर यहाँ वह भूसे की तरह भरा हुआ था। अच्छे-अच्छे घरों की महिलाएँ भक्ति-भाव से व्यंजन पकाने में लगी हुई थीं। ठाकुरजी के ब्यालू की तैयारी थी। अमर यह भंडार देखकर दंग रह गया। इस मौसम में यहाँ बीसों झाबे अंगूर से भरे थे।

अमर यहाँ से उत्तर तरफ़ के द्वार में घुसा, तो यहाँ बाज़ार-सा लगा देखा। एक लम्बी क़तार दरज़ियों की थी, जो ठाकुरजी के वस्त्र सी रहे थे। कहीं ज़री के काम हो रहे थे, कहीं कारचोबी की मसनदें और गावतकिए बनाये जा रहे थे। एक क़तार सोनारों की थी, जो ठाकुरजी के लिए आभूषण बना रहे थे। कहीं जड़ाई का काम हो रहा था, कहीं पालिश किया जाता था, कहीं पटवे गहने गूँथ

रहे थे। एक कमरे में दस-बारह मुस्टण्डे जवान बैठे चन्दन रगड़ रहे थे। सबों के मुँह पर ढाटे बँधे हुए थे। एक पूरा कमरा इत्र और तेल और अगर की बत्तियों से भरा हुआ था। ठाकुरजी के नाम पर धन का कितना अपव्यय हो रहा है, यही सोचता हुआ अमर वहाँ से फिर बीचवाले प्रागण में आया और सदर द्वार से बाहर निकला।

गूदड़ ने पूछा—बड़ी देर लगाई। कुछ बातचीत हुई?

अमर ने हँसकर कहा—अभी तो केवल दर्शन हुए हैं, आरती के बाद भेंट होगी। यह कहकर उसने जो कुछ देखा था वह विस्तारपूर्वक बयान किया।

गूदड़ ने गर्दन हिलाते हुए कहा—भगवान का दरबार है। जो संसार को पालता है, उसे किस बात की कमी। सुना तो हमने भी है, लेकिन कभी भीतर नहीं गये कि कोई कुछ पूछने-पाछने लगे, तो निकाले जायँ। हाँ, घुड़साल और गऊशाला देखी है। मन चाहे तुम भी देख लो।

अभी समय बहुत बाक़ी था। अमर गऊशाला देखने चला। मन्दिर के दक्खिन पशुशालाएँ थीं। सबसे पहले फ़ीलख़ाने में घुसे। कोई पचीस-तीस हाथी आँगन में ज़ंजीरों से बँधे खड़े थे। कोई इतना बड़ा कि पूरा पहाड़, कोई इतना छोटा, जैसे भैंस। कोई झूम रहा था, कोई सूँड़ घुमा रहा था, कोई बरगद के डालपात चबा रहा था। उनके हौदे, झूलें, अम्बरियाँ, गहने सब अलग एक गोदाम में रखे हुए थे। हरेक हाथी का अपना नाम, अपने सेवक, अपना मकान अलग था। किसी को मन भर रातिब मिलता था, किसी को चार पसेरी। ठाकुरजी की सवारी में जो हाथी था, वही सबसे बड़ा था। भगत लोग उसकी पूजा करने आते थे। इस वक़्त भी मालाओं का ढेर उसके सिर पर पड़ा हुआ था। बहुत-से फूल उसके पैरों के नीचे थे।

यहाँ से घुड़साल में पहुँचे। घोड़ों की क़तारें बँधी हुई थीं, मानो सवारों की फ़ौज का पड़ाव हो। पाँच सौ घोड़ों से कम न थे, हरेक जाति के, हरेक देश के। कोई सवारी का, कोई शिकार का, कोई बग्घी का, कोई पोलो का। हरेक घोड़े पर दो-दो आदमी नौकर थे। महन्तजी को घुड़दौड़ का बड़ा शौक़ था। इनमें कई घोड़े घुड़दौड़ के थे। उन्हें रोज़ बादाम और मलाई दी जाती थी।

गऊशाले में भी चार-पाँच सौ गायें-भैंसें थीं। बड़े-बड़े मटके ताज़े दूध

भरे रखे थे। ठाकुरजी आरती के पहले स्नान करेंगे। पाँच-पाँच मन दूध उनके स्नान को तीन बार रोज़ चाहिये, भंडार के लिए अलग।

अभी यह लोग इधर-उधर घूम ही रहे थे कि आरती शुरू हो गई। चारों तरफ़ से लोग आरती करने को दौड़ पड़े।

गूदड़ ने कहा—तुमसे कोई पूछता—कौन भाई हो, तो क्या बताते?

अमर ने मुसकिराकर कहा—वैश्य बताता।

'तुम्हारी तो चल जाती; क्योंकि यहाँ तुम्हें लोग कम जानते हैं, मुझे तो लोग रोज़ ही हाथ में चरसें बेचते देखते हैं, पहचान लें, तो जीता न छोड़ें। अब देखो भगवान की आरती हो रही है और हम भीतर नहीं जा सकते। यहाँ के पण्डों-पुजारियों के चरित्र सुनो, तो दाँतों उँगली दबा लो; पर वे यहाँ के मालिक हैं, और हम भीतर क़दम नहीं रख सकते। तुम चाहे जाकर आरती ले लो। तुम सूरत से भी तो ब्राह्मण जँचते हो। मेरी तो सूरत ही चमार-चमार पुकार रही है।

अमर की इच्छा तो हुई कि अन्दर जाकर तमाशा देखे; पर गूदड़ को छोड़कर न जा सका। कोई आध घण्टे में आरती समाप्त हुई और उपासक लौटकर अपने-अपने घर गये, तो अमर महन्तजी से मिलने चला। मालूम हुआ, कोई रानी साहब दर्शन कर रही हैं। वहीं आँगन में टहलता रहा।

आध घण्टे के बाद उसने फिर साधु द्वारपाल से कहा, तो पता चला, इस वक्त नहीं दर्शन हो सकते। प्रातःकाल आओ।

अमर को क्रोध तो ऐसा आया, कि इसी वक्त महन्तजी को फटकारे; पर ज़ब्त करना पड़ा। अपना-सा मुँह लेकर बाहर चला आया।

गूदड़ ने यह समाचार सुनकर कहा—इस दरबार में भला हमारी कौन सुनेगा?

'महन्तजी के दर्शन तुमने कभी किये हैं?'

'मैंने! भला मैं कैसे करता? मैं कभी नहीं आया।'

नौ बज रहे थे, इस वक्त घर लौटना मुश्किल था। पहाड़ी रास्ते, जङ्गली जानवरों का खटका, नदी-नालों का उतार। वहीं रात काटने की सलाह हुई। दोनों एक धर्मशाला में पहुँचे और कुछ खा-पीकर वहीं पड़ रहने का विचार

किया। इतने में दो साधु भगवान का ब्यालू बेचते हुए नज़र आये। धर्मशाला के सभी यात्री लेने दौड़े। अमर ने भी चार आने की एक पत्तल ली। पूरियाँ, हलवे, तरह-तरह की भाजियाँ, अचार-चटनी, मुरब्बे, मलाई, दही इतना सामान था, कि अच्छे दो खानेवाले तृप्त हो जाते। यहाँ चूल्हा बहुत कम घरों में जलता था। लोग यही पत्तल ले लिया करते थे। दोनों ने खूब पेट-भर खाया और पानी पीकर सोने की तैयारी कर रहे थे कि एक साधु दूध बेचने आया—शयन का दूध ले लो। अमर की इच्छा तो न थी; पर कुतूहल से उसने दो आने का दूध लिया। पूरा एक सेर था, गाढ़ा, मलाईदार, उसमें से केसर और कस्तूरी की सुगन्ध उड़ रही थी। ऐसा दूध उसने अपने जीवन में कभी न पिया था।

बेचारे बिस्तर तो लाये न थे, आधी-आधी धोतियाँ बिछाकर लेटे।

अमर ने विस्मय से कहा—इस ख़र्च का कुछ ठिकाना है।

गूदड़ भक्तिभाव से बोला—भगवान देते हैं और क्या। उन्हीं की महिमा है। हजार-दो-हज़ार यात्री नित्य आते है। एक-एक सेठिया दस-दस बीस-बीस हज़ार की थैली चढ़ाता है। इतना ख़रचा करने पर भी करोड़ों रुपए बैंक में जमा हैं।

'देखें कल क्या बातें होती हैं।'

'मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, कि कल भी दर्शन न होंगे।'

दोनों आदमियों ने कुछ रात रहे ही उठकर स्नान किया और दिन निकलने के पहले ड्योढ़ी पर जा पहुँचे। मालूम हुआ महंतजी पूजा पर हैं।

एक घण्टा बाद फिर गये, तो सूचना मिली, महन्तजी कलेऊ पर हैं।

जब वह तीसरी बार नौ बजे गया, तो मालूम हुआ महन्तजी घोड़ों का मुआइना कर रहे हैं। अमर ने झुँझलाकर द्वारपाल से कहा—तो आखिर हमें कब दर्शन होंगे?

द्वारपाल ने पूछा—तुम कौन हो?

'मैं उनके इलाक़े का असामी हूँ। उनसे इलाक़े के विषय में कुछ कहने आया हूँ।'

'तो कारकुन के पास जाओ। इलाक़े का काम वही देखते हैं।'

अमर पूछता हुआ कारकुन के दफ्तर में पहुँचा, तो बीसों मुनीम लंबी-लंबी ...ी खोले लिख रहे थे। कारकुन महोदय मसनद लगाये हुक्का पी रहे थे।

अमर ने सलाम किया।

कारकुन साहब ने दाढ़ी पर हाथ फेरकर पूछा—अर्ज़ी कहाँ है?

अमर ने बग़लें झाँककर कहा—अर्ज़ी तो मैं नहीं लाया।

'तो फिर यहाँ क्या करने आये?'

'मैं तो श्रीमान् महंतजी से कुछ अर्ज़ करने आया था।'

'अर्ज़ी लिखाकर लाओ।'

'मैं तो महंतजी से मिलना चाहता हूँ।'

'नज़राना लाये हो?'

'मैं ग़रीब आदमी हूँ, नज़राना कहाँ से लाऊँ।'

'इसीलिए कहता हूँ, अर्ज़ी लिखकर लाओ। उस पर विचार होगा। जो ...छ हुक्म होगा, वह सुना दिया जायगा।'

'तो कब हुक्म सुनाया जायगा?'

'जब महंतजी की इच्छा हो।'

'महंतजी को कितना नज़राना चाहिये?'

'जैसी श्रद्धा हो। कम-से-कम एक अशर्फी।'

'कोई तारीख़ बता दीजिये, तो मैं हुक्म सुनने आऊँ। यहाँ रोज़ ...ौन दौड़ेगा?'

'तुम दौड़ोगे और कौन दौड़ेगा। तारीख़ नहीं बताई जा सकती।'

अमर ने बस्ती में जाकर विस्तार के साथ अर्ज़ी लिखी और उसे कारकुन की ...वा में पेश कर दिया। फिर दोनों घर चले गये।

इनके आने की ख़बर पाते ही गाँव के सैकड़ों आदमी जमा हो गये। अमर ...ड़े सकट में पड़ा। अगर उनसे सारा वृत्तान्त कहता है तो लोग उसी को उल्लू ...नायेंगे। इसलिए बात बनानी पड़ी—अर्ज़ी पेश कर आया हूँ। उस पर ...िचार हो रहा है।

काशी ने अविश्वास के भाव से कहा—वहाँ महीनों में विचार होगा, तब ...क यहाँ कारिन्दे हमें नोच डालेंगे।

अमर ने खिसियाकर कहा—महीनों में क्यों विचार होगा? दो-चार दिन बहुत हैं।

पयाग बोला—यह सब टालने की बातें हैं। ख़ुशी से कौन अपने रुपये छोड़ सकता है!

अमर रोज़ सवेरे जाता और बड़ी रात गये लौट आता। पर अर्ज़ी पर विचार न होता था। कारकुन, उनके मुहर्रिरों, यहाँ तक कि चपरासियों की मिन्नत-समाजत करता; पर कोई न सुनता था। रात को वह निराश होकर लौटता, तो गाँव के लोग यहाँ उसका परिहास करते।

पयाग कहता—हमने तो सुना था कि रुपये में ।।) छूट हो गई।

काशी कहता—तुम झूठे हो। मैंने तो सुना था, महन्तजी ने इस साल पूरी लगान माफ़ कर दी।

उधर आत्मानन्द हलक़े में बराबर जनता को भड़का रहे थे। रोज बड़ी-बड़ी किसान-सभाओं की ख़बरें आती थीं। जगह-जगह किसान-सभाएँ बन रही थीं। अमर की पाठशाला भी बन्द पड़ी थी। उसे फ़ुरसत ही न मिलती थी। पढ़ाता कौन। रात को केवल मुन्नी अपनी कोमल सहानुभूति से उसके आँसू पोंछती थी।

आख़िर सातवें दिन उसकी अर्ज़ी पर हुक्म हुआ कि सायल पेश किया जाय। अमर महन्त के सामने लाया गया। दोपहर का समय था। महन्तजी ख़सख़ाने में एक तख़्त पर मसनद लगाये लेटे हुए थे। चारों तरफ़ ख़स की टट्टियाँ थीं, जिन पर गुलाब का छिड़काव हो रहा था। बिजली के पंखे चल रहे थे। अन्दर इस जेठ के महीने में भी इतनी ठंडक थी, कि अमर को सर्दी लगने लगी।

महन्तजी के मुख मंडल पर दया झलक रही थी। हुक्के का एक कश खींचकर मधुर स्वर में बोले—तुम इलाक़े ही में रहते हो न? मुझे यह सुनकर बड़ा दु:ख हुआ, कि मेरे असामियों को इस समय कष्ट है। क्या सचमुच उनकी दशा वही है, जो तुमने अर्ज़ी में लिखी है?

अमर ने प्रोत्साहित होकर कहा—महाराज, उनकी दशा इससे कहीं बदतर कितने ही घरों में चूल्हा नहीं जलता।

महन्तजी ने आँखें बन्द करके कहा—भगवन्! यह तुम्हारी क्या लीला है—तुमने मुझे पहले ही क्यों न ख़बर दी। मैं इस फ़स्ल की वसूली रोक देता। भगवान के भण्डार में किस चीज़ की कमी है। मैं इस विषय में बहुत जल्द सरकार से पत्र-व्यवहार करूँगा और वहाँ से जो कुछ जवाब आवेगा, वह असामियों को भिजवा दूँगा। तुम उनसे कहो, धैर्य रखें। भगवान यह तुम्हारी क्या लीला है!

महन्तजी ने आँखों पर ऐनक लगा ली और दूसरी अर्ज़ियाँ देखने लगे, तो अमरकान्त भी उठ खड़ा हुआ। चलते-चलते उसने पूछा—अगर श्रीमान् कारिन्दों को हुक्म दे दें, कि इस वक्त असामियों को दिक़ न करें, तो बड़ी दया हो। किसी के पास कुछ नहीं है; पर मार-गाली के भय से बेचारे घर की चीज़ें बेच बेचकर लगान चुकाते हैं। कितने ही तो इलाक़ा छोड़-छोड़ भागे जा रहे हैं।

महतजी की मुद्रा कठोर हो गई—ऐसा नहीं होने पावेगा। मैंने कारिन्दों को कड़ी ताकीद कर दी है, कि किसी असामी पर सख़्ती न की जाय। मैं उन सबों से जवाब तलब करूँगा। मैं असामियों का सताया जाना बिलकुल पसंद नहीं करता।

अमर ने झुककर महन्तजी को दंडवत किया और वहाँ से बाहर निकला, तो उसकी बाछें खिली जाती थीं। वह जल्द-से-जल्द इलाक़े में पहुँचकर यह खबर सुना देना चाहता था। ऐसा तेज़ जा रहा था, मानो दौड़ रहा है। बीच-बीच में दौड़ भी लगा लेता था, पर सचेत होकर रुक जाता था। लू तो न थी, पर धूप बड़ी तेज़ थी। देह फुकी जाती थी, फिर भी वह भागा चला जाता था। अब वह स्वामी आत्माराम से पूछेगा—कहिये, अब तो आपको विश्वास आया न, कि संसार में सभी स्वार्थी नहीं हैं? कुछ धर्मात्मा भी हैं, जो दूसरों का दुःख-दर्द समझते हैं। अब उनके साथ के बेफ़िक्रों की खबर भी लेगा। अगर उसके पर होते तो उड़ जाता।

संध्या समय वह गाँव में पहुँचा, तो कितने ही उत्सुक किन्तु अविश्वास से भरे नेत्रों ने उसका स्वागत किया।

काशी बोला—आज तो बड़े प्रसन्न हो भैया, पाला मार आये क्या?

अमर ने खाट पर बैठते हुए अकड़कर कहा—जो दिल से काम करेगा, पाला मारेगा ही।

बहुत से लोग पूछने लगे—भैया, क्या हुकुम हुआ?

अमर ने डाक्टर की तरह मरीज़ों को तसल्ली दी—महन्तजी को तुम व्यर्थ बदनाम कर रहे थे। ऐसी सज्जनता से मिले कि मैं क्या कहूँ। कहा हमें तो कुछ मालूम ही नहीं, पहले ही क्यों न सूचना दी, नहीं हमने वसूली कर दी होती। अब उन्होंने सरकार को लिखा है। यहाँ कारिन्दों को वसूली की मनाही हो जायगी।

काशी ने खिसियाकर कहा—देखो, कुछ हो जाय तो जानें।

अमर ने गर्व से कहा—अगर धैर्य से काम लोगे, तो सब कुछ हो जाय हुल्लड़ मचाओगे, तो कुछ न होगा, उल्टे और डण्डे पड़ेंगे।

सलोनी ने कहा—जब मोटे स्वामी मानें।

गूदड़ ने चौधरीपन की ली—मानेंगे कैसे नहीं, उनको मानना पड़ेगा।

एक काले युवक ने जो स्वामीजी के उग्र भक्तों में था, लज्जित होकर कहा भैया, जिस लगन से तुम काम करते हो, कोई क्या करेगा।

दूसरे दिन उसी कड़ाई से प्यादों ने डाँट-फटकार की, लेकिन तीसरे दिन वह कुछ नर्म हो गये। सारे इलाक़े में ख़बर फैल गई कि महन्तजी ने आ छूट के लिए सरकार को लिखा है। स्वामीजी जिस गाँव में जाते, वहाँ लो उन पर आवाज़ें कसते। स्वामीजी अपनी रट अब भी लगाये जाते थे यह धोखा है, कुछ होना-हवाना नहीं है, उन्हें अपनी बात की आ पड़ी थी। अस मियों की उन्हें उतनी फ़िक्र न थी, जितनी अपने पक्ष की। अगर आधी छू का हुक्म आ जाता, तो शायद वह यहाँ से भाग जाते। इस वक़्त तो नए वादे को धोखा साबित करने की चेष्टा करते थे, और यद्यपि जनता उनके साथ न थी पर कुछ-न-कुछ आदमी उनकी बातें सुन ही लेते थे। हाँ, इस का सुनकर उसे कान उड़ा देते।

दिन गुज़रने लगे, मगर कोई हुक्म नहीं आया। फिर लोगों में सन्दे िया होने लगा। जब दो सप्ताह निकल गये, तो अमर सदर गया और स लीम के साथ हाकिम ज़िला मि० ग़ज़नवी से मिला। मि० ग़ज़नवी ला

भले, गोरे शौक़ीन आदमी थे। उनकी नाक इतनी लम्बी और चिबुक इतना गोल था कि हास्य-मूर्ति से लगते थे। और थे भी बड़े विनोदी। काम उतना ही करते थे, जितना ज़रूरी होता था और जिसके न करने से जवाब तलब हो सकता था; लेकिन दिल के साफ़, उदार, परोपकारी आदमी थे। जब अमर ने गाँवों की हालत उनसे बयान की, तो हँसकर बोले—आपके महन्तजी ने फ़रमाया है, सरकार जितनी मालगुज़ारी छोड़ दे, मैं उतनी ही लगान छोड़ दूँगा। हैं मुन्सिफ़मिजाज।

अमर ने शंका की—तो इसमें बेइन्साफी क्या है?

'बेइन्साफ़ी यही है, कि उनके करोड़ों रुपए बैंक में जमा हैं, सरकार पर अरबों क़र्ज़ है।'

'तो आपने उनकी तजवीज़ पर कोई हुक्म दिया?'

'इतनी जल्द! भला छः महीने तो गुज़रने दीजिये। अभी हम काश्तकारों की हालत की जाँच करेंगे, उसकी रिपोर्ट भेजी जायगी, रिपोर्ट पर ग़ौर किया जायगा, तब कहीं कोई हुक्म निकलेगा।'

'तब तक तो असामियों के वारे-न्यारे हो जायँगे। अजब नहीं कि फसाद शुरू हो जाय।'

'तो क्या आप चाहते हैं, सरकार अपनी वज़ा छोड़ दे? यह दफ़्तरी हुकूमत है जनाब। यहाँ सभी काम ज़ाब्ते के साथ होते हैं। आप हमें गालियाँ दें, हम आपका कुछ नहीं कर सकते। पुलिस में रिपोर्ट होगी, पुलिस आपका चालान करेगी। होगा वही, जो मैं चाहूँगा, मगर ज़ाब्ते के साथ। ख़ैर यह तो मज़ाक़ था। आपके दोस्त मि० सलीम बहुत जल्द उस इलाक़े की तहक़ीक़ात करेंगे, मगर देखिये झूठी शहादतें न पेश कीजिये, कि यहाँ से निकाले जायँ। मि० सलीम आपकी बड़ी तारीफ़ करते हैं, मगर भाई, मैं तुम लोगों से डरता हूँ। ख़ासकर तुम्हारे उस स्वामी से। बड़ा ही मुफसिद आदमी है। उसे फँसा क्यों नहीं देते। मैंने सुना है, वह तुम्हें बदनाम करता फिरता है।'

इतना बड़ा अफ़सर अमर से इतनी बेतकल्लुफ़ी से बातें कर रहा था, फिर उसे क्यों न नशा हो जाता। सचमुच आत्मानन्द आग लगा रहा है। अगर वह गिरफ्तार हो जाय, तो इलाके में शान्ति हो जाय। स्वामी साहसी है, यथार्थ

वक्ता है, देश का सच्चा सेवक है; लेकिन इस वक्त उसका गिरफ़्तार हो जाना ही अच्छा।

उसने कुछ इस भाव से जवाब दिया कि उसके मनोभाव प्रकट न हों पर स्वामी पर वार चल जाय—मुझे तो उनसे कोई शिकायत नहीं है, उन्हें अख़्तियार है, मुझे जितना चाहे बदनाम करें।

गजनवी ने सलीम से कहा—तुम नोट कर लो मि० सलीम। कल उस हल्के के थानेदार को लिख दो, इस स्वामी की ख़बर ले। बस अब सरकारी काम ख़त्म। मैंने सुना है मि० अमर, कि आप औरतों को वश में करने का कोई मन्त्र जानते हैं।

अमर ने सलीम की गरदन पकड़कर कहा—तुमने मुझे बदनाम किया होगा।

सलीम बोला—तुम्हें तुम्हारी हरकतें बदनाम कर रही हैं, मैं क्यों करने लगा।

ग़ज़नवी ने बाँकपन के साथ कहा—तुम्हारी बीबी ग़जब की दिलेर औरत है भई। आजकल म्युनिसिपैलिटी से उनकी ज़ोर-आज़माई है और मुझे यक़ीन है, बोर्ड को झुकना पड़ेगा। मगर भई, मेरी बीबी ऐसी होती, तो मैं फ़क़ीर हो जाता। वल्लाह!

अमर ने हँसकर कहा—क्यों, आपको तो और ख़ुश होना चाहिये था।

ग़ज़नवी—जी हाँ! वह तो जनाब का दिल ही जानता होगा।

सलीम—उन्हीं के ख़ौफ़ से तो यह भागे हुए हैं।

ग़ज़नवी—यहाँ कोई जलसा करके उन्हें बुलाना चाहिये।

सलीम—क्यों बैठे-बैठाये ज़हमत मोल लीजियेगा। वह आई और शहर में आग लगी, हमें बँगलों से निकलना पड़ा।

ग़ज़नवी—अजी वह तो एक दिन होना ही है। यह अमीरों की हुकूमत अब थोड़े दिनों की मेहमान है। इस मुल्क में अँग्रेज़ों का राज है; इसलिए हममें जो अमीर हैं और जो कुदरती तौर पर अमीरों की तरफ़ खड़े होते, वह भी ग़रीबों की तरफ़ खड़े होने में ख़ुश हैं; क्योंकि ग़रीबों के साथ उन्हें कम-से कम इज़्ज़त तो मिलेगी, उधर तो यह डौल भी नहीं है। मैं अपने को इसी जमाअत में समझता हूँ।

तीनों मित्रों में बड़ी रात तक बेतकल्लुफ़ी से बातें होती रहीं। सलीम ने

अमर की पहले ही खूब तारीफ कर दी थी। इसलिए उसकी गँवारू सूरत होने पर भी ग़ज़नवी बराबरी के भाव से मिला। सलीम के लिए हुकूमत नई चीज़ थी। अपने नये जूते की तरह उसे कीचड़ और पानी से बचाता था। ग़ज़नवी हुकूमत का आदी हो चुका था और जानता था कि पाँव नये जूते से कहीं ज़्यादा क़ीमती चीज़ है। रमणी-चर्चा उसके कुतूहल, आनन्द और मनोरञ्जन का मुख्य विषय थी। क्वाँरों की रसिकता बहुत धीरे-धीरे सूखनेवाली वस्तु है। उनकी अतृप्त लालसा प्रायः रसिकता के रूप में प्रकट होती है।

अमर ने ग़ज़नवी से पूछा—आपने शादी क्यों नहीं की? मेरे एक प्रोफ़ेसर डाक्टर शान्तिकुमार हैं, वह भी शादी नहीं करते। आप लोग औरतों से डरते होंगे।

ग़ज़नवी ने कुछ याद करके कहा—शान्तिकुमार वही तो हैं, खूबसूरत-से, गोरे-चिट्टे, गठे हुए बदन के आदमी। अजी वह तो मेरे साथ पढ़ता था यार। हम दोनों ऑक्सफ़ोर्ड में थे। मैंने लिटरेचर लिया था, उसने पोलिटिकल फिलासोफी ली थी। मैं उसे खूब बनाया करता था। युनिवर्सिटी में है न? अक्सर उनकी याद आती थी।

सलीम ने उनके इस्तीफे, ट्रस्ट और नगर-कार्य का ज़िक्र किया।

ग़ज़नवी ने गर्दन हिलाई, मानो कोई रहस्य पा गया है—तो यह कहिये, आप लोग उनके शागिर्द हैं। हम दोनों में अक्सर शादी के मसले पर बातें होती थीं। मुझे तो डाक्टरों ने मना किया था; क्योंकि उस वक्त मुझमें टी॰ बी॰ की कुछ अलामतें नज़र आ रही थीं। जवान बेवा छोड़ जाने के ख़याल से मेरी रूह काँपती थी। तब से मेरी गुज़रान तीर-तुक्के पर ही है। शान्तिकुमार को तो क़ौमी ख़िदमत और जाने क्या-क्या ख़ब्त था; मगर ताज्जुब यह है कि अभी तक उस ख़ब्त ने उसका गला नहीं छोड़ा। मैं समझता हूँ, अब उसकी हिम्मत न पड़ती होगी। मेरे ही हमसिन तो थे। ज़रा उनका पता तो बताना। मैं उन्हें यहाँ आने की दावत दूँगा।

सलीम ने सिर हिलाया—उन्हें फ़ुरसत कहाँ। मैंने बुलाया था, नहीं आये।

ग़ज़नवी मुसकराये—तुमने निज के तौर पर बुलाया होगा। किसी इंस्टि-

स्यूशन की तरफ़ से बुलाओ और कुछ चन्दा करा देने का वादा कर लो, फिर देखो चारों हाथ-पाँव से दौड़े आते हैं या नहीं। इन क़ौमी ख़ादिमों की जान चन्दा है, ईमान चन्दा है और शायद ख़ुदा भी चन्दा है। जिसे देखो चन्दे की हाय-हाय। मैंने कई बार इन ख़ादिमों को चरका दिया, उस वक्त इन ख़ादिमों की सूरत देखने ही से ताल्लुक़ रखती है। गालियाँ देते हैं, पैंतरे बदलते हैं, ज़बान से तोप के गोले छोड़ते हैं, और आप उनके बौखलपन का मज़ा उठा रहे हैं। मैंने तो एक बार एक लीडर साहब को पागलख़ाने में बन्द कर दिया था। कहते हैं अपने को क़ौम का ख़ादिम और लीडर समझते है।

सवेरे मि० ग़ज़नवी ने अमर को अपने मोटर पर गाँव में पहुँचा दिया। अमर के गर्व और आनन्द का वारापार न था। अफ़सरों की सोहबत ने कुछ अफ़सरी की शान पैदा कर दी थी। हाकिम परगना तुम्हारी हालत जाँच करने आ रहे है। ख़बरदार, कोई उनके सामने झूठा बयान न दे। जो कुछ वह पूछें, उनका ठीक-ठीक जवाब दो। न अपनी दशा को छिपाओ, न बढ़ाकर बताओ। तहक़ीक़ात सच्ची होनी चाहिए। मि० सलीम बड़े नेक और ग़रीब-दोस्त आदमी हैं। तहक़ीक़ात में देर ज़रूर लगेगी, लेकिन राज्य-व्यवस्था में देर लगती ही है। इतना बड़ा इलाक़ा है, महीनों घूमने में लग जायँगे। तब तक तुम लोग ख़रीफ़ का काम शुरू कर दो। रुपए में आठ आने छूट का मैं जिम्मा लेता हूँ। सब्र का फल मीठा होता है, इतना समझ लो।

स्वामी आत्मानन्द को भी अब विश्वास आ गया। उन्होंने देखा, अमर अकेला ही सारा यश लिये जाता है और मेरे पल्ले अपयश के सिवा और कुछ नहीं पड़ता, तो उन्होंने पहलू बदला। एक जलसे में दोनों एक ही मंच से बोले। स्वामीजी झुके, अमर ने कुछ हाथ बढ़ाया। फिर दोनों में सहयोग हो गया।

इधर असाढ़ की वर्षा शुरू हुई, उधर सलीम तहक़ीक़ात करने आ पहुँचा। दो-चार गाँवों में असामियों के बयान लिखे भी; लेकिन एक ही सप्ताह में ऊब । पहाड़ी डाकबँगले में भूत की तरह अकेले पड़े रहना उसके लिए कठिन

तस्या थी। एक दिन बीमारी का बहाना करके भाग खड़ा हुआ, और एक महीने तक टाल-मटोल करता रहा। आखिर जब ऊपर से डाँट पड़ी और ग़ज़नवी ने सख़्त ताकीद की, तो फिर चला। उस वक्त सावन की झड़ी लग गई थी, नदी-नाले भर गये थे, और कुछ ठण्ढक आ गई थी। पहाड़ियों पर हरियाली छा गई थी, मोर बोलने लगे थे। इस प्राकृतिक शोभा ने देहातों को चमका दिया था।

कई दिन के बाद आज बादल खुले थे। महन्तजी ने सरकारी फ़ैसले के आने तक रुपए में चार आने छूट की घोषणा कर दी थी और कारिन्दे बक़ाया वसूल करने की फिर चेष्टा करने लगे थे। दो-चार असामियो के साथ उन्होंने सख्ती भी की थी। इस नई समस्या पर विचार करने के लिए आज गंगा-तट पर एक विराट सभा हो रही थी। भोला चौधरी सभापति बनाये गये थे और स्वामी आत्मानन्द का भाषण हो रहा था—सज्जनो, तुम लोगों मे ऐसे बहुत कम हैं, जिन्होंने आधा लगान न दे दिया हो। अभी तक तो आधे की चिन्ता थी। अब केवल आधे-के-आधे की चिन्ता है। तुम लोग ख़ुशी से दो-दो आने और दे दो। सरकार महन्तजी की मालगुजारी में कुछ-न-कुछ छूट अवश्य करेगी। अबकी हमें छः आने छूट पर सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। आगे की फ़सल में अगर अनाज का भाव यही रहा, तो हमें आशा है कि आठ आने की छूट मिल जायगी। यह मेरा प्रस्ताव है, आप लोग इस पर विचार करें। मेरे मित्र अमरकान्तजी की भी यही राय है। अगर आप लोग कोई और प्रस्ताव करना चाहते हैं, तो हम उस पर विचार करने को भी तैयार हैं।

इसी वक्त डाकिये ने सभा में आकर अमरकान्त के हाथ में एक लिफाफ़ा रख दिया। पते की लिखावट ने बता दिया कि नैना का पत्र है। पढते ही जैसे उस पर नशा छा गया। मुद्रा पर ऐसा तेज आ गया, जैसे अग्नि में आहुति पड गई हो। गर्व भरी आखों से इधर-उधर देखा। मन के भाव जैसे छलांगें मारने लगे। सुखदा की गिरफ्तारी और जेल-यात्रा का वृत्तान्त था। अहा! वह जेल गई और वह यहाँ पड़ा हुआ है। उसे बाहर रहने का क्या अधिकार है। वह कोमलांगी जेल में है, जो कड़ी दृष्टि भी न सह सकती थी, जिसे रेशमी वस्त्र भी चुभते थे, मखमली गद्दे भी गड़ते थे, वह आज जेल की यातना

सह रही है! वह आदर्श नारी, वह देश की लाज रखनेवाली, वह कुललक्ष्मी आज जेल में है। अमर के हृदय का सारा रक्त सुखदा के चरणों पर गिरकर वह जाने के लिए मचल उठा। सुखदा! सुखदा! चारों ओर वही मूर्ति थी। सन्ध्या की लालिमा से रंजित गंगा की लहरों पर बैठी हुई कौन चली जा रही है? सुखदा! ऊपर असीम आकाश में केसरिया साड़ी पहने कौन उड़ी जा रही है? सुखदा! सामने की श्याम पर्वतमाला में गोधूलि का हार गले में डाले कौन खड़ी है? सुखदा! अमर विक्षिप्तों की भाँति कई क़दम आगे दौड़ा, मानो उसकी पद-रज मस्तक पर लगा लेना चाहता हो।

सभा में कौन क्या बोला, इसकी उसे ख़बर नहीं। वह ख़ुद क्या बोला, इसकी भी उसे ख़बर नहीं। जब लोग अपने-अपने गाँवों को लौटे तो चन्द्रमा का प्रकाश फैल गया था। अमरकान्त का अन्तःकरण कृतज्ञता से परिपूर्ण था। उसे अपने ऊपर किसी की रक्षा का साया ज्योत्स्ना की भाँति फैला हुआ जान पड़ा। उसे प्रतीत हुआ, जैसे उसके जीवन में कोई विधान है, कोई आदेश है, कोई आशीर्वाद है, कोई सत्य है, और वह पग-पग पर उसे सँभालता है, बचाता है। एक महान् इच्छा, एक महान् चेतना के संसर्ग का आज उसे पहली बार अनुभव हुआ।

सहसा मुन्नी ने पुकारा—लाला, आज तो तुमने आग ही लगा दी।

अमर ने चौंककर कहा—मैंने!

तब उसे अपने भाषण का एक-एक शब्द याद आ गया। उसने मुन्नी का हाथ पकड़कर कहा—हाँ मुन्नी, अब हमें वही करना पड़ेगा, जो मैंने कहा। जब तक हम लगान देना बन्द न करेंगे, सरकार योंही टालती रहेगी।

मुन्नी सशंक होकर बोली—आग में कूद रहे हो, और क्या।

अमर ने ठट्ठा मारकर कहा—आग में कूदने से स्वर्ग मिलेगा। दूसरा मार्ग नहीं है।

मुन्नी चकित होकर उसका मुख देखने लगी। इस कथन में हँसने का क्या प्रयोजन है, वह समझ न सकी।



सलीम यहाँ से कोई सात-आठ मील पर डाकबँगले में पड़ा हुआ था। इलक़े के थानेदार ने रात ही को उसे इस सभा की ख़बर दी और अमरकान्त का भाषण भी पढ़ सुनाया। उसे इन सभाओं की रिपोर्ट करते रहने की ताकीद कर दी गई थी।

सलीम को बड़ा आश्चर्य हुआ। अभी एक दिन पहले अमर उससे मिला था, और यद्यपि उसने महन्त की इस नई काररवाई का विरोध किया था, पर उसके विरोध में केवल खेद था, क्रोध का नाम भी न था। आज एकाएक यह परिवर्तन कैसे हो गया?

उसने थानेदार से पूछा—महन्तजी की तरफ़ से कोई ख़ास ज्यादती तो नहीं हुई?

थानेदार ने जैसे इस शंका को जड़ से काटने के लिए तत्पर होकर कहा—बिलकुल नहीं हुज़ूर। उन्होंने तो सख़्त ताकीद कर दी थी, कि असामियों पर किसी क़िस्म का ज़ुल्म न किया जाय। बेचारे ने अपनी तरफ़ से चार आने की छूट दे दी। गाली-गुफ़्ता तो मामूली बात है।

'जलसे पर इस तक़रीर का क्या असर हुआ?'

'हुज़ूर यही समझ लीजिये जैसे पुआल में आग लग जाय। महन्तजी के इलाक़े में बड़ी मुश्किल से लगान वसूल होगा।'

सलीम ने आकाश की तरफ़ देखकर पूछा—आप इस वक़्त मेरे साथ सदर चलने को तैयार हैं?

थानेदार को क्या उज्र हो सकता था। सलीम के जी में एक बार आया कि ज़रा अमर से मिले; लेकिन फिर सोचा, अगर अमर उसके समझाने से माननेवाला होता, तो यह आग ही क्यों लगाता।

सहसा थानेदार ने पूछा—हुज़ूर से तो इनकी जान-पहचान है?

सलीम ने चिढ़कर कहा—यह आपसे किसने कहा? मेरी सैकड़ों से जान-

पहचान है, तो फिर ? अगर मेरा लड़का भी क़ानून के खिलाफ काम करे, तो मुझे उसकी तंबीह करनी पड़ेगी।

थानेदार ने ख़ुशामद की—मेरा यह मतलब नहीं था हुज़ूर। हुज़ूर से जान-पहचान होने पर भी उन्होंने हुज़ूर को बदनाम करने में ताम्मुल न किया, मेरा यही मंशा था।

सलीम ने कुछ जवाब तो न दिया; पर यह उस मुआमले का नया पहलू था। अमर को उसके इलाक़े में यह तूफ़ान न उठाना चाहिये था, आख़िर अफ़सरान यही तो समझेंगे कि यह नया आदमी है, अपने इलाक़े पर इसका रोब नहीं है।

बादल फिर घिरा आता था। रास्ता भी ख़राब था। उस पर अँधेरी रात, नदियों का उतार, मगर उसका गज़नवी से मिलना ज़रूरी था। कोई तजर्बेकार अफसर इस कदर बदहवास न होता; पर सलीम नया आदमी।

दोनों आदमी रात भर की हैरानी के बाद सबेरे सदर पहुँचे। आज मियाँ सलीम को आटे-दाल का भाव मालूम हुआ। यहाँ केवल हुकूमत नहीं है, हैरानी और जोखिम भी है, इसका अनुभव हुआ। जब पानी का झोंका आता या कोई नाला सामने आ पड़ता, तो वह इस्तीफ़ा देने की ठान लेता—यह नौकरी है या बला है। मजे से ज़िन्दगी गुजरती थी। यहाँ कुत्ते-खसी में आ फँसा। लानत है ऐसी नौकरी पर! कहीं मोटर खड्ड में जा पड़े, तो हड्डियों का भी पता न लगे। नई मोटर चौपट हो गई।

बँगले पर पहुँचकर उसने कपड़े बदले, नाश्ता किया और आठ बजे ग़ज़नवी के पास जा पहुँचा। थानेदार कोतवाली में ठहरा था। उसी वक्त वह भी हाज़िर हुआ।

ग़ज़नवी ने वृत्तान्त सुनकर कहा—अमरकान्त कुछ दीवाना तो नहीं हो गया है। बातचीत से तो बड़ा शरीफ़ मालूम होता था, मगर लीडरी भी मुसीबत है। बेचारा कैसे नाम पैदा करे। शायद हज़रत समझे होंगे, यह लोग तो दोस्त हो ही गये, अब क्या फिक्र। 'सैयाँ भये कोतवाल अब डर काहे का!' और ...लों में भी तो शोरिश है। मुमकिन है, वहाँ से ताकीद हुई हो। सूझी है ... को दूर की। और हक़ यह है कि किसानों की हालत ना़ुक है।

यों भी बेचारों को पेट-भर दाना न मिलता था, अब तो जिन्सें और भी सस्ती हो गई। पूरा लगान कहाँ, आधे की भी गुंजाइश नहीं है, मगर सरकार का इन्तज़ाम तो होना ही चाहिये। हुकूमत में कुछ-न-कुछ ख़ौफ़ और रोब का होना भी ज़रूरी है, नहीं, उसकी सुनेगा कौन। किसानों को आज यक़ीन हो जाय कि आधा लगान देकर उनकी जान बच सकती है, तो कल वह चौथाई पर लड़ेंगे और परसों पूरी मुआफी का मुतालबा करेंगे। मैं तो समझता हूँ, आप जाकर लाला अमरकान्त को गिरफ्तार कर लें। एक बार कुछ हलचल मचेगी, मुमकिन है दो-चार गाँवों में फसाद भी हो, मगर खुले हुए फसाद को रोकना उतना मुश्किल नहीं है, जितना इस हवा को। मवाद जब फोड़े की सूरत में आ जाता है, तो उसे चीरकर निकाल दिया जा सकता है, लेकिन वही दिल, दिमाग की तरफ़ चला जाय, तो ज़िन्दगी का ख़ात्मा हो जायगा। आप अपने साथ सुपरिंटेंडेंट पुलीस को भी ले लें और अमर को दफा १२४ में गिरफ्तार कर लें। उस स्वामी को भी लीजिये। दारोग़ाजी, आप जाकर साहब बहादुर से कहिये, तैयार रहें।

सलीम ने व्यथित कण्ठ से कहा—मैं जानता कि यहाँ आते ही आते इस अज़ाब में जान फँसेगी, तो किसी और ज़िले की कोशिश करता। क्या अब मेरा तबादला नहीं हो सकता?

थानेदार ने पूछा—हुज़ूर कोई ख़त न देंगे?

ग़ज़नवी ने डाँट बताई—ख़त की जरूरत नहीं है। क्या तुम इतना भी नहीं कह सकते?

थानेदार सलाम करके चला गया, तो सलीम ने कहा—आपने इसे बुरी तरह डाँटा, बेचारा रुआँसा हो गया। आदमी अच्छा है।

ग़जनवी ने मुसकराकर कहा—जी हाँ, बहुत अच्छा आदमी है। रसद ख़ूब पहुँचाता होगा; मगर रिआया से उसकी दसगुनी वसूल करता है। जहाँ किसी मातहत ने जरूरत से ज़्यादा खिदमत और ख़ुशामद की, मैं समझ जाता हूँ कि यह छटा हुआ गुर्गा है। आपकी लियाक़त का यह हाल है, कि इलाक़े में सदहा वारदातें होती हैं, एक का भी पता नहीं चलता। इसे झूठी शहादतें बनाना भी नहीं आता। बस ख़ुशामद की रोटियाँ खाता है। अगर सरकार

पुलीस का सुधार कर सके, तो स्वराज्य की माँग पचास साल के लिए टल सकती है। आज कोई शरीफ आदमी पुलीस से सरोकार नहीं रखना चाहता। थाने को बदमाशों का अड्डा समझकर उधर से मुँह फेर लेता है। यह सीग़ा इस राज का कलंक है। अगर आपको अपने दोस्त को गिरफ़्तार करने में तकल्लुफ़ हो, तो मैं डी० एस० पी० को ही भेज दूँ। उन्हें गिरफ्तार करना अब हमारा फर्ज हो गया है। अगर आप यह नहीं चाहते, कि उनकी ज़िल्लत हो, तो आप जाइये। अपनी दोस्ती का हक़ अदा करने ही के लिए जाइये। मैं जानता हूँ, आपको सदमा हो रहा है। मुझे खुद रंज है। उस थोड़ी देर की मुलाक़ात मे ही मेरे दिल पर उनका सिक्का जम गया। मैं उनके नेक इरादों की क़द्र करता हूँ; लेकिन हम और वह दो कैम्पों में हैं। स्वराज्य हम भी चाहते हैं, मगर इनक़लाब की सूरत में नहीं। हालाँकि कभी-कभी मुझे भी ऐसा मालूम होता है, कि इनक़लाब के सिवा हमारे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। इतनी फ़ौज रखने की क्या ज़रूरत है, जो सरकार की आमदनी का आधा हज़म कर जाय। फौज का ख़र्च आधा कर दिया जाय, तो किसानों का लगान बड़ी आसानी से आधा हो सकता है। मुझे अगर स्वराज्य से कोई ख़ौफ है तो यह कि मुसलमानों की हालत कहीं और ख़राब न हो जाय। ग़लत तवारीख़ें पढ़-पढ़कर दोनों फ़िरके एक दूसरे के दुश्मन हो गये हैं और मुमकिन नहीं, कि हिन्दू मौक़ा पाकर मुसलमानों से फ़र्ज़ी अदावतों का बदला न लें, लेकिन इस खयाल से तसल्ली होती है, कि इस बीसवीं सदी में हिन्दुओं जैसी पढ़ी-लिखी जमाअत मज़हबी गरोहबन्दी की पनाह नहीं ले सकती। मज़हब का दौरा तो ख़त्म हो रहा है, बल्कि यों कहो, कि ख़त्म हो गया। सिर्फ़ हिन्दुस्तान में उसमें कुछ-कुछ जान बाक़ी है। यह तो दौलत का ज़माना है। अब क़ौम में अमीर और ग़रीब, जायदादवाले और मर-भूखे, अपनी-अपनी जमाअतें बनायेंगे। उनमें कहीं ज्यादा खूँरेज़ी होगी; कहीं ज्यादा तंगदिली होगी। आख़िर एक-दो सदी के बाद दुनिया में एक सल्तनत हो जायगी। सबका एक कानून, एक निज़ाम होगा, क़ौम के ख़ादिम क़ौम पर हुकूमत करेंगे, मज़हब शख़्सी चीज़ होगी। न कोई राजा होगा, न कोई परजा।

फ़ोन की घण्टी बजी, ग़ज़नवी ने चोंगा कान से लगाया-मि०सलीम कब चलोगे

गज़नवी ने पूछा—आप कब तक तैयार होंगे ?

'मैं तैयार हूँ।'

'तो एक घण्टे में आ जाइये।'

सलीम ने लम्बी साँस खींचकर कहा—तो मुझे जाना ही पड़ेगा ?

'बेशक ! मैं आपके और अपने दोस्त को पुलीस के हाथ में नहीं देना चाहता।'

'किसी हीले से अमर को यहीं बुला क्यों न लिया जाय ?'

'वह इस वक़्त नहीं आयेंगे।'

सलीम ने सोचा अपने शहर में जब यह खबर पहुँचेगी, कि मैंने अमर को रफ़्तार किया, तो मुझ पर कितने जूते पड़ेंगे। शान्तिकुमार तो नोच ही यँगे और सकीना तो शायद मेरा मुँह देखना भी पसन्द न करे। इस ख़याल वह काँप उठा। सोने की हँसिया न उगलते बनती थी, न निगलते।

उसने उठकर कहा—आप डी० एस० पी० को भेज दें। मैं नहीं ना चाहता।

गज़नवी ने गम्भीर होकर पूछा—आप चाहते हैं, कि उन्हें वहीं से हथकड़ियाँ नाकर और कमर में रस्सी डालकर चार कांसटेबलों के साथ लाया जाय और पुलीस उन्हें लेकर चले, तो उसे भीड़ को हटाने के लिए गोलियाँ ानी पड़ें ?

सलीम ने घबड़ाकर कहा—क्या डी० एस० पी० को इन सख्तियों से रोका जा सकता।

'अमरकान्त आपके दोस्त हैं, डी० एस० पी० के दोस्त नहीं।'

'तो फिर आप डी० एस० पी० को मेरे साथ न भेजें।'

'आप अमर को यहाँ ला सकते हैं।'

'दग़ा करनी पड़ेगी।'

'अच्छी बात है, आप जाइये, मैं डी० एस० पी० को मना किये देता हूँ।'

'मैं वहाँ कुछ कहूँगा ही नहीं।'

'इसका आपको अख्तियार है।'

सलीम अपने डेरे पर लौटा, तो ऐसा रंजीदा था, गोया अपना कोई अज़ीज़ गया हो। आते ही आते उसने सकीना, शान्तिकुमार, लाला समरकान्त,

नैना, सबों को एक-एक ख़त लिखकर अपनी मजबूरी और दुःख प्रकट किया। सकीना को उसने लिखा—मेरे दिल पर इस वक्त जो गुज़र रही है, वह मैं तुमसे बयान नहीं कर सकता। शायद अपने जिगर पर ख़ञ्जर चलाते हुए भी मुझे इससे ज्यादा दर्द न होता। जिसकी मुहब्बत मुझे यहाँ खींच लाई, उसी को मैं आज इन ज़ालिम हाथों से गिरफ़्तार करने जा रहा हूँ। सकीना, ख़ुदा के लिए मुझे कमीना, बेदर्द और ख़ुदग़रज़ न समझो। मैं ख़ून के आँसू रो रहा हूँ। इसे अपने अञ्चल से पोंछ दो। मुझ पर अमर के इतने एहसान हैं, कि मुझे उनके पसीने की जगह अपना ख़ून बहाना चाहिये था; पर मैं उनके ख़ून का मजा ले रहा हूँ। मेरे गले में शिकारी का तौक़ है और उसके इशारे पर मैं वह सब कुछ करने पर मजबूर हूँ, जो मुझे न करना लाज़िम था। मुझ पर रहम करो, सकीना। मैं बदनसीब हूँ।

ख़ानसामे ने आकर पूछा—हुजूर, खाना तैयार है।

सलीम ने सिर झुकाये हुए कहा—मुझे भूख नहीं है।

ख़ानसामा पूछना चाहता था, हुजूर की तबीयत कैसी है। मेज़ पर कई लिखे ख़त देखकर डर रहा था, कि घर से कोई बुरी खबर तो नहीं आई।

सलीम ने सिर उठाया और हसरत भरे स्वर में बोला—उस दिन वह मेरे एक दोस्त नहीं आये थे, वही देहातियों की-सी सूरत बनाये हुए वह मेरे बचपन के साथी हैं। हम दोनों ने एक ही कॉलेज में पढा। घर के लखपती आदमी हैं। बाप हैं, बाल-बच्चे हैं। इतने लायक हैं, कि मुझे उन्होंने पढ़ाया। चाहते, तो किसी अच्छे ओहदे पर होते। फिर उनके घर हीं किस बात की कमी है, मगर ग़रीबों का इतना दर्द है, कि घर-बार छोड़कर यहीं एक गाँव में किसानों की खिदमत कर रहे हैं। उन्हीं को गिरफ़्तार करने का मुझे हुक्म हुआ है।

ख़ानसामा और समीप आकर ज़मीन पर बैठ गया—क्या क़सूर किया था हुज़ूर, उन बाबू साहब ने?

'क़सूर! कोई क़सूर नहीं, यही कि किसानों की मुसीबत उनसे नहीं देखी जाती।'

'हुज़ूर ने बड़े साहब को समझाया नहीं।'

'मेरे दिल पर इस वक्त जो कुछ गुजर रही है, वह मैं ही जानता हूँ हनीफ़, ादमी नहीं फरिश्ता है। यह है सरकारी नौकरी।'

'तो हुजूर को जाना पड़ेगा ?'

'हाँ, इसी वक्त। इस तरह दोस्ती का हक़ अदा किया जाता है।'

'तो उन बाबू साहब को नज़रबन्द किया जायगा हुज़ूर ?'

'खुदा जाने क्या किया जायगा। ड्राइवर से कहो मोटर लावे। शाम ह लौट आना ज़रूरी है।'

जरा देर में मोटर आ गई। सलीम उसमें आकर बैठा, तो उसकी आँखें ल थीं।



आज कई दिन के बाद तीसरे पहर सूर्यदेव ने पृथ्वी की पुकार सुनी और जैसे समाधि से निकलकर उसे आशीर्वाद दे रहे थे। पृथ्वी मानो अचल फैलाये उनका आशीर्वाद बटोर रही थी।

इसी वक्त स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त दोनों दो ाओं से मदरसे में आये।

अमरकान्त ने माथे से पसीना पोछते हुए कहा—हम लोगों ने कितना अच्छा ाम बनाया था, कि एक साथ लौटे। एक क्षण का भी विलम्ब न हुआ। ड खा-पीकर फिर निकलें और आठ बजते-बजते लौट आवे।'

आत्मानन्द ने भूमि पर लेटकर कहा—भैया, अभी तो मुझसे एक पग न ा जायगा, हाँ, प्राण लेना चाहो, तो ले लो। भागते-भागते कचूमर निकल । पहले शर्बत बनवाओ, पीकर ठण्ढे हों, तो आँखें खुलें।

'तो फिर आज काम समाप्त हो चुका।'

'हो या भाड़ में जाय, क्या प्राण दे दे। तुमसे हो सकता है करो, मुझसे तो नहीं हो सकता।'

अमर ने मुसकराकर कहा—यार! मुझसे दूने तो हो, फिर भी चें बोल गये! मुझे अपना बल और अपना पाचन दे दो, फिर देखो मैं क्या करता हूँ।

आत्मानन्द ने सोचा था, उनकी पीठ ठोंकी जायगी, यहाँ उनके पौरुष पर आक्षेप हुआ। बोले, तुम मरना चाहते हो, मैं जीना चाहता हूँ।

'जीने का उद्देश्य तो कर्म है।'

'हाँ, मेरे जीवन का उद्देश्य कर्म ही है। तुम्हारे जीवन का उद्देश्य तो अकाल मृत्यु है।'

'अच्छा शर्बत पिलवाता हूँ, उसमें दही भी डलवा दूँ?'

'हाँ, दही की मात्रा अधिक हो और दो लोटे से कम न हो। इसके दो घण्टे बाद भोजन चाहिए।'

'मार डाला! तब तक तो दिन ही गायब हो जायगा।'

अमर ने मुन्नी को बुलाकर शर्बत बनाने को कहा और स्वामीजी के बराबर ही ज़मीन पर लेटकर पूछा—इलाक़े की क्या हालत है?

'मुझे तो भय हो रहा है, कि लोग धोखा देंगे। बेदख़ली शुरू हुई, तो बहुतों के आसन डोल जायँगे।'

'तुम तो दार्शनिक न थे, यह घी पत्ते पर या पत्ता घी पर की शंका कहाँ से लाये?'

'ऐसा काम ही क्यों किया जाय, जिसका अन्त लज्जा और अपमान हो। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे बड़ी निराशा हुई।'

'इसका अर्थ यह है, कि आप इस आन्दोलन के नायक बनने के योग्य नहीं हैं। नेता में आत्म-विश्वास और साहस और धैर्य, ये मुख्य लक्षण हैं।'

मुन्नी शर्बत बनाकर लाई। आत्मानन्द ने कमण्डलु भर लिया और एक साँस में चढ़ा गये। अमरकान्त एक कटोरे से ज़्यादा न पी सके।

आत्मानन्द ने मुँह चिढ़ाकर कहा—बस! फिर भी आप अपने को मनुष्य कहते हैं।

अमर ने जवाब दिया—बहुत खाना पशुओं का काम है।

'जो खा नहीं सकता वह काम क्या करेगा।'

'नहीं, जो कम खाता है, वही काम कर सकता है। पेटू के लिए सबसे बड़ा काम भोजन पचाना है।'

सलोनी कल से बीमार थी। अमर उसे देखने चला था कि मदरसे के सामने ही मोटर आते देखकर रुक गया। शायद इस गाँव में मोटर पहली ही बार आई है। वह सोच रहा था, किसकी मोटर है, कि सलीम उसमें से उतर पड़ा। अमर ने लपककर हाथ मिलाया—कोई ज़रूरी काम था, मुझे क्यों न बुला लिया?

दोनों आदमी मदरसे में आये। अमर ने एक खाट लाकर डाल दी और बोला—तुम्हारी क्या ख़ातिर करूँ। यहाँ तो फ़क़ीरों की हालत है। शर्बत बनवाऊँ?

सलीम ने सिगार जलाते हुए कहा—नहीं, कोई तकल्लुफ़ नहीं। मि० ग़ज़नवी तुमसे किसी मुआमले में सलाह करना चाहते हैं। मैं आज ही जा रहा हूँ। सोचा तुम्हें भी लेता चलूँ। तुमने तो कल आग लगा ही दी। अब तहक़ीक़ात से क्या फायदा होगा। वह तो बेकार हो गई।

अमर ने कुछ झिझकते हुए कहा—महन्तजी ने मजबूर कर दिया। क्या करता।

सलीम ने दोस्ती की आड़ ली—मगर इतना तो सोचते कि यह मेरा इलाक़ा है और यहाँ की सारी ज़िम्मेदारी मुझ पर है। मैंने सड़क के किनारे अक्सर गाँवों में लोगों के जमाव देखे। कहीं-कहीं तो मेरी मोटर पर पत्थर भी फेंके गये। यह अच्छे आसार नहीं हैं। मुझे ख़ौफ़ है, कोई हंगामा न हो जाय। अपने हक़ के लिए या बेजा ज़ुल्म के ख़िलाफ़ रिआया मे जोश हो, तो मैं इसे बुरा नहीं समझता, लेकिन यह लोग क़ायदे-क़ानून के अन्दर रहेंगे, मुझे इसमें शक है। तुमने गूँगों को आवाज़ दी, सोतों को जगाया; लेकिन ऐसी तहरीक के लिए जितने ज़ब्त और सब्र की ज़रूरत है, उसका दसवाँ हिस्सा भी मुझे नज़र नहीं आता।

अमर को इस कथन में शासन-पक्ष की गन्ध आई। बोला—तुम्हें यक़ीन है कि तुम भी वही ग़लती नहीं कर रहे हो, जो हुक्काम किया करते हैं? जिनकी ज़िन्दगी आराम और फ़राग़त से गुज़र रही है, उनके लिए सब्र और ज़ब्त की

हाँक लगाना आसान है; लेकिन जिनकी ज़िन्दगी का हरेक दिन एक नई मुसीबत है, वह नजात को अपनी जनवासी चाल से आने का इन्तज़ार नहीं कर सकते वह उसे खींच लाना चाहते हैं, और जल्द-से-जल्द।

'मगर नजात के पहले क़यामत आयेगी, यह भी याद रहे।'

'हमारे लिए यह अंधेर ही क़यामत है। जब पैदावार लागत से भी कम हो, तो लगान की गुंजाइश कहाँ। उस पर भी हम आठ आने पर राज़ी थे; मगर बारह आने हम किसी तरह नहीं दे सकते। आख़िर सरकार किफ़ायत क्यों नहीं करती? पुलिस और फौज और इन्तज़ाम पर क्यों इतनी बेदर्दी से रुपए उड़ाये जाते हैं! किसान गूँगे हैं, बेबस हैं, कमज़ोर हैं। क्या इसलिए सारा नज़ला उन्हीं पर गिरना चाहिए?'

सलीम ने अधिकार-गर्व से कहा—इसका नतीजा क्या होगा, जानते हो! गाँव-के-गाँव बरबाद हो जायँगे, फौजी क़ानून जारी हो जायगा, शायद पुलीस बैठा दी जायगी, फ़स्लें नीलाम कर दी जायँगी, जमीनें जब्त हो जायँगी। कयामत का सामना होगा।

अमरनाथ ने अविचलित भाव से कहा—जो कुछ भी हो। मर मिटना ज़ुल्म के सामने सिर झुकाने से अच्छा है।

मदरसे के सामने हुजूम बढ़ता जाता था। सलीम ने विवाद का अन्त करने के लिए कहा—चलो, इस मुआमले पर रास्ते में बहस करेंगे। देर हो रही है।

अमर ने चट-पट कुरता गले में डाला और आत्मानन्द से दो-चार जरूरी बातें करके आ गया। दोनों आदमी आकर मोटर पर बैठे। मोटर चली, तो सलीम की आँखों में आँसू डबडबाए हुए थे।

अमर ने सशंक होकर पूछा—मेरे साथ दग़ा तो नहीं कर रहे हो?

सलीम ने अमर के गले लिपटकर कहा—इसके सिवा और दूसरा रास्ता न था। मैं नहीं चाहता था, कि तुम्हें पुलीस के हाथों ज़लील किया जाय।

'तो ज़रा ठहरो, मैं अपनी कुछ ज़रूरी चीज़ें तो ले लूँ।'

'हाँ हाँ ले लो, लेकिन राज़ खुल गया, तो यहाँ मेरी लाश नज़र आयेगी।'

'तो चलो कोई मुज़ायका नहीं।'

गाँव के बाहर निकले ही थे, कि मुन्नी आती हुई दिखाई दी। अमर मोटर रुकवाकर पूछा—तुम कहाँ गई थी मुन्नी? धोबी से मेरे कपड़े कर रख लेना। सलोनी काकी के लिए मेरी कोठरी मे ताक़ पर दवा रखी है। ला देना।

मुन्नी ने सहमी हुई आँखों से देखकर पूछा—तुम कहाँ जाते हो?

'एक दोस्त के यहाँ दावत खाने जा रहा हूँ।'

मोटर चली। मुन्नी ने पूछा—कब तक आओगे?

अमर ने सिर निकालकर उसे दोनों हाथ जोड़कर कहा—जब ग्य लाये।

साथ के पढ़े, साथ के खेले, दो अभिन्न मित्र, जिनमे धौल-धप्पा, हँसी-मज़ाक सब कुछ होता रहता था, परिस्थितियों के चक्कर मे पड़ कर दो अलग रास्तो पर जा रहे थे। लक्ष्य दोनो का एक था, उद्देश्य एक, दोनो ही देश-भक्त, दोनो ही किसानों के शुभेच्छु; पर एक अफ़सर था, दूसरा क़ैदी। दोनो सटे हुए बैठे थे, पर जैसे बीच में कोई दीवार खड़ी हो। अमर प्रसन्न था, मानो शहादत के ज़ीने पर चढ रहा हो। सलीम दुःखी था, जैसे भरी सभा में अपनी जगह से उठा दिया गया हो। विकास के सिद्धान्त का खुली सभा में समर्थन करके उसकी आत्मा विजयी होती, निरंकुशता की शरण लेकर वह जैसे कोठरी में छिपा बैठा था।

सहसा सलीम ने मुसकराने की चेष्टा करके कहा—क्यों अमर, मुझसे खफ़ा हो?

अमर ने प्रसन्न मुख से कहा—बिलकुल नहीं। मैं तुम्हे अपना वही पुराना दोस्त समझ रहा हूँ। उसूलों की लड़ाई हमेशा होती रही है और होती रहेगी। दोस्ती में इससे फ़र्क़ नहीं आता।

सलीम ने अपनी सफाई दी—भाई इन्सान इन्सान है, दो मुखालिफ़ गिरोहों में आकर दिल मे कीना या मलाल पैदा हो जाय, तो ताज्जुब नहीं। पहले डी० एस० पी० को भेजने की सलाह थी; पर मैंने इसे मुनासिब न समझा।

'इसके लिए मैं तुम्हारा बड़ा एहसानमन्द हूँ। मेरे ऊपर कोई मुक़दमा चलाया जायगा?'

'हाँ तुम्हारी तक़रीरों की रिपोर्ट मौजूद है, और शहादतें भी जमा की गई हैं। तुम्हारा क्या ख़याल है, तुम्हारी गिरफ्तारी से यह शोरिश दब जायगी या नहीं?'

'कुछ कह नहीं सकता। अगर मेरी गिरफ़्तारी या सज़ा से दब जाय, तो इसका दब जाना ही अच्छा।'

उसने एक क्षण के बाद फिर कहा—रिआया को मालूम है, कि उनके क्या-क्या हक़ हैं। यह भी मालूम है कि हक़ों की हिफ़ाज़त के लिए कुरबानियाँ करनी पड़ती हैं। मेरा फ़र्ज यहीं तक ख़त्म हो गया। अब वह जानें और उनका काम जाने। मुमकिन है, सख़्तियों से दब जायँ, मुमकिन है, न दबें; लेकिन दबें या उठें, उन्हे चोट ज़रूर लगी है। रिआया का दब जाना, किसी सरकार की कामयाबी की दलील नहीं है।

मोटर के जाते ही सत्य मुन्नी के सामने चमक उठा। वह आवेश मे चिल्ला उठी—लाला पकड़ गये! और उसी आवेश में मोटर के पीछे दौड़ी। चिल्लाती जाती थी—लाला पकड़ गये।

वर्षाकाल में किसानों को हार मे बहुत काम नहीं होता। अधिकतर लोग घरों पर होते है। मुन्नी की आवाज़ मानो ख़तरे का बिगुल थी। दम-के-दम में सारे गाँव में यह आवाज़ गूँज उठी—भैया पकड़ गये!

स्त्रियाँ घरों में से निकल पड़ीं—भैया पकड़ गये!

क्षण-मात्र में सारा गाँव जमा हो गया और सड़क की तरफ़ दौड़ा। मोटर घूमकर सड़क से जा रही थी। पगडंडियों का एक सीधा रास्ता था। लोगों ने अनुमान किया, अभी इस रास्ते मोटर पकड़ी जा सकती है। सब उसी रास्ते दौड़े।

काशी बोला—मरना तो एक दिन है ही।

मुन्नी ने कहा—पकड़ना है, तो सबको पकड़े। ले चले सबको।

पयाग बोला—सरकार का काम है चोर बदमाशों को पकड़ना या ऐसों को दूसरों के लिए जान लड़ा रहे हैं! वह देखो मोटर आ रही है। बस, सब रास्ते में खड़े हो जाओ। कोई न हटना, चिल्लाने दो।

सलीम मोटर रोकता हुआ बोला—अब कहो भाई। निकालूँ पिस्तौल?

अमर ने उसका हाथ पकड़कर कहा—नहीं-नहीं, मैं इन्हे समझाये देता हूँ।

'मुझे पुलिस के दो-चार आदमियों को साथ ले लेना था।'

'घबड़ाओ मत, पहले मैं मरूँगा, फिर तुम्हारे ऊपर कोई हाथ उठायेगा।'

अमर ने तुरन्त मोटर से सिर निकालकर कहा—बहनो और भाइयो, अब मुझे विदा कीजिए। आप लोगों के सत्संग मे मुझे जितना स्नेह और सुख मिला, उसे मैं कभी भूल नहीं सकता। मैं परदेशी मुसाफिर था। आपने मुझे स्थान दिया, आदर दिया, प्रेम दिया। मुझसे भी जो कुछ सेवा हो सकी, वह मैंने की। अगर मुझसे कुछ भूल-चूक हुई हो, तो क्षमा करना। जिस काम का बीड़ा उठाया है, उसे छोड़ना मत, यही मेरी याचना है। सब काम ज्यों का-त्यों होता रहे यही सबसे बड़ा उपहार है, जो आप मुझे दे सकते हैं। प्यारे बालको, मैं जा रहा हूँ, लेकिन मेरा आशीर्वाद सदैव तुम्हारे साथ रहेगा।

काशी ने कहा—भैया, हम सब तुम्हारे साथ चलने को तैयार हैं।

अमर ने मुस्कराकर उत्तर दिया—नेवता तो मुझे मिला है, तुम लोग कैसे जाओगे?

किसी के पास इसका जवाब न था। भैया बात ही ऐसी कहते हैं, कि किसी से उसका जवाब नहीं बन पड़ता।

मुन्नी सबसे पीछे खड़ी थी, उसकी आँखें सजल थीं। इस दशा में अमर के सामने कैसे जाय। हृदय मे जिस दीपक को जलाये, वह अपने अँधेरे जीवन में प्रकाश का स्वप्न देख रही थी, वह दीपक कोई उसके हृदय से निकाले लिये जाता है। वह सूना अन्धकार क्या फिर वह सह सकेगी!

सहसा उसने उत्तेजित होकर कहा—इतने जने खड़े ताकते क्या हो! उतार लो मोटर से! जन-समूह में एक हलचल मची। एक ने दूसरे की ओर क़ैदियों की तरह देखा, कोई बोला नहीं।

मुन्नी ने फिर ललकारा—खड़े ताकते क्या हो, तुम लोगों में कुछ हया है या नहीं। जब पुलीस और फ़ौज इलाक़े को ख़ून से रँग देती, तभी...

अमर ने मोटर से निकलकर कहा—मुन्नी, तुम बुद्धिमती होकर ऐसी बातें कर रही हो! मेरे मुँह मे कालिख मत लगाओ।

मुन्नी उन्मत्तों की भाँति बोली—मैं बुद्धिमान् नहीं, मैं तो मूरख हूँ, गँवारिन हूँ। आदमी एक-एक पत्ती के लिए सिर कटा देता है, एक-एक बात पर जान दे देता है। क्या हम लोग खड़े ताकते रहें और तुम्हें कोई पकड़ ले जाय? तुमने कोई चोरी की है, डाका मारा है?

कई आदमी उत्तेजित होकर मोटर की ओर बढ़े, पर अमरकान्त की डाट सुनकर ठिठक गये—क्या करते हो! पीछे हट जाओ। अगर मेरे इतने दिनों की सेवा और शिक्षा का यही फल है, तो मैं कहूँगा कि मेरा सारा परिश्रम धूल में मिल गया। यह हमारा धर्म-युद्ध है और हमारी जीत, हमारे त्याग, हमारे बलि-दान और हमारे सत्य पर है।

जादू का-सा असर हुआ। लोग रास्ते से हट गये। अमर मोटर में बैठ गया और मोटर चली।

मुन्नी ने आँखों मे क्षोभ और क्रोध के आँसू भर अमरकान्त को प्रणाम किया। मोटर के साथ जैसे उसका हृदय भी उड़ा जाता हो।

——

पाँचवाँ भाग

कर्मभूमि

१

लखनऊ का सेंट्रल जेल शहर से बाहर खुली हुई जगह मे है। सुखदा उसी जेल के ज़नाने वार्ड मे एक वृक्ष के नीचे खडी बादलों की घुड-दौड देख रही है। बरसात बीत गई है। आकाश मे बडी धूम से घेर-घार होता है; पर छींटे पटकर रह जाते हैं। दानी के दिल में अब भी दया है, पर हाथ ख़ाली है। जो कुछ था, लुटा चुका।

जब कोई अन्दर आता है और सदर द्वार खुलता है, तो सुखदा द्वार के सामने आकर खडी हो जाती है। द्वार एक ही क्षण मे बन्द हो जाता है; पर बाहर के ससार की उसी एक झलक के लिए वह कई-कई घण्टे उस वृक्ष के नीचे खडी रहती है, जो द्वार के सामने है। उस मील-भर की चारदीवारी के अन्दर जैसे उसका दम घुटता है। उसे यहाँ आये अभी पूरे दो महीने भी नहीं हुए; पर ऐसा जान पडता है, दुनिया में न-जाने क्या-क्या परिवर्तन हो गये। पथिकों को राह चलते देखने में भी अब एक विचित्र आनन्द था। बाहर का ससार कभी इतना मोहक न था।

वह कभी-कभी सोचती है—उसने सफ़ाई दी होती, तो शायद बरी हो जाती; पर क्या मालूम था, चित्त की यह दशा होगी। वे भावनाएँ, जो कभी भूलकर मन में न आती थीं, अब किसी रोगी की कुपथ्य चेष्टाओं की भाँति मन को उद्विग्न करती रहती थीं। झूला झूलने की उसे कभी इच्छा न होती थी; पर आज बार-बार जी चाहता था—रस्सी हो, तो इसी वृक्ष में झूला डालकर झूले। अहाते में ग्वालो की लडकियाँ भैंसें चराती हुई आम की उबाली हुई गुठलियाँ तोड-तोड खा रही हैं। सुखदा ने एक बार बचपन मे एक गुठली चखी थी। उस वक्त वह कसैली लगी थी। फिर उस अनुभव को उसने नहीं दुहराया, पर इस समय उन गुठलियों पर उसका मन ललचा रहा है। उनकी कठोरता, उनका सोंधापन, उनकी सुगन्ध उसे कभी इतनी प्रिय न लगी थी। उसका चित्त कुछ अधिक कोमल हो गया है, जैसे पाल मे पडकर कोई फल अधिक रसीला, स्वादिष्ठ, मधुर, मुलायम हो गया हो। लल्लू को वह एक क्षण के लिए भी आँखों से

ओझल न होने देती। वही उसके जीवन का आधार था। दिन में कई बार उसके लिए दूध, हलवा आदि पकाती। उसके साथ दौड़ती, खेलती, यहाँ तक कि जब वह बुआ या दादा के लिए रोता, तो खुद रोने लगती थी। अब उसे बार-बार अमर की याद आती है। उसकी गिरफ्तारी और सजा का समाचार पाकर उन्होंने जो ख़त लिखा होगा, उसे पढ़ने के लिए उसका मन तड़प-तड़पकर रह जाता है।

लेडी मेट्रन ने आकर कहा—सुखदा देवी, तुम्हारे ससुर तुमसे मिलने आये हैं। तैयार हो जाओ। साहब ने २० मिनट समय दिया है।

सुखदा ने चट-पट लल्लू का मुँह धोया, नये कपड़े पहनाये, जो कई दिन पहले जेल में सिये थे और उसे गोद में लिये मेट्रन के साथ बाहर निकली, मानो पहले ही से तैयार बैठी हो।

मुलाक़ात का कमरा जेल के मध्य में था और रास्ता बाहर ही से था। एक महीने के बाद जेल से बाहर निकल कर सुखदा को ऐसा उल्लास हो रहा था, मानो कोई रोगी शय्या से उठा हो। जी चाहता था, सामने के मैदान में ख़ूब उछले। और लल्लू तो चिड़ियों के पीछे दौड़ रहा था।

लाला समरकान्त वहाँ पहले ही से बैठे हुए थे। लल्लू को देखते ही गद्‌गद हो गये और गोद में उठाकर बार-बार उसका मुँह चूमने लगे। उसके लिए मिठाई, खिलौने, फल, कपड़े, पूरा एक गठर लाये थे, सुखदा भी श्रद्धा और भक्ति से पुलकित हो उठी। उनके चरणों पर गिर पड़ी और रोने लगी; इसलिए नहीं, कि उस पर कोई विपत्ति पड़ी है, बल्कि रोने में ही आनन्द आ रहा है।

समरकान्त ने आशीर्वाद देते हुए पूछा—यहाँ तुम्हें जिस बात का कष्ट हो, मेट्रन साहब से कहना। मुझ पर इनकी बड़ी कृपा है। लल्लू अब शाम को रोज बाहर खेला करेगा। और किसी बात की तकलीफ़ तो नहीं है?

सुखदा ने देखा—समरकान्त दुबले हो गये हैं। स्नेह से उसका हृदय जैसे छलक उठा। बोली—मैं तो यहाँ बड़े आराम से हूँ; पर आप क्यों इतने दुबले हो गये हैं?

'यह न पूछो, यह पूछो कि आप जीते कैसे हैं। नैना भी चली गई, अब
ग भूतों का डेरा हो गया है। सुनता हूँ, लाला मनीराम अपने पिता से अलग
होकर दूसरा विवाह करने जा रहे हैं। तुम्हारी माताजी तीर्थ-यात्रा करने चली
ईं। शहर में आन्दोलन चला जा रहा है। उस जमीन पर दिन-भर जनता
की भीड़ लगी रहती है। कुछ लोग रात को वहीं सोते हैं। एक दिन तो
रातों-रात वहाँ सैकड़ों झोपड़े खड़े हो गये, लेकिन दूसरे दिन पुलीस ने उन्हें
हला दिया और कई चौधरियों को पकड़ लिया।

सुखदा ने मन-ही-मन हर्षित होकर पूछा—यह लोगों ने क्या नादानी की।
वहाँ अब कोठियाँ बनने लगी होंगी?

समरकान्त बोले—हाँ, ईंटें, चूना, सुर्खी तो जमा की गई थी, लेकिन एक
दिन रातों-रात सारा सामान उड़ गया। ईंटें बिखेर दी गईं, चूना मिट्टी में
मिला दिया गया। तब से वहाँ किसी को मजूर ही नहीं मिलते। न कोई
बेलदार जाता है, न कारीगर। रात को पुलीस का पहरा रहता है। वही
बुढ़िया पठानिन आज-कल वहाँ सब कुछ कर-धर रही है। ऐसा संगठन कर
लिया है, कि आश्चर्य होता है।

जिस काम में वह असफल हुई, उसे वह खप्पट बुढ़िया सुचारु रूप से चला
रही है, इस विचार से उसके आत्माभिमान को चोट लगी। बोली—वह
बुढ़िया तो चल-फिर भी न पाती थी!

'हाँ, वही बुढ़िया अच्छे-अच्छों के दाँत खट्टे कर रही है। जनता को तो
उसने ऐसा मुट्ठी में कर लिया है, कि क्या कहूँ। भीतर बैठे हुए कल घुमाने-
वाले शान्ति बाबू हैं।'

सुखदा ने आज तक उनसे या किसी से, अमरकान्त के विषय में कुछ न
पूछा था; पर इस वक्त वह मन को न रोक सकी—हरिद्वार से कोई पत्र
आया था?

लाला समरकान्त की मुद्रा कठोर हो गई। बोले—हाँ, आया था। उसी
शोहदे सलीम का ख़त था। वही उस इलाके का हाकिम है। उसने भी
पकड़-धकड़ शुरू कर दी है। उसने खुद लालाजी को गिरफ्तार किया। यह
आपके मित्रों का हाल है। अब आँखें खुली होंगी। मेरा क्या बिगड़ा।

आप ठोकरें खा रहे हैं। अब जेल में चक्की पीस रहे होंगे। गये थे गरीबों की सेवा करने। यह उसी का उपहार है। मैं तो ऐसे मित्र को गोली मार देता। गिरफ्तार तक हुए, पर मुझे पत्र न लिखा। उनके हिसाब से तो मैं मर गया; मगर बुड्ढा अभी मरने का नाम नहीं लेता, चैन से खाता है और सोता है। किसी के मनाने से नहीं मरा जाता। ज़रा यह मुटमरदी देखो कि घर में किसी को ख़बर तक न दी। मैं दुश्मन था, नैना तो दुश्मन न थी, शान्तिकुमार तो दुश्मन न थे। यहाँ से कोई जाकर मुक़दमे की पैरवी करता, तो ए०, बी० कोई दर्जा तो मिल जाता। नहीं मामूली क़ैदियों की तरह पड़े हुए हैं। आप रोयेंगे, मेरा क्या बिगड़ता है।

सुखदा कातर कंठ से बोली—आप अब से क्यों नहीं चले जाते।

समरकान्त ने नाक सिकोड़कर कहा—मैं क्यों जाऊँ, अपने कर्मों का फल भोगें। वह लड़की जो थी, सकीना, उसकी शादी की बातचीत उसी दुष्ट सलीम से हो रही है, जिसने लालाजी को गिरफ्तार किया है। अब आँखें खुली होंगी।

सुखदा ने सहृदयता से भरे हुए स्वर में कहा—आप तो उन्हें कोस रहे हैं दादा। वास्तव में दोष उनका न था। सरासर मेरा अपराध था। उनका-सा तपस्वी पुरुष मुझ-जैसी विलासिनी के साथ कैसे प्रसन्न रह सकता था; बल्कि यों कहो कि दोष न मेरा था, न आपका, न उनका, सारा विष लक्ष्मी ने बोया। आपके घर में उनके लिए स्थान न था। आप उनसे बराबर खिंचे रहते थे। मैं भी उसी जल-वायु में पली थी। उन्हें न पहचान सकी। वह अच्छा या बुरा जो कुछ करते थे, घर में उनका विरोध होता था। बात बात पर उनका अपमान किया जाता था। ऐसी दशा में कोई भी सन्तुष्ट न रह सकता था। मैंने यहाँ एकान्त में इस प्रश्न पर खूब विचार किया है और मुझे अपना दोष स्वीकार करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है। आप एक क्षण भी यहाँ न ठहरें। वहाँ जाकर अधिकारियों से मिलें, सलीम से मिलें और उनके लिए जो कुछ हो सके, करें। हमने उनकी विशाल तपस्वी आत्मा को भोग के बन्धनों से बाँधकर रखना चाहा था। आकाश में उड़नेवाले पक्षी को पिंजरे में बन्द करना चाहते थे। जब पक्षी पिंजरे को तोड़कर उड़ गया, तो मैंने समझा,

मैं अभागिनी हूँ। आज मुझे मालूम हो रहा है, वह मेरा परम सौभाग्य था।

समरकान्त एक क्षण तक चकित नेत्रों से सुखदा की ओर ताकते रहे, मानो अपने कानों पर विश्वास न आ रहा हो। इस शीतल क्षमा ने जैसे उनके मुरझाये हुए पुत्र स्नेह को हरा कर दिया। बोले—इसकी तो मैंने खूब जाँच की, बात कुछ नहीं थी। उसे क्रोध था, उसी क्रोध मे जो कुछ मुँह में आया बक गया। यह ऐब उसमें कभी न था; लेकिन उस वक्त मैं भी अन्धा हो रहा था। फिर मैं कहता हूँ, मिथ्या नही सत्य ही सही, सोलहों आने सत्य सही, तो क्या ससार में जितने ऐसे मनुष्य हैं, उनकी गरदन मार दी जाती है। मैं बड़े-बड़े व्यभिचारियों के सामने मस्तक नवाता हूँ। तो फिर अपने ही घर में और उन्हीं के ऊपर जिनसे किसी प्रतिकार की शका नहीं, धर्म और सदाचार का सारा भार लाद दिया जाय? मनुष्य पर जब प्रेम का बन्धन नहीं होता, तभी वह व्यभिचार करने लगता है। भिक्षुक द्वार-द्वार इसी लिए जाता है, कि एक द्वार से उसकी क्षुधा-तृप्ति नहीं होती। अगर इसे दोष भी मान लूँ, तो ईश्वर ने क्यो निर्दोष ससार नहीं बनाया? जो कहो कि ईश्वर की इच्छा ऐसी नहीं है, तो मैं पूँछूँगा, जब सब ईश्वर के अधीन है, तो वह मन को ऐसा क्यो बना देता है, कि उसे किसी टूटी झोंपड़ी की भाँति बहुत-सी थूनियो से सँभालना पडे। यह तो ऐसा ही है, जैसे किसी रोगी से कहा जाय कि तू अच्छा हो जा। अगर रोगी में इतनी सामर्थ्य होती, तो वह बीमार ही क्यो पडता।

एक ही साँस में अपने हृदय का सारा मालिन्य उँडेल देने के बाद लालाजी दम लेने के लिए रुक गये। जो कुछ इधर-उधर लगा-चिपटा रह गया हो, शायद उसे भी खुरचकर निकाल देने का प्रयत्न कर रहे हैं?

सुखदा ने पूछा—तो आप वहाँ कब जा रहे हैं?

लालाजी ने तत्परता से कहा—आज ही, इधर ही से चला जाऊँगा। सुना है, वहाँ बडे ज़ोरों से दमन हो रहा है। अब तो वहाँ का हाल समाचार पत्रों में भी छपने लगा। कई दिन हुए, मुन्नी नाम की कोई स्त्री भी कई आदमियों के साथ गिरफ्तार हुई है। कुछ इसी तरह की हलचल सारे प्रान्त, बल्कि सारे देश में मची हुई है। सभी जगह पकड़-धकड हो रही है।

बालक कमरे के बाहर निकल गया था। लालाजी ने उसे पुकारा, तो वह सड़क की ओर भागा। समरकान्त भी उसके पीछे दौड़े। बालक ने समझा, खेल हो रहा है। और तेज़ दौड़ा। ढाई-तीन साल के बालक की तेज़ी ही क्या, किन्तु समरकान्त जैसे स्थूल आदमी के लिए पूरी कसरत थी। बड़ी मुश्किल से उसे पकड़ा।

एक मिनिट के बाद कुछ इस भाव से बोले, जैसे कोई सारगर्भित कथन हो—मैं तो सोचता हूँ, जो लोग जाति-हित के लिए अपनी जान होम करने को हरदम तैयार रहते हैं, उनकी बुराइयों पर निगाह ही न डालनी चाहिए।

सुखदा ने विरोध किया—यह न कहिए दादा। ऐसे मनुष्यों का चरित्र आदर्श होना चाहिए; नहीं, उनके परोपकार में भी स्वार्थ और वासना की गन्ध आने लगेगी।

समरकान्त ने तत्त्वज्ञान की बात कही—स्वार्थ मैं उसी को कहता हूँ, जिसके मिलने से चित्त को हर्ष और न मिलने से क्षोभ हो। ऐसा प्राणी, जिसे हर्ष और क्षोभ हो ही नहीं, मनुष्य नहीं है, देवता भी नहीं है, जड़ है।

सुखदा मुसकराई—तो संसार में कोई निस्स्वार्थ हो ही नहीं सकता!

'असम्भव। स्वार्थ छोटा हो, तो स्वार्थ है; बड़ा हो, तो उपकार है। मेरा तो विचार है, ईश्वर-भक्ति भी स्वार्थ है।'

मुलाक़ात का समय कब का गुज़र चुका था। मेट्रन अब और रिआयत न कर सकती थी। समरकान्त ने बालक को प्यार किया, बहू को आशीर्वाद दिया, और बाहर निकले।

बहुत दिनों के बाद आज उन्हें अपने भीतर आनन्द और प्रकाश का अनुभव हुआ, मानों चन्द्रदेव के मुख से मेघों का आवरण हट गया हो।

———



सुखदा अपने कमरे में पहुँची, तो देखा—एक युवती क़ैदियों के कपड़े पहने उसके कमरे की सफ़ाई कर रही है। एक चौकीदारिन बीच-बीच में उसे डाँटती जाती है।

चौकीदारिन ने क़ैदिन की पीठ में लात मारकर कहा—राँड, तुझे झाड़ू लगाना भी नहीं आता। गर्द क्यों उड़ाती है? हाथ दबाकर लगा।

क़ैदिन ने झाड़ू फेंक दी और तमतमाये हुए मुख से बोली—मैं यहाँ किसी की टहल करने नहीं आई हूँ।

'तब क्या रानी बनकर आई है?'

'हाँ रानी बनकर आई हूँ। किसी की चाकरी करना मेरा काम नहीं है।'

'तू झाड़ू लगावेगी कि नहीं?'

'भलमनसी से कहो, तो मैं तुम्हारे भङ्गी के घर में भी झाड़ू लगा दूँगी; लेकिन मार का भय दिखाकर तुम मुझसे राजा के घर में भी झाड़ू नहीं लगवा सकतीं। इतना समझ रखो।'

'तू न लगायेगी झाड़ू?'

'नहीं!'

चौकीदारिन ने क़ैदिन के केश पकड़ लिये और खींचती हुई कमरे के बाहर ले चली। रह-रहकर गालों पर तमाचे भी लगाती जाती थी।

'चल जेलर साहब के पास!'

'हाँ, ले चलो। मैं यही उनसे भी कहूँगी। मार-गाली खाने नहीं आई हूँ।'

सुखदा के लगातार लिखा-पढ़ी करने पर यह टहलनी दी गई थी, पर यह काँड देखकर सुखदा का मन क्षुब्ध हो उठा। इस कमरे में क़दम रखना भी उसे बुरा लग रहा था।

क़ैदिन ने उसकी ओर सजल आँखों से देखकर कहा—तुम गवाह रहना। इस चौकीदारिन ने मुझे कितना मारा है।

सुखदा ने समीप जाकर चौकीदारिन को हटाया और कैदिन का हाथ पकड़ कर कमरे में ले गई।

चौकीदारिन ने धमकाकर कहा—रोज़ सबेरे यहाँ आ जाया कर। जो काम यह कहें, वह किया कर। नहीं डण्डे पड़ेंगे।

कैदिन क्रोध से काँप रही थी—मैं किसी की लौंडी नहीं हूँ और न यह काम करूँगी। किसी रानी-महारानी की टहल करने नहीं आई। जेल में सब बराबर हैं।

सुखदा ने देखा युवती में आत्म सम्मान की कमी नहीं। लज्जित होकर बोली—यहाँ कोई रानी-महारानी नहीं है बहन, मेरा जी अकेले घबराया करता था, इसलिए तुम्हें बुला लिया। हम दोनो यहाँ बहनों की तरह रहेंगी। क्या नाम है तुम्हारा ?

युवती की कठोर मुद्रा नर्म पड़ गई। बोली—मेरा नाम मुन्नी है। हरिद्वार से आई हूँ।

सुखदा चौंक पड़ी। लाला समरकान्त ने यही नाम तो लिया था। पूछा—यहाँ किस अपराध में सजा हुई ?

'अपराध क्या था। सरकार ज़मीन का लगान नहीं कम करती थी। चार आने की छूट हुई। जिन्स का दाम- आधा भी नहीं उतरा। हम किसके घर से लाके देते। इस बात पर हमने फरियाद की। बस सरकार ने सजा देना शुरू कर दिया।'

मुन्नी को सुखदा अदालत में कई बार देख चुकी थी। तब से उसकी सूरत बहुत कुछ बदल गई थी। पूछा—तुम बाबू अमरकान्त को जानती हो ? वह भी तो इसी मुआमले में गिरफ्तार हुए हैं ?

मुन्नी प्रसन्न हो गई—जानती क्यों नहीं, वह तो मेरे ही घर में रहते थे। तुम उन्हें कैसे जानती हो ? वही तो हमारे अगुआ हैं।

सुखदा ने कहा—मैं भी काशी की रहनेवाली हूँ। उसी महल्ले में उनका भी घर है। तुम क्या ब्राह्मणी हो ?

'हूँ तो ठकुरानी, पर अब कुछ नहीं हूँ। जात-पाँत, पूजा-पाठ सबको खो बैठी।'

'अमर बाबू कभी अपने घर की बातचीत नहीं करते थे ?'

'कभी नहीं। न कभी आना न जाना, न चिट्ठी न पत्तर।'

सुखदा ने कनखियों से देखकर कहा—मगर वह तो बड़े रसिक आदमी हैं। हाँ गाँव में किसी पर डोरे नहीं डाले ?

मुन्नी ने जीभ दाँतों तले दबाई—कभी नहीं बहूजी, कभी नहीं। मैंने तो न्हें कभी किसी मेहरिया की ओर ताकते या हँसते नहीं देखा। न-जाने किस ात पर घरवाली से रूठ गये। तुम तो जानती होगी।

सुखदा ने मुसकराते हुए कहा—रूठ क्या गये, स्त्री को छोड़ दिया। छिप-र घर से भाग गये। बेचारी औरत घर में बैठी हुई है। तुमको मालूम न ोगा, उन्होंने ज़रूर कहीं-न-कहीं दिल लगाया होगा।

मुन्नी ने दाहने हाथ को साँप के फन की भाँति हिलाते हुए कहा—ऐसी ात होती, तो गाँव में छिपी न रहती बहूजी। मैं तो रोज ही दो-चार बेर उनके ास जाती थी। कभी सिर ऊपर न उठाते थे। फिर उस दिहात में ऐसी थी ी कौन, जिस पर उनका मन चलता। न कोई पढ़ी-लिखी, न गुन न सहूर।

सुखदा ने फिर नब्ज़ टटोली—मर्द गुन-सहूर, पढ़ना-लिखना नहीं देखते। ह तो रूप-रंग देखते हैं और वह तुम्हें भगवान ने दिया ही है। जवान भी हो।

मुन्नी ने मुँह फेरकर कहा—तुम तो गाली देती हो बहूजी। मेरी ओर भला ह क्या देखते, जो उनके पाँव की जूतियों के बराबर भी नहीं, लेकिन तुम कौन ो बहूजी, तुम यहाँ कैसे आईं ?

'जैसे तुम आईं, वैसे ही मैं भी आई।'

'तो यहाँ भी वही हलचल है ?'

'हाँ, कुछ उसी तरह की है।'

मुन्नी को यह देखकर आश्चर्य हुआ, कि ऐसी विदुषी देवियाँ भी जेल में भेजी गई हैं। भला इन्हें किस बात का दुःख होगा।

उसने डरते-डरते पूछा—तुम्हारे स्वामी भी सजा पा गये होंगे ?

'हाँ, तभी तो मैं आई।'

मुन्नी ने छत की ओर देखकर आशीर्वाद दिया—भगवान तुम्हारा मनोरथ ूरा करें बहूजी। गद्दी-मसनद लगानेवाली रानियाँ जब तपस्या करने लगीं,

तो भगवान वरदान भी जल्दी ही देंगे। कितने दिन की सज़ा हुई है? मुझे तो छः महीने की है।

सुखदा ने अपनी सज़ा की मीयाद बताकर कहा—तुम्हारे ज़िले में बड़ी सख़्तियाँ हो रही होंगी। तुम्हारा क्या विचार है, लोग सख़्ती से दब जायँगे?

मुन्नी ने मानो क्षमा याचना की—मेरे सामने तो लोग यही कहते थे कि चाहे फाँसी पर चढ़ जायँ पर आधे से बेसी लगान न देंगे; लेकिन अपने दिल में सोचो, जब बैल-बधिये छीने जाने लगेंगे, सिपाही घरों में घुसेंगे, मरदों पर डण्डों और गोलियों की मार पड़ेगी, तो आदमी कहाँ तक सहेगा। मुझे पकड़ने के लिए तो पूरी फ़ौज गई थी। पचास आदमियों से कम न होंगे। गोली चलते-चलते बची। हजारों आदमी जमा हो गये। कितना समझाती थी—भाइयो, अपने-अपने घर जाओ, मुझे जाने दो, लेकिन कौन सुनता है। आख़िर जब मैंने क़सम दिलाई तो लोग लौटे, नहीं उसी दिन दस-पाँच की जान जाती। न जाने भगवान कहाँ सोये हैं कि इतना अन्याय देखते हैं और नहीं बोलते। साल में छः महीने एक जून खाकर बेचारे दिन काटते हैं, चीथड़े पहनते हैं; लेकिन सरकार को देखो, तो उन्हीं की गर्दन पर सवार! हाकिमों को तो अपने लिए बँगला चाहिये, मोटर चाहिये, हमानियामत खाने को चाहिये, सैर-तमाशा चाहिये, पर गरीबों का इतना सुख भी नहीं देखा जाता। जिसे देखो ग़रीबों ही का रक्त चूसने को तैयार है। हम जमा करने को नहीं माँगते, न हमें भोग-विलास की इच्छा है; लेकिन पेट को रोटी और तन ढाँकने को कपड़ा तो चाहिये। साल-भर खाने-पहनने को छोड़ दो, गृहस्थी का जो कुछ खरच पड़े वह दे दो। बाक़ी जितना बचे उठा ले जाओ। मुदा गरीबों की कौन सुनता है।

सुखदा ने देखा, इस गँवारिन के हृदय में कितनी सहानुभूति, कितनी दया, कितनी जाग्रति भरी हुई है। अमर के त्याग और सेवा की उसने जिन शब्दों में सराहना की, उसने जैसे सुखदा के अन्तःकरण की सारी मलिनताओं को धोकर निर्मल कर दिया, जैसे उसके मन में प्रकाश आ गया हो, और उसकी सारी शंकाएँ और चिन्ताएँ अन्धकार की भाँति मिट गई हों। अमरकान्त का कल्प-
… उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ—क़ैदियों का जाँघिया और कनटोप

पहने, बड़े-बड़े बाल बढ़ाये, मुख मलिन, क़ैदियों के बीच में चक्की पीसता हुआ। वह भयभीत होकर काँप उठी। उसका हृदय कभी इतना कोमल न था।

मेट्रन ने आकर कहा—अब तो आपको नौकरानी मिल गई। इससे ख़ूब काम लो।

सुखदा धीरे स्वर में बोली—मुझे अब तो नौकरानी की इच्छा नहीं है मेम साहब, मैं यहाँ रहना भी नहीं चाहती। आप मुझे मामूली क़ैदियों में भेज दीजिये।

मेट्रन छोटे क़द की ऐंग्लो-इंडियन महिला थी, चौड़ा मुँह, छोटी-छोटी आँखें, तराशे हुए बाल, घुटनियों के ऊपर तक का स्कर्ट पहने हुए। विस्मय से बोली—यह क्या कहती हो सुखदा देवी? नौकरानी मिल गया और जिस चीज़ का तकलीफ हो हमसे कहो, हम जेलर साहब से कहेगा।

सुखदा ने नम्रता से कहा—आपकी इस कृपा के लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूँ। मैं अब किसी तरह की रिआयत नहीं चाहती। मैं चाहती हूँ, कि मुझे मामूली क़ैदियों की तरह रखा जाय।

'नीच औरतों के साथ रहना पड़ेगा। खाना भी वही मिलेगा।'

'यही तो मैं भी चाहती हूँ।'

'काम भी वही करना पड़ेगा। शायद चक्की में दे दे।'

'कोई हरज नहीं।'

'घर के आदमियों से तीसरे महीने मुलाक़ात हो सकेगी।'

'मालूम है।'

मेट्रन की लाला समरकान्त ने ख़ूब पूजा की थी। इस शिकार के हाथ से निकल जाने का दुःख हो रहा था। कुछ देर तक समझाती रही। जब सुखदा ने अपनी राय न बदली, तो पछताती हुई चली गई।

मुन्नी ने पूछा—मेम साहब क्या कहती थी?

सुखदा ने मुन्नी को स्नेह-भरी आँखों से देखा—अब मैं तुम्हारे ही साथ रहूँगी मुन्नी।

मुन्नी ने छाती पर हाथ रखकर कहा—यह क्या करती हो बहू। वहाँ तुमसे न रहा जायगा।

सुखदा ने प्रसन्न मुख से कहा—जहाँ तुम रह सकती हो, वहाँ मैं भी रह सकती हूँ।

एक घण्टे के बाद जब सुखदा यहाँ से मुन्नी के साथ चली, तो उसका मन आशा और भय से काँप रहा था, जैसे कोई बालक परीक्षा मे सफल होकर अगली कक्षा मे गया हो।



पुलीस ने उस पहाडी इलाक़े का घेरा डाल रखा था। सिपाही और सवार चौबीसो घण्टे घूमते रहते थे। पाँच आदमियो से ज्यादा एक जगह जमा न हो सकते थे। शाम को ८ बजे के बाद कोई घर से निकल न सकता था। पुलीस को इत्तला दिये बग़ैर घर में मेहमान को ठहराने की भी मनाही थी। फौजी क़ानून जारी कर दिया गया था। कितने ही घर जला दिये गये थे और उनके रहनेवाले हबूडो की भाँति वृक्षों के नीचे बाल-बच्चों को लिये पड़े हुए थे। पाठशाला मे भी आग लगा दी गई थी और उसकी आधी-आधी काली दीवारें मानो केश खोले मातम कर रही थीं। स्वामी आत्मानन्द बाँस की छतरी लगाये अब भी वहाँ डटे हुए थे। ज़रा-सा मौका पाते ही इधर-उधर से दस-बीस आदमी आकर जमा हो जाते; पर सवारों को आते देखा और गायब।

सहसा लाला समरकान्त एक गट्ठर पीठ पर लादे मदरसे के सामने आकर खड़े हो गये। स्वामीजी ने दौडकर उनका बिस्तर ले लिया और खाट की फिक्र में दौड़े। गाँव-भर मे बिजली की तरह ख़बर दौड गई—भैया के बाप आये हैं। है तो वृद्ध, मगर अभी टनमन हैं। सेठ-साहूकार-से लगते हैं। एक क्षण में बहुत-से

आदमियों ने आकर घेर लिया। किसी के सिर मे पट्टी बँधी थी, किसी के हाथ में। कई लँगड़ा रहे थे। शाम हो गई थी और आज कोई विशेष खटका न देखकर और सारे इलाक़े में डण्डे के बल से शान्ति स्थापित करके पुलीस विश्राम कर रही थी। बेचारे रात-दिन दौड़ते-दौड़ते अधमरे हो गये थे।

गूदड़ ने लाठी टेकते हुए आकर समरकान्त के चरण छूये और बोले—अमर भैया का समाचार तो आपको मिला होगा। आजकल तो पुलीस का धावा है। हाकिम कहता है—बारह आने लेंगे, हम कहते हैं हमारे पास है ही नहीं, दें कहाँ से। बहुत-से लोग तो गाँव छोड़कर भाग गये। जो हैं, उनकी दशा आप देख ही रहे हैं। मुन्नी बहू को पकड़कर जेहल में डाल दिया। आप ऐसे समय में आये कि आपकी कुछ खातिर भी नहीं कर सकते।

समरकान्त मदरसे के चबूतरे पर बैठ गये और सिर पर हाथ रखकर सोचने लगे—इन ग़रीबों की क्या सहायता करें। क्रोध की एक ज्वाला सी उठकर रोम रोम में व्याप्त हो गई। पूछा—यहाँ कोई अफसर भी तो होगा?

गूदड़ ने कहा—हाँ अपसर तो एक नहीं पचीस हैं जी। सबसे बड़े अपसर तो वही मियाँजी हैं, जो अमर भैया के दोस्त है।

'तुम लोगों ने उस लफंगे से पूछा नहीं—मार-पीट क्यों करते हो, या यह भी क़ानून है?'

गूदड़ ने सलोनी की मड़ैया की ओर देखकर कहा—भैया, कहते तो सब कुछ हैं, जब कोई सुने। सलीम साहब ने खुद अपने हाथों से हंटर मारे। उनकी बेदर्दी देखकर पुलीसवाले भी दाँतों उँगली दबाते थे। सलोनी मेरी भावज लगती है। उसने उनके मुँह पर थूक दिया था। यह उसे न करना चाहिये था। पागलपन था और क्या। मियाँ साहब आग हो गये और बुढ़िया को इतने हंटर जमाये, कि भगवान ही बचावे तो बचे। मुदा वह भी है अपनी धुन की पक्की, हरेक हंटर पर गाली देती थी। जब बेदम होकर गिर पड़ी, तब जाकर उसका मुँह बन्द हुआ। भैया उसे काकी-काकी करते रहते थे। कहीं से आवें, सबसे पहले काकी के पास जाते थे। उठने लायक होती तो जरूर से जरूर आती।

आत्मानन्द ने चिढ़कर कहा—अरे तो अब रहने भी दो, क्या सब आज ही कह डालोगे। पानी मँगवाओ, आप हाथ-मुँह धोवें, ज़रा आराम करने दो, थके-माँदे आ रहे हैं—वह देखो सलोनी को भी ख़बर मिल गई, लाठी टेकती चली आ रही है।

सलोनी ने पास आकर कहा—कहाँ हो देवरजी, सावन में आते तो तुम्हारे साथ झूला झूलती, चले हो कातिक में। जिसका ऐसा सिर्दार और ऐसा बेटा, उसे किसका डर और किसकी चिन्ता। तुम्हें देखकर सारा दुख भूल गया देवरजी!

समरकान्त ने देखा—सलोनी की सारी देह सूज उठी है और साड़ी पर लहू के दाग़ सूखकर कत्थई हो गये हैं। मुँह सूजा हुआ है। इस मुरदे पर इतना क्रोध! उस पर विद्वान् बनता है। उनकी आँखों मे ख़ून उतर आया। हिंसा-भावना मन मे प्रचण्ड हो उठी। निर्बल क्रोध और चाहे कुछ न कर सके, भगवान की ख़बर जरूर लेता है। तुम अन्तर्यामी हो, सर्वशक्तिमान् हो, दीनों के रक्षक हो और तुम्हारी आँखों के सामने यह अन्धेर! इस जगत् का नियन्ता कोई नहीं है। कोई दयामय भगवान सृष्टि का कर्ता होता, तो यह अत्याचार न होता। अच्छे सर्वशक्तिमान् हो! क्यों नरपिशाचों के हृदय में नहीं पैठ जाते, या वहाँ तुम्हारी पहुँच नहीं है? कहते हैं, यह सब भगवान् की लीला है। अच्छी लीला है! अगर तुम्हे भी ऐसी ही लीला में आनन्द मिलता है, तो तुम पशुओं से भी गये-बीते हो; अगर तुम्हें इस व्यापार की ख़बर नहीं है, तो फिर सर्वव्यापी क्यों कहलाते हो।

समरकान्त धार्मिक प्रवृत्ति के आदमी थे। धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। भगवद्गीता का नित्य पाठ किया करते थे; पर इस समय वह सारा धर्म-ज्ञान उन्हें पाखण्ड-सा प्रतीत हुआ।

वह उसी तरह उठ खड़े हुए और पूछा—सलीम तो सदर में होगा?

आत्मानन्द ने कहा—आजकल तो यहीं पड़ाव है। डाकबँगले में ठहरे हुए हैं।

'मैं ज़रा उनसे मिलूँगा।'

'अभी वह क्रोध में हैं, आप मिलकर क्या कीजियेगा। आपको भी अप-शब्द कह बैठेंगे।'

'यही देखने तो जाता हूँ, कि मनुष्य की पशुता किस सीमा तक जा सकती है।'

'तो चलिये, मैं भी आपके साथ चलता हूँ।'

गूदड बोल उठे—नहीं-नहीं, तुम न जइयो स्वामीजी। भैया, यह हैं तो संन्यासी और दया के अवतार, मुदा क्रोध में भी दुर्वासा मुनी से कम नहीं हैं। जब हाकिम साहब सलोनी को मार रहे थे, तब चार आदमी इन्हें पकड़े हुए थे, नहीं तो उस बखत मियाँ का खून चूस लेते, चाहे पीछे से फाँसी हो जाती। गाँव भर की मरहम-पट्टी इन्हीं के सुपुर्द है।

सलोनी ने समरकान्त का हाथ पकडकर कहा—मैं चलूँगी तुम्हारे साथ देवरजी। उसे दिखा दूँगी, कि बुढिया तेरी छाती पर मूँग दलने को बैठी हुई है! तू मारनहार है, तो कोई तुझसे बडा राखनहार भी है। जब तक उसका हुक्म न होगा, तू क्या मार सकेगा!

भगवान् में उसकी यह अपार निष्ठा देखकर सकरकान्त की आँखें सजल हो गईं। सोचा—मुझसे तो ये मूर्ख ही अच्छे, जो इतनी पीड़ा और दुःख सहकर भी तुम्हारा ही नाम रटते हैं। बोले—नहीं भाभी, मुझे अकेले जाने दो। मैं अभी उनसे दो-दो बातें करके लौटा आता हूँ।

सलोनी लाठी सँभाल रही थी, कि समरकान्त चल पड़े। तेजा और दुर्जन आगे-आगे डाकबँगले का रास्ता दिखाते हुए चले।

तेजा ने पूछा—दादा, जब अमर भैया छोटे-से थे, तो बडे शैतान थे न!

समरकान्त ने इस प्रश्न का आशय न समझकर कहा—नहीं तो, वह तो लड़कपन ही से बडा सुशील था।

दुर्जन ताली बजाकर बोला—अब कहो तेजू हारे कि नहीं! दादा, हमारा-इनका यह झगडा है, कि यह कहते हैं, जो लडके बचपन में बडे शैतान होते है, वही बड़े होकर सुसील हो जाते हैं; और मैं कहता हूँ, जो लडकपन मे सुसील होते हैं, वही बड़े होकर भी सुसील रहते हैं। जो बात आदमी मे है ही नहीं, वह बीच में कहाँ से आ जायगी।

तेजा ने शंका की—लडके में तो अकल भी नहीं होती, जवान होने पर कहाँ से आ जाती है। अँखवे तो खाली दो दल होते हैं. फिर उनमें डाल-पात

कहाँ से आ जाते हैं। यह कोई बात नहीं। मैं ऐसे कितने ही नामी आदमियो के उदाहरन दे सकता हूँ, जो बचपन मे बड़े पाजी थे; पर आगे चलकर महात्मा हो गये।

समरकान्त को बालकों के इस तर्क में बड़ा आनन्द आया। मध्यस्थ बनकर दोनो ओर कुछ सहारा देते जाते थे। रास्ते में एक जगह कीचड भरा हुआ था। समरकान्त के जूते कीचड में फँसकर पाँव से निकल गये। इस पर बड़ी हँसी हुई।

सामने से पाँच सवार आते दिखाई दिये। तेजा ने एक पत्थर उठाकर एक सवार पर निशाना मारा। उसकी पगडी ज़मीन पर गिर पड़ी। वह तो घोडे से उतरकर पगडी उठाने लगा, बाकी चारों घोड़े दौडाते हुए समरकान्त के पास आ पहुँचे।

तेजा दौड़कर एक पेड पर चढ़ गया। दो सवार उसके पीछे दौड़े और नीचे से गालियाँ देने लगे। बाकी तीन सवारों ने समरकान्त को घेर लिया और एक ने हंटर निकालकर ऊपर उठाया ही था, कि यकायक चौंक पडा और बोला—अरे! आप हैं सेठजी! आप यहाँ कहाँ?

सेठजी ने सलीम को पहचानकर कहा—हाँ-हाँ चला दो हंटर, रुक क्यों गये। अपनी कारगुजारी दिखाने का ऐसा मौका फिर कहाँ मिलेगा। हाकिम होकर अगर गरीबों पर हंटर न चलाया, तो हाकिमी किस काम की।

सलीम लज्जित हो गया—आप इन लौंडों की शरारत देख रहे हैं, फिर भी मुझी को क़सूरवार ठहराते हैं। उसने ऐसा पत्थर मारा कि इन दारोग़ाजी की पगड़ी गिर गई। ख़ैरियत हुई कि आँख में न लगा।

समरकान्त आवेश मे औचित्य को भूलकर बोले—ठीक तो है, जब उस लौंडे ने पत्थर चलाया, जो अभी नादान है, तो फिर हमारे हाकिम साहब जो विद्या के सागर हैं, क्या हंटर भी न चलावे। कह दो दोनो सवार पेड पर चढ जायँ, लौंडे को ढकेल दें, नीचे गिर पड़े। मर जायगा; तो क्या हुआ, हाकिम से बेअदबी करने की सज़ा तो पा जायगा।

सलीम ने सफाई दी—आप तो अभी आये हैं, आपको क्या ख़बर यहाँ के

लोग कितने मुफसिद हैं। एक बुढ़िया ने मेरे मुँह पर थूक दिया, मैंने ज़ब्त किया, वरना सारा गाँव जेल में होता।

समरकान्त यह बमगोला खाकर भी परास्त न हुए—तुम्हारे ज़ब्त की बानगी देखे आ रहा हूँ बेटा, अब मुँह न खुलवाओ। वह अगर जाहिल बेसमझ औरत थी, तो तुम्हीं ने आलिम-फाजिल होकर कौन-सी शराफ़त की? उसकी सारी देह लहूलुहान हो रही है। शायद बचेगी भी नहीं। कुछ याद है कितने आदमियों के अंग-भंग हुए? सब तुम्हारे नाम को दुआयें दे रहे हैं। अगर उनसे रुपए न वसूल होते थे, तो बेदख़ल कर सकते थे, उनकी फ़सल कुर्क कर सकते थे। मार-पीट का क़ानून कहाँ से निकाला।

'बेदख़ली से क्या नतीजा, जमीन का यहाँ कौन ख़रीदार है? आख़िर सरकारी रक़म कैसे वसूल की जाय।'

'तो मार डालो सारे गाँव को, देखो कितने रुपए वसूल होते हैं। तुमसे मुझे ऐसी आशा न थी, मगर शायद हुकूमत में कुछ नशा होता है।

'आपने अभी इन लोगों की बदमाशी नहीं देखी। मेरे साथ आइए, तो मैं सारी दास्तान सुनाऊँ। आप इस वक्त आ कहाँ से रहे हैं?'

समरकान्त ने अपने लखनऊ आने और सुखदा से मिलने का हाल कहा। फिर मतलब की बात छेड़ी—अमर तो यहीं होगा? सुना तीसरे दरजे में रखा गया है।

अँधेरा ज़्यादा हो गया था। कुछ ठण्ढ भी पड़ने लगी थी। चार सवार तो गाँव की तरफ चले गये, सलीम घोड़े की रास थामे हुए पाँव-पाँव समरकान्त के साथ डाकबँगले चला।

कुछ दूर चलने के बाद समरकान्त बोले—तुमने दोस्त के साथ ख़ूब दोस्ती निभाई। जेल भेज दिया, अच्छा किया, मगर कम से कम उसे कोई अच्छा दरजा तो दिला देते। मगर हाकिम ठहरे, अपने दोस्त की सिफारिश कैसे करते।

सलीम ने व्यथित कण्ठ से कहा—आप तो लालाजी मुझी पर सारा गुस्सा उतार रहे हैं। मैंने तो दूसरा दरजा दिला दिया था, मगर अमर ख़ुद मामूली क़ैदियों के साथ रहने पर ज़िद करने लगे, तो मैं क्या करता। मेरी बदनसीबी है कि यहाँ आते ही मुझे वह सब कुछ करना पड़ा, जिससे मुझे नफरत थी।

डाकबँगले में पहुँचकर सेठजी एक आराम कुरसी पर लेट गये और बोले—तो मेरा यहाँ आना व्यर्थ हुआ। जब वह अपनी ख़ुशी से तीसरे दरजे में है तो लाचारी है। मुलाक़ात तो हो जायगी?

सलीम ने उत्तर दिया—मैं आपके साथ चलूँगा। मुलाक़ात की तारीख़ तो अभी नहीं आई है, मगर जेलवाले शायद मान जायँ। हाँ, अँदेशा अमरकान्त की तरफ से है। वह किसी क़िस्म की रिआयत नहीं चाहते।

उसने ज़रा मुसकराकर कहा—अब तो आप भी इन कामों में शरीक होने लगे?

सेठजी ने नम्रता से कहा—अब मैं इस उम्र में क्या काम करूँगा। बूढ़े दिल में जवानी का जोश कहाँ से आये। बहू जेल में है, लड़का जेल में है, शायद लड़की भी जेल की तैयारी कर रही है। और मैं चैन से खाता-पीता हूँ, आराम से सोता हूँ। मेरी औलाद मेरे पापों का प्रायश्चित्त कर रही है, मैंने ग़रीबों का कितना ख़ून चूसा है, कितने घर तबाह किये हैं, उसकी याद करके ख़ुद शर्मिन्दा हो जाता हूँ। अगर जवानी में समझ आ गई होती तो कुछ अपना सुधार करता। अब क्या करूँगा। बाप सन्तान का गुरु होता है, उसी के पीछे लड़के चलते हैं। मुझे अपने लड़कों के पीछे चलना पड़ा। मैं धर्म की असलियत को न समझ कर धर्म के स्वाँग को धर्म समझे हुए था, यही मेरी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी भूल थी। मुझे तो ऐसा मालूम होता है, कि दुनिया का कैंडा ही बिगड़ा हुआ है। जब तक हमें जायदाद पैदा करने की धुन रहेगी, हम धर्म से कोसों दूर रहेंगे। ईश्वर ने संसार को क्यों इस ढंग पर लगाया, यह मेरी समझ में नहीं आता। दुनिया को जायदाद के मोह-बन्धन से छुड़ाना पड़ेगा, तभी आदमी आदमी होगा; तभी दुनिया से पाप का नाश होगा।

सलीम ऐसी ऊँची बातों में न पड़ना चाहता था। उसने सोचा—जब मैं भी इनकी तरह ज़िन्दगी के सुख भोग लूँगा, तो मरते समय फिलासफर बन जाऊँगा। दोनो कई मिनट तक चुपचाप बैठे रहे। फिर लालाजी स्नेह से भरे स्वर में बोले—नौकर हो जाने पर आदमी को मालिक का हुक्म मानना ही पड़ता है। इसकी मैं बुराई नहीं करता। हाँ, एक बात कहूँगा। जिन पर ज़ुल्म किया है, चल कर उनके आँसू पोंछ दो। यह ग़रीब आदमी

थोड़ी-सी भलमनसी से क़ाबू मे आ जाते हैं। सरकार की नीति तो तुम नहीं बदल सकते; लेकिन इतना तो कर सकते हो कि किसी पर बेजा सख्ती न करो।

सलीम ने शर्माते हुए कहा—लोगों की गुस्ताख़ी पर ग़ुस्सा आ जाता है, वरना मैं तो ख़ुद नहीं चाहता, कि किसी पर सख्ती करूँ। फिर सिर पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है। लगान न वसूल हुआ, तो मै कितना नालायक़ समझा जाऊँगा।

समरकान्त ने तेज़ होकर कहा—तो बेटा, लगान तो वसूल न होगा, हाँ, आदमियों के खून से हाथ रँग सकते हो।

'यही तो देखना है।'

'देख लेना। मैंने भी इसी दुनिया मे बाल सफ़ेद किये हैं। हमारे किसान अफ़सरों की सूरत से काँपते थे; लेकिन ज़माना बदल रहा है। अब उन्हे भी मान-अपमान का ख़याल होता है। तुम मुफ्त में बदनामी उठा रहे हो।'

'अपना फ़र्ज़ अदा करना बदनामी है, तो मुझे उसकी परवा नहीं।'

समरकान्त ने अफ़सरी के इस अभिमान पर मन में हँसकर कहा—फर्ज मे थोड़ी-सी मिठास मिला देने से किसी का कुछ नही बिगड़ता, हाँ, बन बहुत कुछ जाता है, यह बेचारे किसान ऐसे ग़रीब हैं, कि थोड़ी-सी हमदर्दी करके उन्हे अपना ग़ुलाम बना सकते हो। हुकूमत वह बहुत झेल चुके। अब भलमनसी का बरताव चाहते हैं। जिस समय औरत को तुमने हंटरों से मारा, उसे एक बार माता कहकर उसकी गरदन काट सकते थे। यह मत समझो कि तुम उन पर हुकूमत करने आये हो। यह समझो कि उनकी सेवा करने आये हो। माने लिया, तुम्हे तलब सरकार से मिलती है, लेकिन आती तो है इन्हीं की गाँठ से। कोई मूर्ख हो, तो उसे समझाऊँ। तुम भगवान की कृपा से आप ही विद्वान हो। तुम्हे क्या समझाऊँ। तुम पुलीसवालों की बातो मे आ गये। यही बात है न!

सलीम भला यह कैसे स्वीकार करता।

लेकिन समरकान्त अड़े रहे—मै इसे नहीं मान सकता। तुम तो किसी से नज़र नहीं लेना चाहते; लेकिन जिन लोगो की रोटियाँ नोच-खसोट पर चलती

, उन्होंने जरूर तुम्हें भरा होगा। तुम्हारा चेहरा कहे देता है कि तुम्हें गरीबों र ज़ुल्म करने का अफ़सोस है। मैं यह तो नहीं चाहता कि आठ आने से एक ाई भी ज्यादा वसूल करो, लेकिन दिलजोई के साथ तुम बेशी भी वसूल कर कते हो। जो भूखों मरते हैं, चीथड़े पहनकर और पुआल में सोकर दिन ाटते हैं, उनसे एक पैसा भी दबाकर लेना अन्याय है। जब हम और तुम ो-चार घण्टे आराम से काम करके आराम से रहना चाहते हैं, जायदादें बनाना ाहते हैं, शौक़ की चीज़ें जमा करते हैं, तो क्या यह अन्याय नहीं है, कि जो ोग स्त्री-बच्चों समेत अठारह घण्टे रोज काम करें, वह रोटी कपड़े को तरसें! चारे गरीब हैं, बेज़बान हैं, अपने को सगठित नहीं कर सकते, इसलिए सभी ोटे बड़े उन पर रोब जमाते हैं। मगर तुम जैसे सहृदय और विद्वान लोग ी वही करने लगें, जो मामूली अमले करते हैं, तो अफसोस होता है। अपने ाथ किसी को मत लो, मेरे साथ चलो। मैं ज़िम्मा लेता हूँ कि कोई तुमसे स्ताख़ी न करेगा। उनके ज़ख्म पर मरहम रख दो, मैं इतना ही चाहता । जब तक जियेंगे बेचारे तुम्हें याद करेंगे। सद्भाव में सम्मोहन का-सा ासर होता है।

सलीम का हृदय अभी इतना काला न हुआ था कि उस पर कोई रङ्ग ही चढता। सकुचाता हुआ बोला—लेकिन मेरी तरफ़ से आपही को हना पड़ेगा।

'हाँ-हाँ, यह सब मैं कर दूँगा, लेकिन ऐसा न हो, मैं उधर चलूँ, इधर म हंटरबाजी शुरू करो।'

'अब ज्यादा शर्मिन्दा न कीजिये।'

'तुम यह तजवीज़ क्यों नहीं करते कि असामियों की हालत की जाँच की ाय? आँखें बन्द करके हुक्म मानना तुम्हारा काम नहीं। पहले अपना तमीनान तो कर लो कि तुम बेइंसाफ़ी तो नहीं कर रहे हो। तुम ख़ुद ऐसी ोपोर्ट क्यों नहीं लिखते। मुमकिन है हुक्काम इसे पसन्द न करें; लेकिन इस लिए कुछ नुक़सान उठाना पड़े, तो क्या चिन्ता।'

सलीम को यह बातें न्याय संगत जान पड़ीं। खूँटे की पतली नोक ज़मीन

अन्दर पहुँच चुकी थी। बोला—इस बुजुर्गाना सलाह के लिए मैं आपका एहसानमन्द हूँ और उस पर अमल करने की कोशिश करूँगा।

भोजन का समय आ गया था। सलीम ने पूछा—आपके लिए क्या खाना बनवाऊँ?

'जो चाहे बनवाओ; पर इतना याद रखो कि मैं हिन्दू हूँ और पुराने ज़माने का आदमी हूँ। अभी तक छूत-छात को मानता हूँ।'

'आप छूत छात को अच्छा समझते हैं?'

'अच्छा तो नहीं समझता; पर मानता हूँ।'

'तब मानते ही क्यों हैं?'

'इसलिए कि संस्कारों को मिटाना मुश्किल है। अगर ज़रूरत पड़े, तो मैं तुम्हारा मल उठाकर फेंक दूँगा, लेकिन तुम्हारी थाली में मुझसे न खाया जायगा।'

'मैं तो आज आपको अपने साथ बैठाकर खिलाऊँगा।'

'तुम प्याज़, मांस, अण्डे खाते हो। मुझसे उन बरतनों में खाया ही न जायगा।'

'आप यह सब कुछ न खाइयेगा; मगर मेरे साथ बैठना पडेगा। मैं रोज़ साबुन लगाकर नहाता हूँ।'

'बरतनों को ख़ूब साफ़ करा लेना।'

'आपका खाना हिन्दू बनायेगा साहब। बस एक मेज़ पर बैठकर खा लेना।'

'अच्छा खा लूँगा भाई। मैं दूध और घी ख़ूब खाता हूँ।'

सेठजी तो सन्ध्योपासना करने बैठे, फिर पाठ करने लगे। इधर सलीम के साथ के एक हिन्दू कांसटेबल ने पूरी, कचौरी, हलवा, खीर पकाई। दही पहले ही से रखा हुआ था। सलीम ख़ुद आज यही भोजन करेगा। सेठजी सन्ध्या करके लौटे, तो देखा दो कम्बल बिछे हुए हैं और दो थालियाँ रखी हुई हैं।

सेठ ने ख़ुश होकर कहा—यह तुमने बहुत अच्छा इन्तजाम किया।

सलीम ने हँसकर कहा—मैंने सोचा आपका धर्म क्यों लूँ, नहीं एक ही कम्बल रखता।

'अगर यह ख़याल है, तो तुम मेरे कम्बल पर आ जाओ। नहीं मैं ही आता हूँ।'

वह थाली उठाकर सलीम के कम्बल पर आ बैठे। अपने विचार में आज उन्होंने अपने जीवन का सबसे महान त्याग किया। सारी सम्पत्ति दान देकर भी उनका हृदय इतना गौरवान्वित न होता।

सलीम ने चुटकी ली—अब तो आप मुसलमान हो गये।

सेठ जी बोले—मैं मुसलमान नहीं हुआ। तुम हिन्दू हो गये।





त:काल समरकान्त और सलीम डाकबँगले से गाँव की ओर चले। पहाड़ियों से नीली भाप उठ रही थी, और आकाश का हृदय जैसे किसी अव्यक्त वेदना से भारी हो रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। पृथ्वी किसी रोगी की भाँति कुहरे के नीचे पड़ी सिहर रही थी। कुछ लोग बन्दरों की भाँति छप्परों पर बैठे उसकी मरम्मत कर रहे थे और कहीं-कहीं स्त्रियाँ गोबर पाथ रही थीं। दोनों आदमी पहले सलोनी के घर गये।

सलोनी को ज्वर चढ़ा हुआ था और सारी देह फोड़े की भाँति दुख रही थी, मगर उसे गाने की धुन सवार थी—

> सन्तो देखत जग बौराना।
> साँच कहो तो मारन धावे, झूठ जगत पतियाना, सन्तो देखत

मनोव्यथा जब असह्य और अपार हो जाती है, जब उसे कहीं त्राण नहीं मिलता; जब वह रुदन और क्रन्दन की गोद में भी आश्रय नहीं पाती, तो वह संगीत के चरणों पर जा गिरती है।

समरकान्त ने पुकारा—भाभी, ज़रा बाहर तो आओ।

सलोनी चट-पट उठकर पके बालों को घूँघट से छिपाती, नवयौवना की भाँति लजाती आकर खड़ी हो गई और पूछा—तुम कहाँ चले गये थे, देवरजी!

सहसा सलीम को देखकर वह एक पग पीछे हट गई और जैसे गाली दी—तो हाकम है !

फिर सिंहनी की भाँति झपटकर उसने सलीम को ऐसा धक्का दिया कि वह रते-गिरते बचा, और जब तक समरकान्त उसे हटावें-हटावें, सलीम की गरदन कड़कर इस तरह दबाई, मानो घोट देगी।

सेठजी ने उसे बल-पूर्वक हटाकर कहा—पगला गई है क्या भाभी, अलग : जा, सुनती नहीं !

सलोनी ने फटी-फटी, प्रज्वलित आँखों से सलीम को घूरते हुए कहा—मार दिखा दूँ, आज मेरा सिरदार आ गया है ! सिर कुचलकर रख देगा।

समरकान्त ने तिरस्कार-भरे स्वर में कहा—सिरदार के मुँह में कालिख लगा ी हो और क्या। बूढ़ी हो गई, मरने के दिन आ गये और अभी लड़कपन हीं गया। यही तुम्हारा धर्म है कि कोई हाकिम द्वार पर आये, तो उसका पमान करो।

सलोनी ने मन में कहा—यह लाला भी ठकुरसुहाती करते हैं। लड़का बड़ गया है न, इसी से। फिर दुराग्रह से बोली—पूछो इनने सबको पीटा, हीं था ! सेठजी बिगड़कर बोले—तुम हाकिम होतीं और गाँववाले तुम्हें खते ही लाठियाँ ले-लेकर निकल आते, तो तुम क्या करतीं ? जब प्रजा लड़ने र तैयार हो जाय, तो हाकिम क्या उसकी पूजा करे। अमर होता, तो वह ाठी लेकर न दौड़ता। गाँववालों को लाज़िम था कि हाकिम के पास आकर अपना-अपना हाल कहते, अरज-विन्ती करते, अदब से, नम्रता से। यह नहीं कि ाकिम को देखा और मारने दौड़े, मानो वह तुम्हारा दुश्मन है। मैं इन्हें समझा-बुझाकर लाया था कि मेल करा दूँ, दिलों की सफ़ाई हो जाय, और तुम नसे लड़ने पर तैयार हो गईं !

यहाँ की हलचल सुनकर गाँव के और कई आदमी जमा हो गये; पर किसी े सलीम को सलाम नहीं किया। सबकी त्योरियाँ चढ़ी हुई थीं।

समरकान्त ने उन्हें सम्बोधित किया—तुम्हीं लोग सोचो। यह साहब तुम्हारे हाकिम हैं। जब रिआया हाकिम के साथ गुस्ताख़ी करती है, तो हाकिम ो भी क्रोध आ जाय तो कोई ताज्जब नहीं। यह बिचारे तो अपने को हाकिम

समझते ही नहीं। लेकिन इज्जत तो सभी रखते हैं, हाकिम हों या न हों। कोई आदमी अपनी बेइज्जती नहीं देख सकता। बोलो गूदड़, कुछ गलत कहता हूँ।

गूदड़ ने सिर झुकाकर कहा—नहीं मालिक, सच ही कहते हो। मुदा वह तो बावली है। उसकी किसी बात का बुरा न मानो। सबके मुँह में कालिख लगा रही है और क्या।

'यह हमारे लड़के के बराबर हैं। अमर के साथ पढ़े, उन्हीं के साथ खेले। तुमने अपनी आँखों देखा कि अमर को गिरफ्तार करने यह अकेले आये थे। क्या समझकर? क्या पुलीस को भेजकर न पकड़वा सकते थे? सिपाही हुक्म पाते ही आते और धक्के देकर बाँध ले जाते। इनकी शराफ़त थी कि ख़ुद आये और किसी पुलीस को साथ न लाये। अमर ने भी वही किया, जो उसका धर्म था। अकेले आदमी को बेइज्ज़त करना चाहते, तो क्या मुश्किल था। अब तक जो कुछ हुआ, उसका इन्हे रंज है, हालाँकि क़सूर तुम लोगों का भी था। अब तुम भी पिछली बातों को भूल जाओ। इनकी तरफ़ से अब किसी तरह की सख़्ती न होगी। इन्हे अगर तुम्हारी जायदाद नीलाम करने का हुक्म मिलेगा, नीलाम करेंगे, गिरफ़्तार करने का हुक्म मिलेगा, गिरफ़्तार करेंगे, तुम्हें बुरा न लगना चाहिये। तुम धर्म की लड़ाई लड़ रहे हो। लड़ाई नहीं यह तपस्या है। तपस्या में क्रोध और द्वेष आ जाता है, तो तपस्या भंग हो जाती है।'

स्वामीजी बोले—धर्म की रक्षा एक ओर से नहीं होती। सरकार नीति बनाती है। उसे नीति की रक्षा करनी चाहिये। जब उसके कर्मचारी नीति को पैरों से कुचलते हैं, तो फिर जनता कैसे नीति की रक्षा कर सकती है।

समरकान्त ने फटकार बताई—आप संन्यासी होकर ऐसा कहते हैं स्वामीजी! आपको अपनी नीतिपरता से अपने शासकों को नीति पर लाना है। यदि वह नीति पर ही होते, तो आपको यह तपस्या क्यों करनी पड़ती? आप अनीति पर अनीति से नहीं, नीति से विजय पा सकते हैं।

स्वामीजी का मुँह ज़रा सा निकल आया। ज़बान बन्द हो गई।

सलोनी का पीडित हृदय पक्षी के समान पिंजरे से निकलकर भी कोई

आश्रय खोज रहा था। सज्जनता और सद्प्रेरणा से भरा हुआ यह तिरस्कार उसके सामने जैसे दाने बिखेरने लगा। पक्षी ने दो-चार बार गरदन झुकाकर दानों को सतर्क नेत्रों से देखा, फिर अपने रक्षक को 'आ, आ' कहते सुना और पर फैलाकर दानों पर उतर आया।

सलोनी आँखों में आँसू भरे, दोनो हाथ जोड़े, सलीम के सामने आकर बोली—सरकार, मुझसे बड़ी खता हो गई। माफी दीजिये। मुझे जूतों से पीटिये...

सेठजी ने कहा—सरकार नहीं, बेटा कहो।

'बेटा, मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मूरख हूँ, बावली हूँ। जो सज़ा चाहे दो।'

सलीम के युवा नेत्र भी सजल हो गये। हुकूमत का रोब और अधिकार का गर्व भूल गया। बोला—माताजी, मुझे शर्मिन्दा न करो। यहाँ जितने लोग खड़े हैं, मैं उन सबसे और जो यहाँ नहीं हैं, उनसे भी अपनी ख़ताओं की मुआफ़ी चाहता हूँ।

गूदड़ ने कहा—हम तुम्हारे गुलाम हैं भैया, लेकिन मूरख जो ठहरे। आदमी पहचानते, तो क्यों इतनी बातें होतीं।

स्वामी ने समरकान्त के कान में कहा—मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, कि दग़ा करेगा।

सेठजी ने आश्वासन दिया—कभी नहीं। नौकरी चाहे चली जाय; पर तुम्हें सतायेगा नहीं। शरीफ आदमी है।

'तो क्या हमें पूरा लगान देना पड़ेगा?'

'जब कुछ है ही नहीं, तो दोगे कहाँ से?'

स्वामी हटे तो सलीम ने आकर सेठजी के कान में कुछ कहा।

सेठजी मुसकराकर बोले—जंट साहब तुम लोगों को दवा-दारू के लिये १००) भेंट कर रहे हैं। मैं अपनी ओर से उसमें ९००) मिलाये देता हूँ। स्वामीजी, डाकबँगले पर चलकर मुझसे रुपये ले लो।

गूदड़ ने कृतज्ञता को दबाते हुए कहा—भैया,...पर मुख से एक शब्द भी न निकला।

समरकान्त बोले—यह मत समझो, कि यह मेरे रुपए हैं। मैं अपने बाप के घर से नहीं लाया। तुम्हीं से, तुम्हारा ही गला दबाकर लिये थे। वह तुम्हें लौटा रहा हूँ।

गाँव में जहाँ सियापा-सा छाया हुआ था, वहाँ रौनक़ नज़र आने लगी। जैसे कोई संगीत वायु में घुल गया हो।





अमरकान्त को जेल में रोज-रोज़ का समाचार किसी-न-किसी तरह मिल जाता था। जिस दिन मार-पीट और अग्निकांड की ख़बर मिली, उसके क्रोध का वारापार न रहा और जैसे आग बुझकर राख हो जाती है, थोड़ी ही देर के बाद क्रोध की जगह केवल नैराश्य रह गया। लोगों के रोने-पीटने की दर्द-भरी हाय-हाय जैसे मूर्तिमान होकर उसके सामने सिर पीट रही थी। जलते हुए घरों की लपटें जैसे उसे झुलसे डालती थीं। वह सारा भीषण दृश्य कल्पनातीत होकर सर्वनाश के समीप जा पहुँचा था और इसकी ज़िम्मेदारी किस पर थी? रुपए तो यों भी वसूल किये जाते; पर इतना अत्याचार तो न होता, कुछ रिआयत तो की जाती। सरकार इस विद्रोह के बाद किसी तरह भी नर्मी का बर्ताव न कर सकती थी; लेकिन रुपए न दे सकना तो किसी मनुष्य का दोष नहीं। यह मन्दी की बला कहाँ से आई कौन जाने! यह तो ऐसा ही है, कि आँधी में किसी का छप्पर उड़ जाय और सरकार उसे दण्ड दे। यह शासन किसके हित के लिए है? इसका उद्देश्य क्या है?

इन विचारों से तंग आकर उसने नैराश्य में मुँह छिपाया। अत्याचार हो रहा है। होने दो। मैं क्या करूँ? कर ही क्या सकता हूँ! मैं कौन हूँ? मुझसे मतलब। कमज़ोरों के भाग्य में जब तक मार खाना लिखा है, मार खायँगे। मैं ही यहाँ क्या फूलों की सेज पर सोया हुआ हूँ। अगर संसार के प्राणी पशु हो जायँ, तो मैं क्या करूँ। जो कुछ होगा, होगा। यह भी

ईश्वर की लीला है ! वाह रे तेरी लीला ! अगर ऐसी ही लीलाओं में तुम्हे आनन्द आता है, तो तुम दयामय क्यों बनते हो ? जबरदस्त का ठेंगा सिर पर, क्या यह भी ईश्वरीय नियम है ?

जब सामने कोई विकट समस्या आ जाती थी, तो उसका मन नास्तिकता की ओर झुक जाता था। सारा विश्व शृङ्खला-हीन, अव्यवस्थित, रहस्यमय जान पड़ता था।

उसने बान बटना शुरू किया; लेकिन आँखों के सामने एक दूसरा ही अभिनय हो रहा था—वही सलोनी है, सिर के बाल खुले हुए, अर्धनग्न। मार पड़ रही है। उसके बदन की करुणाजनक ध्वनि कानों में आने लगी। फिर मुन्नी की मूर्ति सामने आ खड़ी हुई। उसे सिपाहियों ने गिरफ़्तार कर लिया है और खींचे लिये जा रहे हैं। उसके मुँह से अनायास ही निकल गया—हाँय, हाँय, यह क्या करते हो ! फिर वह सचेत हो गया और बान बटने लगा।

रात को भी वही दृश्य आँखों में फिरा करते, वही क्रन्दन कानों में गूँजा करता। इस सारी विपत्ति का भार अपने सिर पर लेकर वह दबा जा रहा था। इस भार को हलका करने के लिए उसके पास कोई साधना न थी। ईश्वर का बहिष्कार करके उसने मानो नौका का परित्याग कर दिया था और अथाह जल में डूबा जा रहा था। कर्म-जिज्ञासा उसे किसी तिनके का सहारा न लेने देती थी। वह किधर जा रहा है और अपने साथ लाखों निस्सहाय प्राणियों को किधर लिये जा रहा है। इसका क्या अन्त होगा ? इस काली घटा में कहीं चाँदी की झालर है। वह चाहता था कहीं से आवाज आये बढ़े आओ ! बढ़े आओ ! यही सीधा रास्ता है, पर चारों तरफ़ निविड, सघन अन्धकार था। कहीं से कोई आवाज़ नहीं आती, कहीं प्रकाश नहीं मिलता। जब वह स्वयं अन्धकार में पड़ा हुआ है, स्वयं नहीं जानता आगे स्वर्ग की शीतल छाया है, या विध्वंस की भीषण ज्वाला, तो उसे क्या अधिकार है, कि इतने प्राणियों की जान आफ़त में डाले। इसी मानसिक पराभव की दशा में उसके अन्तःकरण से निकला—ईश्वर मुझे प्रकाश दो, मुझे उबारो। और वह रोने लगा।

सुबह का वक्त था। क़ैदियों की हाज़िरी हो गई थी। अमर का मन कुछ शान्त था। वह प्रचण्ड आवेग शान्त हो गया था और आकाश में छाई

हुई गर्द बैठ गई थी। चीजें साफ़-साफ दिखाई देने लगी थीं। अमर मन पिछली घटनाओं की आलोचना कर रहा था। कारण और कार्य के सूत्रों कं मिलाने की चेष्टा करते हुए सहसा उसे एक ठोकर-सी लगी—नैना का वह पः और सुखदा की गिरफ्तारी। इसी से तो वह आवेश में आ गया था। और सम झौते का सुसाध्य मार्ग छोड़कर उस दुर्गम पथ की ओर झुक पड़ा था। इः ठोकर ने जैसे उसकी आँखें खोल दीं। मालूम हुआ यह यश-लालसा का व्यक्तिगत स्पर्द्धा का, सेवा के आवरण में छिपे हुए अहंकार का खेल था। इः अविचार और आवेश का परिणाम इसके सिवा और क्या होता।

अमर के समीप एक कैदी बैठा बान बट रहा था। अमर ने पूछा—तुम कैसे आये भाई?

उसने कुतूहल से देखकर कहा—पहले तुम बताओ।

'मुझे तो नाम की धुन थी।'

'मुझे धन की धुन थी।'

उसी वक्त जेलर ने आकर अमर से कहा—तुम्हारा तबादला लखनऊ हं गया है। तुम्हारे बाप आये थे। तुमसे मिलना चाहते थे। तुम्हारं मुलाक़ात की तारीख़ न थी। साहब ने इंकार कर दिया।

अमर ने आश्चर्य से पूछा—मेरे पिताजी यहाँ आये थे?

'हाँ-हाँ, इसमें ताज्जुब की क्या बात है। मि० सलीम भी उनके साथ थे।'

'इलाक़े की कुछ नई?'

'तुम्हारे बाप ने शायद सलीम साहब को समझा कर गाँववालों से मेल करा दिया है। शरीफ़ आदमी हैं। गाँववालों के इलाज-मालजे के लिए एक हज़ार रुपए दे दिये।'

अमर मुसकराया।

'उन्हीं की कोशिश से तुम्हारा तबादला हो रहा है। लखनऊ में तुम्हारी बीबी भी आ गई हैं। शायद उन्हें छ महीने की सज़ा हुई है।'

अमर खड़ा हो गया—सुखदा भी लखनऊ में है?

तुम्हारा तबादला क्यों हो रहा है।'

अमर को अपने मन में विलक्षण शान्ति का अनुभव हुआ। वह निराशा कहाँ गई? वह दुर्बलता कहाँ गई?

वह फिर बैठकर बान बटने लगा। उसके हाथों मे आज ग़ज़ब की फ़ुरती है। ऐसी कायापलट! ऐसा मंगलमय परिवर्तन! क्या अब भी ईश्वर की दया में कोई सन्देह हो सकता है। उसने काँटे बोये थे। वह सब फूल हो गये!

सुखदा आज जेल में है। जो भोग-विलास पर आसक्त थी, वह आज दीनों की सेवा में अपना जीवन सार्थक कर रही है। पिताजी, जो पैसों को दाँत से पकड़ते थे, वह आज परोपकार मे रत हैं। कोई दैवी शक्ति नहीं है, तो यह सब कुछ किसकी प्रेरणा से हो रहा है।

उसने मन की सम्पूर्ण श्रद्धा से ईश्वर के चरणों में वन्दना की। वह भार, जिसके बोझ से वह दबा जा रहा था, उसके सिर से उतर गया था। उसकी देह हलकी थी, मन हलका था और आगे आनेवाली ऊपर की चढ़ाई, मानो उसका स्वागत कर रही थी।



अमरकान्त को लखनऊ-जेल में आये आज तीसरा दिन है। यहाँ उसे चक्की का काम दिया गया है। जेल के अधिकारियों को मालूम है, वह धनी का पुत्र है; इसलिए उसे कठिन परिश्रम देकर भी उसके साथ कुछ रियायत की जाती है।

एक छप्पर के नीचे चक्कियों की क़तारें लगी हुई हैं। दो-दो क़ैदी हरेक चक्की के पास खड़े आटा पीस रहे हैं। शाम को आटे की तौल होगी। आटा कम निकला, तो दण्ड मिलेगा।

अमर ने अपने संगी से कहा ज़रा ठहर जाओ भई, दम ले लूँ, मेरे हाथ नहीं चलते। क्या नाम है तुम्हारा? मैंने तो शायद तुम्हें कहीं देखा है।

संगी गठीला, काला, लाल आँखोंवाला, कठोर आकृति का मनुष्य था, जो परिश्रम से थकना न जानता था। मुसकराकर बोला—मैं वही काले ख़ाँ हूँ, जो एक बार तुम्हारे पास सोने के कड़े लेकर बेचने गया था। याद करो। लेकिन तुम यहाँ कैसे आ फँसे, मुझे यह ताज्जुब हो रहा है। परसों से ही पूछना चाहता था, पर सोचता था, कहीं धोखा न हो रहा हो।

अमर ने अपनी कथा संक्षेप में कह सुनाई और पूछा—तुम कैसे आये ?

काले ख़ाँ हँसकर बोला—मेरी क्या पूछते हो लाला, यहाँ तो छः महीने बाहर रहते हैं, तो छः साल भीतर। अब तो यही आरज़ू है कि अल्लाह यहीं से बुला ले। मेरे लिए बाहर रहना ही मुसीबत है। सबको अच्छा-अच्छा पहनते, अच्छा-अच्छा खाते देखता हूँ, तो हसद होती है, पर मिले कहाँ से। कोई हुनर आता नहीं, इलम है नहीं। चोरी न करूँ, डाका न मारूँ, तो खाऊँ क्या। यहाँ किसी से हसद नहीं होती, न किसी को अच्छा पहनते देखता हूँ, न अच्छा खाते। सब अपने ही जैसे हैं, फिर डाह और जलन क्यों हो। इसीलिए अल्लाहताला से दुआ करता हूँ कि यहीं से बुला ले। छूटने की आरज़ू नहीं है। तुम्हारे हाथ दुख गये हों, तो रहने दो। मैं अकेला ही पीस डालूँगा। तुम्हें इन लोगों ने यह काम दिया ही क्यों ? तुम्हारे भाई-बन्द तो हम लोगों से अलग आराम से रखे जाते हैं। तुम्हें यहाँ क्यों डाल दिया। हट जाओ।

अमर ने चक्की की मुठिया ज़ोर से पकड़ कर कहा—नहीं-नहीं, मैं थका नहीं हूँ। दो-चार दिन में आदत पड़ जायगी, तो तुम्हारे बराबर काम करूँगा।

काले ख़ाँ ने उसे पीछे हटाते हुए कहा—मगर यह तो अच्छा नहीं लगता कि तुम मेरे साथ चक्की पीसो। तुमने कोई जुर्म नहीं किया है। रिआया के पीछे सरकार से लड़े हो, तुम्हें मैं न पीसने दूँगा। मालूम होता है, तुम्हारे लिए ही अल्लाह ने मुझे यहाँ भेजा है। वह तो बड़ा कारसाज़ है। उसकी कुदरत कुछ समझमें नहीं आती। आप ही आदमी से बुराई करवाता है, आप ही उसे सजा देता है, और आप ही उसे मुआफ़ भी कर देता है।

अमर ने आपत्ति की—बुराई ख़ुदा नहीं कराता, हम ख़ुद करते हैं।

काले ख़ाँ ने ऐसी निगाहों से उसकी ओर देखा, जो कह रही थीं, तुम इस को अभी नहीं समझ सकते—ना, ना, मैं यह न मानूँगा। तुमने तो

पढा होगा, उसके हुक्म के बग़ैर पत्ता भी नहीं हिल सकता, बुराई कौन करेगा। सब कुछ वही करवाता है, और फिर माफ भी कर देता है। यह मैं मुँह से कह रहा हूँ। जिस दिन मेरे ईमान में यह बात जम जायगी, उसी दिन बुराई बन्द हो जायगी। तुम्हीं ने उस दिन मुझे वह नसीहत सिखाई थी। मैं तुम्हें अपना पीर समझता हूँ। दो सौ की चीज़ तुमने तीस रुपए मे न ली। उसी दिन मुझे मालूम हुआ, बदी क्या चीज है। अब सोचता हूँ, अल्लाह को कौन मुँह दिखलाऊँ। ज़िन्दगी में इतने गुनाह किये हैं कि जब उनकी याद आती है, तो रोएँ खड़े हो जाते हैं। अब तो उसी की रहीमी का भरोसा है। क्यों भैया, तुम्हारे मज़हब में क्या लिखा है। अल्लाह गुनहगारो को मुआफ कर देता है ?

काले खाँ की कठोर मुद्रा इस गहरी, सजीव, सरल भक्ति से प्रदीप्त हो उठी, आँखों में कोमल छटा उदय हो गई। और वाणी इतनी मर्म-स्पर्शी, इतनी आर्द्र थी कि अमर का हृदय पुलकित हो उठा। सुनता तो हूँ ख़ाँ साहब कि वह बडा दयालु है।

काले खाँ दूने वेग से चक्की घुमाता हुआ बोला—बडा दयालु है भैया। माँ के पेट मे बच्चे को भोजन पहुँचाता है। यह दुनिया ही उसकी रहीमी का आइना है। जिधर आँखें उठाओ, उसकी रहीमी के जलवे! इतने ख़ूनी डाकू यहाँ पड़े हुए हैं, उनके लिए भी आराम का सामान कर दिया। मौक़ा देता है, बार-बार मौक़ा देता है, कि अब भी सँभल जावें। उसका ग़ुस्सा कौन सहेगा भैया। जिस दिन उसे ग़ुस्सा आवेगा, यह दुनिया जहन्नुम को चली जायगी। हमारे-तुम्हारे ऊपर वह क्या ग़ुस्सा करेगा। हम चींटी को पैरों-तले पडते देखकर किनारे से निकल जाते हैं। उसे कुचलते रहम आता है। जिस अल्लाह ने हमको बनाया, जो हमको पालता है, वह हमारे ऊपर कभी ग़ुस्सा कर सकता है ? कभी नहीं।

अमर को अपने अन्दर आस्था की एक लहर-सी उठती हुई जान पडी। इतने अटल विश्वास और सरस श्रद्धा के साथ इस विषय पर उसने किसी को बातें करते न सुना था। बात वही थी, जो वह नित्य छोटे-बड़े के मुँह से सुना करता; पर निष्ठा ने उन शब्दों में जान-सी डाल दी थी।

जरा देर के बाद वह फिर बोला—भैया, तुमसे चक्की चलवाना तो ऐसा ही है, जैसे कोई तलवार से चिड़िए को हलाल करे। तुम्हें अस्पताल में रखना चाहिये था, बीमारी में दवा से उतना फायदा नहीं होता, जितना एक मीठी बात से हो जाता है। मेरे सामने वहाँ कई क़ैदी बीमार हुए; पर एक भी अच्छा न हुआ। बात क्या है। दवा क़ैदी के सिर पर पटक दी जाती है, वह चाहे पिये चाहे फेंक दे।

अमर को उस काली-कलूटी काया में स्वर्ण-जैसा हृदय चमकता दीख पड़ा। मुसकराकर बोला—लेकिन दोनों काम साथ-साथ कैसे करूँगा!

'मैं अकेला चक्की चला लूँगा और पूरा आटा तुलवा दूँगा।'

'तब तो सारा सवाब मुझी को मिलेगा।'

काले खाँ ने साधु-भाव से कहा—भैया, कोई काम सब्वाब समझकर नहीं करना चाहिये। दिल को ऐसा बना लो, कि सवाब में उसे वही मज़ा आवे, जो गाने या खेलने मे आता है। कोई काम इसलिए करना कि उससे नजात मिलेगी, रोज़गार है; फिर मैं तुम्हे क्या समझाऊँ। तुम ख़ुद इन बातों को मुझसे ज्यादा समझते हो। मैं तो मरीज़ की तीमारदारी करने के लायक़ ही नहीं हूँ। मुझे बड़ी जल्द ग़ुस्सा आ जाता है। कितना चाहता हूँ कि ग़ुस्सा न आवे; पर जहाँ किसी ने दो-एक बार मेरी बात न मानी और मैं बिगड़ा।

वही डाकू, जिसे अमर ने एक दिन अधमता के पैरों के नीचे लोटते देखा था, आज देवत्व के पद पर पहुँच गया था। उसकी आत्मा से मानों एक प्रकाश-सा निकलकर अमर के अन्तःकरण को आलोकित करने लगा।

उसने कहा—लेकिन यह तो बुरा मालूम होता है कि मेहनत का काम तुम करो और मैं...काले ख़ाँ ने बात काटी—भैया, इन बातों में क्या रखा है। तुम्हारा काम इस चक्की से कहीं कठिन होगा। तुम्हें किसी से बात करने तक की मुहलत न मिलेगी। मैं रात को मीठी नींद सोऊँगा। तुम्हे रातें जागकर काटनी पड़ेंगी। जान जोखिम भी तो है। इस चक्की में क्या रखा है। यह काम तो गधा भी कर सकता है, बैल भी कर सकती है; लेकिन जो काम

सूर्यास्त हो रहा था। काले ख़ाँ ने अपने पूरे गेहूँ पीस डाले थे और दूसरे क़ैदियों के पास जा-जाकर देख रहा था, किसका कितना काम बाक़ी है। कई क़ैदियों के गेहूँ अभी समाप्त नहीं हुए थे। जेल कर्मचारी आटा तौलने आ रहा होगा। इन बेचारो पर आफत आ जायगी, मार पडने लगेगी। काले ख़ाँ ने एक-एक चक्की के पास जाकर क़ैदियों की मदद करनी शुरू की। उसकी फुरती और मेहनत पर लोगों को विस्मय होता था। आध घण्टे में उसने फिसड्डियों की कमी पूरी कर दी। अमर अपनी चक्की के पास खडा इस सेवा के पुतले को श्रद्धा-भरी आँखों से देख रहा था, मानों दिव्य दर्शन कर रहा हो।

काले ख़ाँ इधर से फ़ुरसत पाकर नमाज़ पढने लगा। वहीं बरामदे मे उसने वज़ू किया, अपना कम्बल ज़मीन पर बिछा दिया और नमाज़ शुरू की। उसी वक्त, जेलर साहब चार वार्डरों के साथ आटा तुलवाने आ पहुँचे। क़ैदियों ने अपना-अपना आटा बोरियों मे भरा और तराज़ू के पास आकर खडे हो गये। आटा तुलने लगा।

जेलर ने अमर से पूछा—तुम्हारा साथी कहाँ गया?

अमर ने बतलाया नमाज़ पढ रहा है।

'उसे बुलाओ। पहले आटा तुलवा ले, फिर नमाज़ पढे। बडा नमाज़ी की दुम बना है। कहाँ गया है नमाज़ पढने?'

अमर ने शेड के पीछे की तरफ इशारा करके कहा—उन्हे नमाज़ पढने दें, आप आटा तौल लें।

जेलर यह कब देख सकता था, कि कोई क़ैदी उस वक्त नमाज़ पढ़ने जाय, जब जेल के साक्षात् प्रभु पधारे हों। शेड के पीछे जाकर बोले—अबे ओ नमाज़ी के बच्चे, आटा क्यों नहीं तुलवाता? बचा गेहूँ चबा गये हो, तो नमाज़ का बहाना करने लगे। चल चटपट; वरना मारे हंटरो के चमड़ी उधेड लूँगा।

काले ख़ाँ दूसरी ही दुनियाँ मे था।

जेलर ने समीप जाकर अपनी छडी उसकी पीठ में चुभाते हुए कहा—बहरा हो गया है क्या बे? शामतें तो नहीं आई है।

काले ख़ाँ नमाज़ पढ़ने में मग्न था। पीछे फिरकर भी न देखा।

जेलर ने झल्लाकर लात जमाई। काले ख़ाँ सिजदे के लिये झुका हुआ था। लात खाकर औंधे मुँह गिर पड़ा; पर तुरन्त सँभलकर फिर सिजदे में झुक गया। जेलर को अब ज़िद पड़ गई, कि उसकी नमाज़ बन्द कर दे। सम्भव है काले ख़ाँ को भी ज़िद पड़ गई हो कि नमाज़ पूरी किये बग़ैर न उठूँगा। वह तो सिजदे में था। जेलर ने उसे बूटदार ठोकरें जमानी शुरू कीं। एक वार्डर ने लपककर दो गारद के सिपाही बुला लिये। दूसरा जेलर साहब की कुमक पर दौड़ा। काले ख़ाँ पर एक तरफ़ से ठोकरें पड़ रही थीं, दूसरी तरफ़ से लकड़ियाँ; पर वह सिजदे से सिर न उठाता था। हाँ, प्रत्येक आघात पर उसके मुँह से 'अल्लाहो अकबर!' की दिल हिला देनेवाली सदा निकल जाती थी। उधर आघातकारियों की उत्तेजना भी बढ़ती जाती थी। जेल का क़ैदी जेल के ख़ुदा को सिजदा न करके अपने ख़ुदा को सिजदा करे, इससे बड़ा जेलर साहब का क्या अपमान हो सकता था। यहाँ तक कि काले ख़ाँ के सिर से रुधिर बहने लगा। अमरकान्त उसकी रक्षा करने के लिए चला था, कि एक वार्डर ने उसे मजबूत पकड़ लिया। उधर बराबर आघात हो रहे थे और काले ख़ाँ बराबर 'अल्लाहो अकबर!' की सदा लगाये जाता था। आख़िर वह आवाज़ क्षीण होते-होते एक बार बिल्कुल बन्द हो गई और काले ख़ाँ रक्त बहने से शिथिल हो गया। मगर चाहे किसी के कानों में आवाज़ न जाती हो, उसके ओठ अब भी खुल रहे थे और अब भी 'अल्लाहो अकबर' की अव्यक्त ध्वनि निकल रही थी!

जेलर ने खिसियाकर कहा—पड़ा रहने दो बदमाश को यहीं। कल से इसे खड़ी बेड़ी दूँगा और तनहाई भी। अगर तब भी न सीधा हुआ, तो उलटी होगी। इसका नमाज़ीपन निकाल न दूँ, तो नाम नहीं!

एक मिनट में वार्डर, जेलर, सिपाही सब चले गये। क़ैदियों के भोजन का समय आया, सब-के-सब भोजन पर जा बैठे। मगर काले ख़ाँ अभी वहीं औंधा पड़ा था। सिर और नाक तथा कानों से ख़ून बह रहा था। अमरकान्त बैठा उसके घावों को पानी से धो रहा था और ख़ून बन्द करने का प्रयास कर रहा था। आत्मशक्ति के इस कल्पनातीत उदाहरण ने उसकी भौतिक बुद्धि

को जैसे आक्रान्त कर दिया। ऐसी परिस्थिति में क्या वह इस भाँति निश्चल और संयमित बैठा रहता? शायद पहले ही आघात में उसने या तो प्रतिकार किया होता या नमाज़ छोड़कर अलग हो जाता। विज्ञान और नीति और देशानुराग की वेदी पर बलिदानों की कमी नहीं। पर यह निश्चल धैर्य ईश्वर-निष्ठा ही का प्रसाद है।

क़ैदी भोजन करके लौटे। काले ख़ाँ अब भी वहीं पड़ा हुआ था। सभी ने उसे उठाकर बैरक में पहुँचाया और डाक्टर को सूचना दी; पर उन्होंने रात को कष्ट उठाने की ज़रूरत न समझी। वहाँ और कोई दवा भी न थी। गर्म पानी तक न मयस्सर हो सका।

उस बैरक के क़ैदियों ने सारी रात बैठकर काटी। कई आदमी आमादा थे कि सुबह होते ही जेलर साहब की मरम्मत की जाय। यही न होगा साल-साल भर की मीयाद और बढ़ जायगी। क्या परवाह! अमरकान्त शान्त प्रकृति का आदमी था; पर इस समय वह भी उन्हीं लोगों में मिला हुआ था। रात-भर उसके अन्दर पशु और मनुष्य में द्वन्द्व होता रहा। वह जानता था आग आग से नहीं, पानी से शान्त होती है। इंसान कितना ही हैवान हो जाय, उसमें कुछ-न-कुछ आदमीयत रहती ही है। वह आदमीयत अगर जाग सकती है, तो ग्लानि से, या पश्चात्ताप से। अमर अकेला होता, तो वह अब भी विचलित न होता; लेकिन सामूहिक आवेश ने उसे भी अस्थिर कर दिया। समूह के साथ हम कितने ही ऐसे अच्छे या बुरे काम कर जाते हैं, जो हम अकेले न कर सकते। और काले ख़ाँ की दशा जितनी ही ख़राब होती जाती थी, उतनी ही परिशोध की ज्वाला भी प्रचण्ड होती जाती थी।

एक डाके के क़ैदी ने कहा— ख़ून पी जाऊँगा, ख़ून! उसने समझा क्या है! यही न होगा, फाँसी हो जायगी।

अमरकान्त बोला—उस वक्त क्या समझे थे कि मारे ही डालता है!

चुपके-चुपके षड्यन्त्र रचा गया, आघातकारियों का चुनाव हुआ, उनका कार्य-विधान निश्चय किया गया सफ़ाई की दलील सोच निकाली गई।

सहसा एक ठिगने क़ैदी ने कहा—तुम लोग समझते हो सवेरे तक उसे ख़बर न हो जायगी?

अमर ने पूछा—ख़बर कैसे होगी ? यहाँ ऐसा कौन है, जो उसे ख़बर दे दे

ठिगने क़ैदी ने दाएँ-बाएँ आँखें घुमाकर कहा—ख़बर देनेवाले न जा कहाँ से निकल आते हैं भैया। किसी के माथे पर तो कुछ लिखा नहीं, को जाने हमीं में से कोई जाकर इत्तला कर दे। रोज़ ही तो लोगों को मुख़बि बनते देखते हो। वही लोग जो अगुआ होते हैं, अवसर पड़ने पर सरका गवाह बन जाते हैं। अगर कुछ करना है, तो अभी कर डालो। दिन वे वारदात करोगे, सब-के-सब पकड़ लिये जाओगे। पाँच-पाँच साल की उ ठुक जायगी।

अमर ने सन्देह के स्वर में पूछा—लेकिन इस वक्त तो वह अपने क्वार्टर सो रहा होगा ?

ठिगने क़ैदी ने राह बताई—यह हमारा काम है भैया, तुम क्या जानो।

सबों ने मुँह मोड़कर कनफुसकियों में बातें शुरू कीं। फिर पाँचों आदम खड़े हो गये।

ठिगने क़ैदी ने कहा—हममें से जो फूटे, उसे गऊहत्या !

यह कहकर उसने बड़े ज़ोर से हाय, हाय करना शुरू किया। और भ कई आदमी चीख़ने-चिल्लाने लगे। एक क्षण में वार्डर ने द्वार पर आक पूछा—तुम लोग क्यों शोर कर रहे हो ! क्या बात है !

ठिगने क़ैदी ने कहा—बात क्या है, काले खाँ की हालत ख़राब है। जाक जेलर साहब को बुला लाओ। चटपट।

वार्डर बोला—वाह बे ! चुपचाप पड़ा रह। बड़ा नवाब का बेटा बना है !

'हम कहते हैं जाकर उन्हें भेज दो, नहीं ठीक न होगा।'

काले खाँ ने आँखें खोलीं और क्षीण स्वर में बोला—क्यों चिल्लाते हैं यारो, मैं अभी मरा नहीं हूँ। जान पड़ता है, पीठ की हड्डी में चोट है।

ठिगने क़ैदी ने कहा—उसी का बदला चुकाने की तैयारी है पठान।

काले ख़ाँ तिरस्कार के स्वर में बोला—किससे बदला चुकाओगे भाई अल्लाह से ? अल्लाह की यही मरज़ी है, तो उसमें दूसरा कौन दख़ल दे सकत है। अल्लाह की मरज़ी के बिना कहीं एक पत्ती भी हिल सकती है ? ज़र पानी पिला दो। और देखो, जब मैं मर जाऊँ, तो यहाँ जितने भाई हैं

सब मेरे लिए खुदा से दुआ करना। और दुनिया में मेरा कौन है। शायद तुम लोगों की दुआ से मेरी नजात हो जाय।

अमर ने उसे गोद मे सँभालकर पानी पिलाना चाहा, मगर घूँट कंठ के नीचे न उतरा। वह ज़ोर से कराहकर फिर लेट गया।

ठिगने क़ैदी ने दाँत पीसकर कहा—ऐसे बदमास की गरदन तो उलटी छुरी से काटनी चाहिये।

काले ख़ाँ दीन-भाव से रुक-रुककर बोला—क्यो मेरी नजात का द्वार बन्द करते हो भाई! दुनिया तो बिगड गई, क्या आक़बत भी बिगाडना चाहते हो! अल्लाह से दुआ करो, सब पर रहम करे। जिन्दगी में क्या कम गुनाह किये हैं, कि मरने के पीछे पाँव में बेडियाँ पडी रहे! या अल्लाह, रहम करो।

इन शब्दों में मरनेवाले की निर्मल आत्मा मानो व्याप्त हो गई थी। बातें वही थीं, जो रोज़ सुना करते थे, पर इस समय इनमे कुछ ऐसी द्रावक, कुछ ऐसी हिला देनेवाली सिद्धि थी कि सभी जैसे उसमें नहा उठे। इस चुटकी-भर राख ने जैसे उनके तापमय विकारों को शान्त कर दिया।

प्रातःकाल जब काले ख़ाँ ने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी तो ऐसा कोई क़ैदी न था, जिसकी आँखो से आँसू न निकल रहे हों; पर औरो का रोना दुःख का था, अमर का रोना सुख का था। औरो को किसी आत्मीय के खो देने का सदमा था, अमर को उसके और समीप हो जाने का अनुभव हो रहा था। अपने जीवन में उसने यही एक नररत्न पाया था, जिसके सम्मुख वह श्रद्धा से सिर झुका सकता था और जिससे वियोग हो जाने पर उसे एक वरदान पा जाने का भान होता था।

इस प्रकाश-स्तम्भ ने आज उसके जीवन को एक दूसरी ही धारा मे डाल दिया जहाँ संशय की जगह विश्वास, और शंका की जगह सत्य मूर्तिमान हो गया था।



लाला समरकान्त के चले जाने के बाद सलीम ने हरएक गाँव का दौरा करके असामियों की आर्थिक दशा की जाँच करना शुरू की। अब उसे मालूम हुआ कि उनकी दशा उससे कहीं हीन है, जितनी वह समझे बैठा था। पैदावार का मूल्य लागत और लगान से कहीं कम था। खाने-कपड़े की भी गुंजाइश न थी, दूसरे खर्चों का क्या जिक्र। ऐसा कोई विरला ही किसान था, जिसका सिर ऋण के नीचे न दबा हो। कालेज में उसने अर्थशास्त्र अवश्य पढ़ा था और जानता था, कि यहाँ के किसानों की हालत ख़राब है; पर अब ज्ञात हुआ कि पुस्तक-ज्ञान और प्रत्यक्ष व्यवहार में वही अन्तर है, जो किसी मनुष्य और उसके चित्र में है। ज्यों-ज्यों असली हालत मालूम होती जाती थी, उसे असामियों से सहानुभूति होती जाती थी। कितना अन्याय है कि जो बेचारे रोटियों को मुहताज हों, जिनके पास तन ढाँकने को केवल चीथड़े हों, जो बीमारी में एक पैसे की दवा भी न कर सकते हों, जिनके घरों में दीपक भी न जलते हों, उनसे पूरा लगान वसूल किया जाय। जब जिन्स महँगी थी, तब किसी तरह एक जून रोटियाँ मिल जाती थीं। इस मन्दी में तो उनकी दशा वर्णनातीत हो गई है। जिनके लड़के पाँच-छः बरस की उम्र से ही मेहनत-मजूरी करने लगें, जो ईंधन के लिए हार में गोबर चुनते फिरें, उनसे पूरा लगान वसूल करना, मानों उनके मुँह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना है, उनकी रक्त-हीन देह से ख़ून चूसना है।

परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान होते ही सलीम ने अपने कर्तव्य का निश्चय कर लिया। वह उन आदमियों में न था, जो स्वार्थ के लिए अफ़सरों के हरएक हुक्म की पाबन्दी करते हैं। वह नौकरी करते हुए भी आत्मा की रक्षा करना चाहता था। कई दिन एकान्त में बैठकर उसने विस्तार के साथ अपनी रिपोर्ट लिखी और मि० ग़ज़नवी के पास भेज दी। मि० ग़ज़नवी ने उसे तुरन्त लिखा—आकर मुझसे मिल जाओ। सलीम उनसे मिलना न चाहता था। डरता था, कहीं यह मेरी रिपोर्ट को दबाने का प्रस्ताव न करें, लेकिन फिर सोचा—

चलने में हरज ही क्या है। अगर वह मुझे क़ायल कर दें, तब तो कोई बात नहीं; लेकिन अफ़सरो के भय से मैं अपनी रिपोर्ट को कभी न दबने दूँगा। उसी दिन वह सन्ध्या समय सदर जा पहुँचा।

मि० ग़ज़नवी ने तपाक से हाथ बढाते हुए कहा—मि० अमरकान्त के साथ तो तुमने दोस्ती का हक़ ख़ूब अदा किया। वह ख़ुद शायद इतनी मुफ़स्सल रिपोर्ट न लिख सकते लेकिन क्या तुम समझते हो, सरकार को यह बाते मालूम नहीं?

सलीम ने कहा—मेरा तो ऐसा ही खयाल है। उसे जो रिपोर्टें मिलती हैं, वह ख़ुशामदी अहलकारो से मिलती हैं, जो रिआया का ख़ून करके भी सरकार का घर भरना चाहते हैं। मेरी रिपोर्ट वाक़यात पर लिखी गई है।

दोनो अफ़सरों मे बहस होने लगी। ग़ज़नवी कहता था—हमारा काम केवल अफ़सरों की आज्ञा मानना है। उन्होने लगान वसूल करने की आज्ञा दी। हमे लगान वसूल करना चाहिये। प्रजा को कष्ट होता है तो हो, हमे इससे प्रयोजन नहीं। हमे ख़ुद अपनी आमदनी का टैक्स देने मे कष्ट होता है; लेकिन मजबूर होकर देते हैं। कोई आदमी खुशी से टैक्स नहीं देता।

गजनवी इस आज्ञा का विरोध करना अनीति ही नहीं, अधर्म समझता था। क़ेवल ज़ाब्ते की पाबन्दी से उसे सन्तोष न हो सकता था। वह इस हुक्म की तामील करने के लिए सब कुछ करने को तैयार था। सलीम का कहना था—हम सरकार के नौकर केवल इसलिए हैं कि प्रजा की सेवा कर सकें, उसे सुदशा की ओर ले जा सकें, उसकी उन्नति में सहायक हो सकें। यदि सरकार की किसी आज्ञा से इन उद्देश्यों की पूर्ति मे बाधा पडती हो, तो हमें उस आज्ञा को कदापि न मानना चाहिये।

ग़ज़नवी ने मुँह लम्बा करके कहा—मुझे ख़ौफ है कि गवर्नमेंट तुम्हारा यहाँ से तबादला कर देगी।

'तबादला कर दे इसकी मुझे परवाह नही, लेकिन मेरी रिपोर्ट पर ग़ौर करने का वादा करे; अगर वह मुझे यहाँ से हटाकर मेरी रिपोर्ट को दाख़िल दफ़्तर करना चाहेगी, तो मैं इस्तीफ़ा दे दूँगा।'

ग़ज़नवी ने विस्मय से उसके मुँह की ओर देखा।

'आप गवर्नमेंट की दिक़्क़तों का मुतलक़ अन्दाज़ा नहीं कर रहे हैं। अ वह इतनी आसानी से दबने लगे, तो आप समझते हैं, रिआया कितनी शेर जायगी। ज़रा-ज़रा-सी बात पर तूफ़ान खड़े हो जायँगे। और यह महज़ इलाक़े का मुआमला नहीं है। सारे मुल्क में यही तहरीक जारी है। अ सरकार अस्सी फ़ीसदी काश्तकारों के साथ रिआयत करे, तो उसके लिए मुल्क इन्तज़ाम करना दुश्वार हो जायगा।'

सलीम ने प्रश्न किया—गवर्नमेंट रिआया के लिए है, रिआया गवर्नमेंट लिए नहीं। काश्तकारों पर ज़ुल्म करके, उन्हें भूखों मारकर अगर गवर्नमें ज़िन्दा रहना चाहती है, तो कम-से-कम मैं अलग हो जाऊँगा। अगर मालि में कमी आ रही है, तो सरकार को अपना ख़र्च घटाना चाहिये। न कि रिआ पर सख़्तियाँ की जायँ।

ग़ज़नवी ने बहुत ऊँच-नीच सुझाया, लेकिन सलीम पर कोई असर हुआ। उसे डंडों से लगान वसूल करना किसी तरह मंज़ूर न था। आख़ि ग़ज़नवी ने मजबूर होकर उसकी रिपोर्ट ऊपर भेज दी, और एक ही सप्ताह अन्दर गवर्नमेंट ने उसे पृथक् कर दिया। ऐसे भयंकर विद्रोही पर वह के विश्वास करती।

जिस दिन उसने नये अफ़सरों को चार्ज दिया और इलाक़े से विदा हो लगा, उसके डेरे के चारों तरफ़ स्त्री-पुरुषों का एक मेला लग गया और स उससे मिन्नतें करने लगे—आप इस दशा में हमें छोड़कर न जायँ। सली यही चाहता था। बाप के भय से घर न जा सकता था। फिर इन अनाथ से उसे स्नेह हो गया था। कुछ तो दया और कुछ अपने अपमान ने उ उनका नेता बना दिया। वही अफ़सर जो कुछ दिन पहले अफ़सरी के मद भरा हुआ आया था, जनता का सेवक बन बैठा। अत्याचार सहना अत्याचा करने से कहीं ज़्यादा गौरव की बात मालूम हुई।

आन्दोलन की बागडोर सलीम के हाथ में आते ही लोगों के हौसले बँध गये। जैसे पहले अमरकान्त आत्मानन्द के साथ गाँव-गाँव दौरा करता था, ी तरह सलीम दौड़ने लगा। वही सलीम, जिसके ग़ुन के लोग प्यासे हो

रहे थे, अब उस इलाके का मुकुटहीन राजा था। जनता उसके पसीने की जगह खून बहाने को तैयार थी।

सन्ध्या हो गई थी। सलीम और आत्मानन्द दिन भर काम करने के बाद लौटे थे कि एकाएक नये बगाली सिविलियन मि० घोष पुलीस कर्मचारियों के साथ आ पहुँचे और गाँव-भर के मवेशियो को कुर्क करने की घोषणा कर दी। कुछ क़साई पहले ही से बुला लिये गये थे। वे सस्ता सौदा ख़रीदने को तैयार थे। दम-के-दम में कास्टेबलों ने मवेशियो को खोल-खोलकर मदरसे के द्वार पर जमा कर दिया। गूदड, भोला, अलगू सभी चौधरी गिरफ्तार हो चुके थे। फ़स्ल की कुर्की तो पहले ही हो चुकी थी, मगर फ़स्ल मे अभी क्या रखा था। इसलिए अब अधिकारियो ने मवेशियों को कुर्क करने का निश्चय किया था। उन्हे विश्वास था कि किसान मवेशियो की कुर्की देखकर भयभीत हो जायँगे, और चाहे उन्हे क़र्ज़ लेना पड़े, या स्त्रियों के गहने बेचने पडे, वे जानवरों को बचाने के लिए सब कुछ करने पर तैयार होगे। जानवर किसान के दाहिने हाथ हैं।

किसानों ने यह घोषणा सुनी, तो छक्के छूट गये। वे समझे थे कि सरकार और जो चाहे करे, पर मवेशियो को कुर्क न करेगी। क्या वह किसानों की जड खोदकर फेंक देगी?

यह घोषणा सुनकर भी वे यही समझ रहे थे कि यह केवल धमकी है, लेकिन जब मवेशी मदरसे के सामने जमा कर दिये गये और क़साइयो ने उनकी देख-भाल शुरू की, तो सबों पर जैसे वज्रपात हो गया। अब समस्या उस सीमा तक पहुँच गई थी, जब रक्त का आदान-प्रदान आरम्भ हो जाता है।

चिराग़ जलते-जलते जानवरो का बाजार लग गया। अधिकारियो ने इरादा किया है कि सारी रकम एकजाई वसूल करे। गाँववाले आपस मे लड़-झगडकर अपने-अपने लगान का फ़ैसला कर लेंगे। इसकी अधिकारियों को कोई परवा नहीं है।

सलीम ने आकर मि० घोष से कहा—आपको मालूम है, कि मवेशियों को कुर्क करने का आपको मजाज नहीं है?

मि० घोष ने उग्र भाव से जवाब दिया—यह नीति ऐसे अवसरों के लिए नहीं है। विशेष अवसरों के लिए विशेष नीति होती है। क्रांति की नीति, शांति की नीति से भिन्न होनी स्वाभाविक है।

अभी सलीम ने कुछ उत्तर न दिया था, कि मालूम हुआ अहीरों के मकान में लाठी चल गई। मि० घोष उधर लपके। सिपाहियों ने भी संगीनें चढ़ाईं और उनके पीछे चले। काशी, पयाग, आत्मानन्द सब उसी तरफ दौड़े। केवल सलीम यहाँ खड़ा रहा। जब एकान्त हो गया, तो उसने कसाइयों के सरगना के पास जाकर सलामअलेक किया और बोला—क्यों भाई साहब, आपको मालूम है, आप लोग इन मवेशियों को ख़रीदकर यहाँ की ग़रीब रिआया के साथ कितनी बड़ी बेइन्साफ़ी कर रहे हैं?

सरगना का नाम तेगमुहम्मद था। नाटे कद का गठीला आदमी था, ख़ूब पहलवान। ढीला कुरता, चारख़ाने की तहमद, गले में चाँदी की तावीज़, हाथ में मोटा सोटा। नम्रता से बोला—साहब, मैं तो माल ख़रीदने आया हूँ। मुझे इससे क्या मतलब कि माल किसका है और कैसा है। चार पैसे का फ़ायदा जहाँ होता है, वहाँ आदमी जाता ही है।

'लेकिन यह तो सोचिये कि मवेशियों की कुर्की किस सबब से हो रही है। रिआया के साथ आपको हमदर्दी होनी चाहिये।'

तेगमुहम्मद पर कोई प्रभाव न हुआ—सरकार से जिसकी लड़ाई होगी, उसकी होगी। हमारी कोई लड़ाई नहीं है।

'तुम मुसलमान होकर ऐसी बातें करते हो, इसका मुझे अफ़सोस है। इस्लाम ने हमेशा मज़लूमों की मदद की है। और तुम मज़लूमों की गरदन पर छुरी फेर रहे हो!'

'जब सरकार हमारी परवरिश कर रही है, तो हम उसके बदख़्वाह नहीं बन सकते।'

'अगर सरकार तुम्हारी जायदाद छीनकर किसी ग़ैर को दे दे, तो तुम्हें बुरा लगेगा, या नहीं?'

'सरकार से लड़ना हमारे मज़हब के ख़िलाफ़ है।'

'यह क्यों नहीं कहते कि तुममें ग़ैरत नहीं है।'

'आप तो मुसलमान हैं। क्या आपका फर्ज नहीं है कि बादशाह की मदद करें।'

'अगर मुसलमान होने का यह मतलब है, कि गरीबों का ख़ून किया जाय, तो मैं काफिर हूँ।'

तेग़मुहम्मद पढ़ा-लिखा आदमी था। वह वाद-विवाद करने पर तैयार हो गया। सलीम ने उसकी हँसी उड़ाने की चेष्टा की। पन्थों को वह संसार का कलंक समझता था, जिसने मनुष्य-जाति को विरोधी दलों में विभक्त करके एक दूसरे का दुश्मन बना दिया है। तेगमुहम्मद रोजा-नमाज़ का पाबन्द, दीनदार मुसलमान था। मज़हब की तौहीन क्योंकर बरदाश्त करता। उधर तो अहिराने मे पुलीस और अहीरों मे लाठियाँ चल रही थीं, इधर इन दोनों मे हाथा-पाई की नौबत आ गई। क़साई पहलवान था। सलीम भी ठोकर चलाने और घूँसेबाज़ी में मॅजा हुआ, फ़ुरतीला, चुस्त। पहलवान साहब उसे अपनी पकड़ में लाकर दबोच बैठना चाहते थे। वह ठोकर पर ठोकर जमा रहा था। ताबड़-तोड़ ठोकरें पड़ीं, तो पहलवान साहब गिर पड़े और लगे मातृभाषा में अपने मनोविकारों को प्रकट करने। उसके दोनों साथियों ने पहले दूर ही से तमाशा देखना उचित समझा था, लेकिन जब तेगमुहम्मद गिर पड़ा, तो दोनों कमर कसकर पिल पड़े। यह दोनों अभी जवान पट्ठे थे, तेजी और चुस्ती में सलीम के बराबर। सलीम पीछे हटता जाता था और यह दोनों उसे ठेलते जाते थे। उसी वक्त सलोनी लाठी टेकती हुई अपनी गाय को खोजने आ रही थी। पुलीस उसे उसके द्वार से खोल लाई थी। यहाँ यह संग्राम छिड़ा देखकर उसने अञ्चल सिर से उतारकर कमर मे बाँधा और लाठी सँभालकर पीछे से दोनों क़साइयों को पीटने लगी। उनमे से एक ने पीछे फिरकर बुढ़िया को इतने जोर से धक्का दिया कि वह तीन-चार हाथ पर जा गिरी। इतनी देर में सलीम ने घात पाकर सामने के जवान को ऐसा घूँसा दिया कि उसकी नाक से ख़ून जारी हो गया और वह सिर पकड़कर बैठ गया। अब केवल एक आदमी और रह गया। उसने अपने दो योद्धाओं की यह गति देखी, तो पुलीसवालों से फ़रियाद करने भागा। तेग़मुहम्मद की दोनों घुटनियाँ बेकार हो गई थीं। उठ ही न सकता था। मैदान ख़ाली देखकर सलीम ने लपककर

मवेशियों की रस्सियाँ खोल दीं और तालियाँ बजा-बजाकर उन्हें भगा दिया। बेचारे जानवर सहमे खड़े थे। आनेवाली विपत्ति का उन्हें कुछ आभास हो रहा था। रस्सी खुली तो सब पूँछ उठा-उठाकर भागे और द्वार की तरफ़ निकल गये।

उसी वक्त आत्मानन्द बदहवास दौड़े आये और बोले—आप ज़रा अपना रिवालवर तो मुझे दीजिये।

सलीम ने हक्का-बक्का होकर पूछा—क्या माजरा है, कुछ कहो तो!

'पुलीसवालों ने कई आदमियों को मार डाला। अब नहीं रहा जाता, मैं इस घोंघे को मज़ा चखा देना चाहता हूँ।'

'आप कुछ भंग तो नहीं खा गये हैं। भला यह रिवालवर चलाने का मौक़ा है!'

'अगर यों न दोगे, तो मैं छीन लूँगा। इस दुष्ट ने गोलियाँ चलवाकर चार-पाँच आदमियों की जान ले ली। दस-बारह आदमी बुरी तरह ज़ख्मी हो गये हैं। कुछ इनको भी तो मज़ा चखाना चाहिये। मरना तो है ही।'

'मेरा रिवालवर इस काम के लिए नहीं है।'

आत्मानन्द यों भी उद्दंड आदमी थे। इस हत्याकांड ने उन्हें बिलकुल उन्मत्त कर दिया था। बोले—निरपराधों का रक्त बहाकर आततायी चला जा रहा है, तुम कहते हो रिवालवर इस काम के लिए नहीं है! फिर और किस काम के लिए है! मैं तुम्हारे पैरों पड़ता हूँ भैया। एक क्षण के लिए दे दो। दिल की लालसा पूरी कर लूँ। कैसे-कैसे वीरों को मारा है इन हत्यारों ने, कि देखकर मेरी आँखों में ख़ून उतर आया।

सलीम बिना कुछ उत्तर दिये वेग से अहीराने की ओर चला। गली में सभी द्वार बन्द थे। कुत्ते भी कहीं भागकर जा छिपे थे।

यकायक एक घर का द्वार झोंके के साथ खुला और एक युवती सिर खोले, अस्तव्यस्त, कपड़े ख़ून में तर, भयातुर हिरनी-सी आकर उसके पैरों से चिपट गई और सहमी हुई आँखों से द्वार की ओर ताकती हुई बोली—

सरकार, यह सब सिपाही मुझे मारे डालते हैं।

सलीम ने तसल्ली दी—घबराओ नहीं, घबराओ नहीं। माजरा क्या है!

,युवती ने डरते-डरते बताया कि घर में कई सिपाही घुस गये है।

इसके आगे वह और कुछ न कह सकी।

'घर में कोई आदमी नहीं है ?'

'वह तो भैंसें चराने गये हैं।'

'तुम्हें कहाँ चोट आई है ?'

'मुझे चोट नहीं आई। मैंने दो आदमियों को मारा है।'

उसी वक्त दो कांसटेबल बन्दूकें लिये घर से निकल आये और युवती को सलीम के पास खड़े देख दौड़कर उसके केश पकड लिये और उसी द्वार की ओर खींचने लगे।

सलीम ने रास्ता रोककर कहा—छोड़ दो उसके बाल, वरना अच्छा न होगा। मैं तुम दोनो को भूनकर रख दूँगा।

एक कांसटेबल ने क्रोध भरे स्वर में कहा—छोड़ कैसे दें। इसे ले जायँगे साहब के पास। इसने हमारे दो आदमियों को गँडासे से ज़ख़्मी कर दिया। दोनो पड़े तडप रहे हैं।

'तुम इसके घर में क्यों गये थे ?'

'गये थे मवेशियों को खोलने। यह गँडासा लेकर टूट पड़ी।'

युवती ने टोका—झूठ बोलते हो। तुमने मेरी बाँह नहीं पकड़ी थी ?

सलीम ने लाल आँखों से सिपाही को देखा और धक्का देकर कहा—इसके बाल छोड़ दो !

'हम इसे साहब के पास ले जायँगे।'

'तुम इसे नहीं ले जा सकते।'

सिपाहियो ने सलीम को हाकिम के रूप मे देखा था। उसकी मातहती कर चुके थे। उस रोब का कुछ अंश उनके दिल पर बाक़ी था। उसके साथ जबरदस्ती करने का साहस न हुआ। जाकर मि० घोष से फरियाद की। घोष बाबू सलीम से जलते थे। उनका ख़याल था, कि सलीम ही इस आन्दोलन को चला रहा है और यदि उसे हटा दिया जाय, तो चाहे आन्दोलन तुरन्त शांत न हो जाय पर उसकी जड टूट जायगी; इसलिए सिपाहियो की रिपोर्ट सुनते ही तुरन्त घोडा बढाकर सलीम के पास आ पहुँचे और अंग्रेज़ी में क़ानून बघारने

लगे। सलीम को भी अंग्रेजी बोलने का बहुत अच्छा अभ्यास था। दोनो मे पहले क़ानूनी मुबाहसा हुआ, फिर धार्मिक तत्त्व-निरूपण का नम्बर आया, इससे उतरकर दोनो दार्शनिक तर्क-वितर्क करने लगे, यहाँ तक कि अन्त में व्यक्तिगत आक्षेपों की बौछार होने लगी। इसके एक ही क्षण बाद शब्द ने क्रिया का रूप धारण किया। मिस्टर घोष ने हंटर चलाया, जिसने सलीम के चेहरे पर एक नीली चौडी उभरी हुई रेखा छोड़ दी। आँखे बाल-बाल बच गईं। सलीम भी जामे से बाहर हो गया। घोष की टाँग पकडकर ज़ोर से खींचा। साहब घोड़े से नीचे गिर पड़े। सलीम उनकी छाती पर चढ बैठा और नाक पर घूँसा मारा। घोष बाबू मूर्छित हो गये। सिपाहियो ने दूसरा घूँसा न पड़ने दिया। चार आदमियो ने दौडकर सलीम को जकड लिया। चार आदमियों ने घोष को उठाया और होश में लाये।

अँधेरा हो गया था। आतंक ने सारे गाँव को पिशाच की भाँति छाप लिया था। लोग शोक से मौन, और आतक के भार से दबे, मरनेवालों की लाशे उठा रहे-थे। किसी के मुँह से रोने की आवाज न निकलती थी ज़ख्म ताज़ा था इसलिए टीस न थी। रोना पराजय का लक्षण है। इन प्राणियों को विजय का गर्व था। रोकर अपनी दीनता प्रकट न करना चाहते थे। बच्चे भी जैसे रोना भूल गये थे।

मिस्टर घोष घोड़े पर सवार होकर डाकबँगले गये। सलीम एक सब-इंस-पेक्टर और कई कासटेबलों के साथ एक लारी पर सदर भेज दिया गया। वह अहीरिन युवती भी उसी लारी पर भेजी गई। पहर रात जाते-जाते चारों अर्थियाँ गगा की ओर चलीं। सलोनी लाठी टेकती हुई आगे-आगे गाती जाती थी—

'सैयाँ मोरा रूठा जाय सखी री...'



काले ख़ाँ के आत्म-समर्पण ने अमरकान्त के जीवन को जैसे कोई आधार प्रदान कर दिया। अब तक उसके जीवन का कोई लक्ष्य न था, कोई आदर्श न था, कोई व्रत न था। इस मृत्यु ने उसकी आत्मा में प्रकाश-सा डाल दिया। काले ख़ाँ की याद उसे एक क्षण के लिए भी न भूलती और किसी गुप्त शक्ति की भाँति उसे शान्ति और बल देती थी। वह उसकी वसीयत इस तरह पूरी करनी चाहता था कि काले ख़ाँ की आत्मा को स्वर्ग में शान्ति मिले। घड़ीरात से उठकर क़ैदियों का हाल-चाल पूछना और उनके घरों पर पत्र लिखकर रोगियों के लिए दवा-दारू का प्रबन्ध करना, उनकी शिकायतें सुनना और अधिकारियों से मिलकर शिकायतों को दूर कराना, यह सब उसके काम थे। और इस काम को वह इतने विनय, इतनी नम्रता और सहृदयता से करता कि अमलों को भी उस पर सन्देह की जगह विश्वास होता था। वह क़ैदियों का विश्वासपात्र भी था और अधिकारियों का भी।

अब तक वह एक प्रकार से उपयोगितावाद का उपासक था। इसी सिद्धान्त को मन में, यद्यपि अज्ञात रूप से, रखकर वह अपने कर्त्तव्य का निश्चय करता था। तत्त्व-चिन्तन का उसके जीवन में कोई स्थान न था। प्रत्यक्ष के नीचे जो अथाह गहराई है, वह उसके लिए कोई महत्त्व न रखती थी। उसने समझ रखा था, वहाँ शून्य के सिवा और कुछ नहीं। काले ख़ाँ की मृत्यु ने जैसे उसका हाथ पकड़कर बल पूर्वक उसे उस गहराई में डुबा दिया और उसमें डूबकर उसे अपना सारा जीवन किसी तृण के समान ऊपर तैरता हुआ दीख पड़ा, कभी लहरों के साथ आगे बढ़ता हुआ, कभी हवा के झोंको से पीछे हटता हुआ, कभी भँवर में पड़कर चक्कर खाता हुआ। उसमे स्थिरता न थी, संयम न था, इच्छा न थी। उसकी सेवा में भी दम्भ था, प्रमाद था, द्वेष था। उसने दम्भ मे सुखदा की उपेक्षा की। उस विलासिनी के जीवन में जो सत्य

था, उस तक पहुँचने का उद्योग न करके वह उसे त्याग बैठा। उद्योग करत भी क्या ? तब उसे इस उद्योग का ज्ञान भी न था। प्रत्यक्ष ने उसकी भीतर वाली आँखों पर परदा डाल रखा था। इसी प्रमाद में उसने सकीना से प्रेम का स्वाँग किया। क्या उस उन्माद में लेशमात्र भी प्रेम की भावना थी ! उस समय मालूम होता था, वह प्रेम में रत हो गया है, अपना सर्वस्व उस पर अर्पण किये देता है, पर आज उस प्रेम मे लिप्सा के सिवा और उसे कुछ न दिखाई देता था। लिप्सा ही न थी, नीचता भी थी। उसने उस सरला रमणी की हीनावस्था से अपनी लिप्सा शान्त करनी चाही थी। फिर मुन्नी उसके जीवन में आई, निराशाओं से भग्न, कामनाओं से भरी हुई। उस देवी से उसने कितना कपट-व्यवहार किया। यह सत्य है कि उसके व्यवहार में कामुकता न थी। वह इसी विचार से अपने मन को समझा लिया करता था, लेकिन अब आत्म-निरीक्षण करने पर उसे स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि उस विनोद मे भी, उस अनुराग में भी, कामुकता का समावेश था। तो क्या वह वास्तव में कामुक है ? इसका जो उत्तर उसने स्वयं अपने अन्तःकरण से पाया, वह किसी तरह श्रेयस्कर न था। उसने सुखदा को विलासिता का दोष लगाया, पर वह स्वयं उससे कहीं कुत्सित, कहीं विषय-पूर्ण विलासिता में लिप्त था। उसके मन में प्रबल इच्छा हुई कि दोनो रमणियों के चरणों पर सिर रखकर रोये और कहे—देवियो, मैंने तुम्हारे साथ छल किया है, तुम्हें दग़ा दी है। मै नीच हूँ, अधम हूँ, मुझे जो सज़ा चाहे दो, यह मस्तक तुम्हारे चरणों पर है।

पिता के प्रति भी अमरकान्त के मन मे श्रद्धा का भाव उदय हुआ। जिसे उसने माया का दास और लोभ का कीडा समझ लिया था, जिसे वह किसी प्रकार के त्याग के अयोग्य समझता था, वह आज देवत्व के ऊँचे सिंहासन पर बैठा हुआ था। प्रत्यक्ष के नशे मे उसने किसी न्यायी, दयालु ईश्वर की सत्ता को कभी स्वीकार न किया था, पर इन चमत्कारों को देखकर अब उसमें विश्वास और निष्ठा का जैसे एक सागर-सा उमड पडा था। उसे अपने छोटे-छोटे व्यवहारों में भी ईश्वरीय इच्छा का आभास होता था। जीवन में अब नया उत्साह था, नया आनन्द था, नई जाग्रति थी। हर्षमय आशा से

उसका रोम-रोम स्पंदित होने लगा। भविष्य उसके लिए अन्धकारमय न था। दैवी इच्छा मे अन्धकार कहाँ।

सन्ध्या का समय था। अमरकान्त परेड मे खडा था, कि उसने सलीम को आते देखा। सलीम के चरित्र में जो कायापलट हुई थी, उसकी उसे ख़बर मिल चुकी थी, पर यहाँ तक नौबत पहुँच चुकी है, इसका उसे गुमान भी न था। वह दौड कर सलीम के गले लिपट गया और बोला—तुम ख़ूब आये दोस्त, अब मुझे यक़ीन आ गया कि ईश्वर हमारे साथ है। सुखदा भी तो यहीं है, ज़नाने जेल में मुन्नी भी आ पहुँची। तुम्हारी कसर थी, वह पूरी हो गई। मैं दिल में समझ रहा था, तुम भी एक-न-एक दिन आओगे, पर इतनी जल्द आओगे, यह उम्मीद न थी। वहाँ की ताज़ी ख़बरें सुनाओ। कोई हंगामा तो नहीं हुआ?

सलीम ने व्यंग से कहा—जी नहीं, ज़रा भी नहीं। हंगामे की कोई बात भी हो। लोग मजे से खा रहे हैं और फाग गा रहे हैं। आप यहाँ आराम से बैठे हुए हैं न।

उसने थोड़े-से शब्दों में वहाँ की सारी परिस्थिति कह सुनाई—मवेशियों का कुर्क किया जाना, क़साइयों का आना, अहीरों के मुहाल में गोलियों का चलना। घोष को पटक कर मारने की कथा उसने विशेष रुचि से कही।

अमरकान्त का मुँह लटक गया—तुमने सरासर नादानी की।

'और आप क्या समझते थे, कोई पंचायत है जहाँ शराब और हुक्के के साथ सारा फ़ैसला हो जायगा?'

'मगर फ़रियाद तो इस तरह की नहीं की जाती।'

'हमने तो कोई रिआयत नहीं चाही थी।'

'रिआयत तो थी ही। जब तुमने एक शर्त पर ज़मीन ली, तो इन्साफ़ यह कहता है कि वह शर्त पूरी करो। पैदावार की शर्त पर किसानों ने ज़मीन नहीं जोती थी; बल्कि सालाना लगान की शर्त पर। ज़मींदार या सरकार को पैदावार की कमी-बेशी से कोई सरोकार नहीं है।'

'जब पैदावार के मँहगे हो जाने पर लगान बढा दिया जाता है, तो कोई

वजह नहीं कि पैदावार के सस्ते हो जाने पर घटा न दिया जाय। मन्दी तेजी का लगान वसूल करना सरासर बेइन्साफी है।'

'मगर लगान लाठी के ज़ोर से तो नहीं बढ़ाया जाता। उसके लिए भी क़ानून है!'

सलीम को विस्मय हो रहा था, ऐसी भयानक परिस्थिति सुन कर भी अ इतना शान्त कैसे बैठा हुआ है। इसी दशा में उसने यह ख़बरें सुनी होतीं, शायद उसका ख़ून खौल उठता और वह आपे से बाहर हो जाता। अवश्य अमर जेल में आकर दब गया है।' ऐसी दशा मे उसने उन तैयारियों को उ छिपाना ही उचित समझा, जो आज-कल दमन का मुक़ाबला करने के लिए जा रही थी।

अमर उसके जवाब की प्रतीक्षा कर रहा था। जब सलीम ने कोई जव न दिया, तो उसने पूछा—तो आजकल वहाँ कौन है? स्वामीजी हैं!

सलीम ने सकुचाते हुए कहा—स्वामीजी तो शायद पकड़े गये। मेरे व ही वहाँ सकीना पहुँच गई।

'अच्छा! सकीना भी परदे से निकल आई। मुझे तो उससे ऐसी उम्मी न थी।'

'तो क्या तुमने समझा था कि आग लगाकर तुम उसे एक दायरे के अन् रोक लोगे!'

अमर ने चिन्तित होकर कहा—मैंने तो यही समझा था कि हमने हिसाभा को लगाम दे दी है और वह क़ाबू से बाहर नहीं हो सकता।

'आप आजादी चाहते हैं, मगर उसकी क़ीमत नहीं देना चाहते।'

'आपने जिस चीज़ को आज़ादी की क़ीमत समझ रखा है, वह उसकी क़ीम नहीं है। उसकी क़ीमत है—हक़ और सचाई पर जमे रहने की ताक़त।'

सलीम उत्तेजित हो गया—यह फ़ज़ूल की बात है। जिस चीज की बुनि याद जब्र पर है, उस पर हक़ और इन्साफ़ का कोई असर नहीं पड़ सकता।

अमर ने पूछा—क्या तुम इसे तसलीम नहीं करते कि दुनिया का इन्तज़ा हक़ और इन्साफ़ पर क़ायम है और हरेक इंसान में दिल की गहराइयों के अन्द तार मौजूद है, जो क़ुरबानियों से झंकार उठता है?

सलीम ने कहा—नहीं मैं इसे तसलीम नहीं करता। दुनिया का इन्तज़ाम ख़ुदग़रजी और ज़ोर पर क़ायम है और ऐसे बहुत कम इंसान हैं जिनके दिल की गहराइयों के अन्दर वह तार मौजूद हो।

अमर ने मुसकराकर कहा—तुम तो सरकार के ख़ैरख़्वाह नौकर थे। तुम जेल में कैसे आ गये?

सलीम हँसा—तुम्हारे इश्क़ में।

'दादा को किसका इश्क़ था?

'अपने बेटे का।'

'और सुखदा को?'

'अपने शौहर का।'

'और सकीना को? और मुन्नी को? और इन सैकड़ों आदमियों को, जो तरह-तरह की सख़्तियाँ झेल रहे हैं?'

'अच्छा मान लिया कि कुछ लोगों के दिल की गहराइयों के अन्दर यह तार है, मगर ऐसे आदमी कितने हैं?'

'मैं कहता हूँ, ऐसा आदमी नहीं जिसके अन्दर हमदर्दी का तार न हो। हाँ, किसी पर जल्द असर होता है, किसी पर देर में और कुछ ऐसे गरज़ के बन्दे भी हैं, जिन पर शायद कभी न हो।'

सलीम ने हारकर कहा—तो आख़िर तुम चाहते क्या हो? लगान हम दे नहीं सकते। वह लोग कहते हैं, हम लेकर छोड़ेंगे। तो क्या करें? अपना सब कुछ कुर्क हो जाने दें? अगर हम कुछ कहते हैं, तो हमारे ऊपर गोलियाँ चलती हैं। नहीं बोलते, तो तबाह हो जाते हैं। फिर दूसरा कौन-सा रास्ता है? हम जितना ही दबते जाते हैं। उतना वह लोग शेर हो जाते हैं। मरनेवाला बेशक दिलों में रहम पैदा कर सकता है, लेकिन मारनेवाला ख़ौफ पैदा कर सकता है, जो रहम से कहीं ज़्यादा असर डालनेवाली चीज़ है।

अमर ने इस प्रश्न पर महीनों विचार किया था। वह मानता था, संसार में पशुबल का प्रभुत्व है; किन्तु पशुबल को भी न्यायबल की शरण लेनी पड़ती है। आज बलवान से बलवान राष्ट्र में भी यह साहस नहीं है, कि वह किसी निर्बल राष्ट्र पर खुल्लम-खुल्ला यह कहकर हमला करे, कि 'हम तुम्हारे ऊपर राज

करना चाहते हैं, इसलिए तुम हमारे अधीन हो जाओ।' उसे अपने पक्ष को न्याय-संगत दिखाने के लिए कोई न कोई बहाना तलाश करना पड़ता है। बोला—अगर तुम्हारा ख़याल है, कि ख़ून और क़त्ल से किसी क़ौम की नजात हो सकती है, तो तुम सख्त ग़लती पर हो। मैं इसे नजात नहीं कहता, कि एक जमाअत के हाथों से ताक़त निकलकर दूसरी जमाअत के हाथों में आ जाय और वह भी तलवार के ज़ोर से राज करे। मै नजात उसे कहता हूँ, कि इसान मे इंसानियत आ जाय और इंसानियत की जब्र, बेइसाफी और ख़ुदग़रजी से दुश्मनी है।

सलीम को यह कथन तत्त्वहीन मालूम हुआ। मुँह बनाकर बोला—हुज़ूर को मालूम रहे, कि दुनिया में फ़रिश्ते नहीं बसते, आदमी बसते हैं।

अमर ने शान्त-शीतल हृदय से जवाब दिया—लेकिन क्या तुम देख नहीं रहे हो कि हमारी इसानियत सदियों तक ख़ून और क़त्ल मे डूबे रहने के बाद अब सच्चे रास्ते पर आ रही है। उसमें यह ताक़त कहाँ से आई? उसमें खुद वह दैवी शक्ति मौजूद है। उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। बड़ी से बडी फौजी ताक़त भी उसे कुचल नहीं सकती, जैसे सूखी ज़मीन में घास की जड़ें पड़ी रहती हैं और ऐसा मालूम होता है कि ज़मीन साफ हो गई, लेकिन पानी के छींटे पडते ही वह जड़े पनप उठती हैं, हरियाली से सारा मैदान लहराने लगता है, उसी तरह इस कलों और हथियारो और खुदगरज़ियो के ज़माने में भी हममें वह दैवी शक्ति छिपी हुई अपना काम कर रही है। अब वह जमाना आ गया है, जब हक़ की आवाज़ तलवार की झङ्कार या तोप की गरज से ज्यादा कारगर होगी। बडी-बडी क़ौमे अपनी-अपनी फ़ौजी और जहाज़ी ताक़तें घटा रही हैं। क्या तुम्हें इससे आनेवाले ज़माने का कुछ अन्दाज नहीं होता? हम इसलिए गुलाम हैं कि हमने खुद गुलामी की बेडियाँ अपने पैरो में डाल ली हैं। जानते हो यह बेड़ी क्या है? आपस का भेद। जब तक हम इस बेड़ी को काटकर प्रेम करना न सीखेंगे, सेवा मे ईश्वर का रूप न देखेंगे, हम गुलामी में पड़े रहेंगे। मैं यह नहीं कहता कि जब तक भारत का हरेक व्यक्ति इतना बेदार न हो जायगा, तब तक हमारी नजात न होगी। ऐसा तो शायद कभी न हो; पर कम से कम उन लोगों के अन्दर तो यह रोशनी आनी ही चाहिये, जो क़ौम के सिपाही बनते

है। पर हममें कितने ऐसे हैं, जिन्होंने अपने दिल को प्रेम से रोशन किया हो? हममे अब भी वही ऊँच-नीच का भाव है, वही स्वार्थलिप्सा है, वही अहंकार है।

बाहर ठंड पड़ने लगी थी। दोनो मित्र अपनी-अपनी कोठरियों मे गये। सलीम जवाब देने के लिए उतावला हो रहा था, पर वार्डर ने जल्दी की और उन्हे उठना पड़ा।

दरवाज़ा बन्द हो गया, तो अमरकान्त ने एक लम्बी साँस ली और फरियादी आँखों से छत की तरफ देखा। उसके सिर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है। उसके हाथ कितने बेगुनाहों के ख़ून से रँगे हुए हैं! कितने यतीम बच्चे और अबला विधवाएँ उसका दामन पकड़कर खींच रही हैं। उसने क्यों इतनी जल्दबाज़ी से काम लिया? क्या किसानों की फ़रियाद के लिए यही एक साधन रह गया था? और किसी तरह फरियाद की आवाज नहीं उठाई जा सकती थी? क्या यह इलाज बीमारी से ज्यादा असाध्य नहीं है? इन प्रश्नों ने अमरकान्त को पथभ्रष्ट-सा कर दिया। इस मानसिक संकट में काले ख़ाँ की प्रतिमा उसके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसे आभास हुआ कि वह उससे कह रही है—ईश्वर की शरण में जा। वहीं तुझे प्रकाश मिलेगा।

अमरकान्त ने वहीं भूमि पर मस्तक रखकर शुद्ध अन्तःकरण से अपने कर्तव्य की जिज्ञासा की—भगवन्, मैं अन्धकार मे पड़ा हुआ हूँ। मुझे सीधा मार्ग दिखाइये।

और इस शान्त, दीन प्रार्थना मे उसको ऐसी शान्ति मिली, मानो उसके सामने कोई प्रकाश आ गया है और उसकी फैली हुई रोशनी मे चिकना रास्ता साफ नज़र आ रहा है।






ठानिन की गिरफ्तारी ने शहर मे ऐसी हलचल मचा दी, जैसी किसी को आशा न थी। जीर्ण वृद्धावस्था में इस कठोर तपस्या ने मृतको में भी जीवन डाल दिया। भीरु और स्वार्थ सेवियो को भी कर्मक्षेत्र मे ला खडा किया ; लेकिन ऐसे निर्लज्जों की अब भी कमी न थी, जो कहते थे—इसके लिए जीवन में अब क्या धरा है। मरना ही तो है। बाहर न मरी, जेल मे मरी। हमें तो अभी बहुत दिन जीना है, बहुत कुछ करना है, हम आग में कैसे कूदें।

सन्ध्या का समय है। मज़दूर अपने-अपने काम छोड़कर, छोटे दूकानदार अपनी-अपनी दूकानें बन्द करके, घटना-स्थल की ओर भागे चले जा रहे हैं। पठानिन अब वहाँ नहीं है, जेल पहुँच गई होगी। हथियारबन्द पुलीस का पहरा है, कोई जलसा नहीं हो सकता, कोई भाषण नहीं हो सकता, बहुत से आदमियो का जमा होना भी ख़तरनाक है, पर इस समय कोई कुछ नहीं सोचता, किसी को कुछ दिखाई नहीं देता। सब किसी वेगमय प्रवाह में बहे जा रहे हैं। एक क्षण में सारा मैदान जन-समूह से भर गया।

सहसा लोगों ने देखा, एक आदमी ईंटों के एक ढेर पर खडा कुछ कह रहा है। चारों ओर से दौड-दौड़कर लोग वहाँ जमा हो गये—जन-समूह का एक विराट् सागर उमडा हुआ था। यह आदमी कौन है? लाला समरकान्त! जिसकी बहू जेल में है, जिसका लड़का जेल में है।

'अच्छा, यह लाला हैं! भगवान बुद्धि दे, तो इस तरह। पाप से जो कुछ कमाया, वह पुन में लुटा रहे हैं।'

'है बड़ा भागवान।'

'भागवान न होता, तो बुढापे में इतना जस कैसे कमाता!'

'सुनो, सुनो!'

'वह दिन आयेगा, जब इसी जगह गरीबो के घर बनेंगे और जहाँ हमारी

माता गिरफ़्तार हुई है, वहीं एक चौक बनेगा और उस चौक के बीच में माता की प्रतिमा खड़ी की जायगी। बोलो माता पठानिन की जय!'

दस हज़ार गलों से 'माता की जय!' की ध्वनि निकलती है, विकल, उत्तप्त, गंभीर, मानो ग़रीबों की हाय संसार में कोई आश्रय न पाकर आकाशवासियों से फरियाद कर रही है।

'सुनो, सुनो!'

'माता ने अपने बालकों के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया। हमारे और आपके भी बालक हैं। हम और आप अपने बालकों के लिए क्या करना चाहते हैं, आज इसका निश्चय करना होगा।'

शोर मचता है, हड़ताल, हड़ताल!

'हाँ हड़ताल कीजिये; मगर वह हड़ताल, एक या दो दिन की न होगी, वह उस वक़्त तक रहेगी, जब तक हमारे नगर के विधाता हमारी आवाज़ न सुनेंगे। हम ग़रीब हैं, दीन हैं, दुखी हैं, लेकिन बड़े आदमी अगर ज़रा शान्त-चित्त होकर ध्यान करेंगे, तो उन्हें मालूम हो जायगा कि इन्हीं दीन-दुखी प्राणियों ही ने उन्हें बड़े आदमी बना दिया है। ये बड़े-बड़े महल जान हथेली पर रखकर कौन बनाता है? इन कपड़े के मिलों में कौन काम करता है? प्रातःकाल द्वार पर दूध और मक्खन लेकर कौन आवाज़ देता है? मिठाइयाँ और फल लेकर कौन बड़े आदमियों के नाश्ते के समय पहुँचता है? सफ़ाई कौन करता है, कपड़े कौन धोता है? सवेरे अख़बार और चिट्ठियाँ लेकर कौन पहुँचाता है? शहर के तीन चौथाई आदमी एक चौथाई के लिए अपना रक्त जला रहे हैं। इसका प्रसाद यही मिलता है कि उन्हें रहने के लिए स्थान नहीं! एक बँगले के लिए कई बीघे ज़मीन चाहिये। हमारे बड़े आदमी साफ़-सुथरी हवा और खुली हुई जगह चाहते हैं। उन्हें यह ख़बर नहीं है कि जहाँ असंख्य प्राणी दुर्गंध और अन्धकार में पड़े भयङ्कर रोगों से मर-मरकर रोग के कीड़े फैला रहे हों, वहाँ खुले हुए बँगले में रहकर भी वह सुरक्षित नहीं हैं। यह किसकी ज़िम्मेदारी है कि शहर के छोटे-बड़े अमीर-ग़रीब सभी आदमी स्वस्थ रह सकें? अगर म्युनिसिपैलिटी इस प्रधान कर्तव्य को नहीं पूरा कर सकती, तो उसे तोड़ देना चाहिये। रईसों और अमीरों की कोठियों के लिए, बग़ीचों

के लिए, महलों के लिए क्यों इतनी उदारता से ज़मीन दे दी जाती है ? इस लिए कि हमारी म्युनिसिपैलिटी ग़रीबों की जान का कोई मूल्य नहीं समझती उसे रुपए चाहियें, इसलिए कि बड़े-बड़े अधिकारियों को बड़ी-बड़ी तलब दं जाय। वह शहर को विशाल भवनों से अलंकृत कर देना चाहती है, उं स्वर्ग की तरह सुन्दर बना देना चाहती है, पर जहाँ की अँधेरी दुर्गंधपू गलियों में जनता पड़ी कराह रही हो, वहाँ इन विशाल भवनों से क्या होगा यह तो वही बात है, कि कोई देह के कोढ़ को रेशमी वस्त्रों से छिपा कर इठलात फिरे। सज्जनो! अन्याय करना जितना बड़ा पाप है, उतना ही बड़ा पा अन्याय सहना भी है। आज निश्चय कर लो कि तुम यह दुर्दशा न सहोगे यह महल और बँगले नगर की दुर्बल देह पर छाले हैं, मसवृद्धि हैं। इन मस वृक्षों को काट कर फेंकना होगा। जिस ज़मीन पर हम खड़े हैं, यहाँ कम ं कम दो हज़ार छोटे-छोटे सुन्दर घर बन सकते हैं, जिनमें कम से कम दस हज़ा प्राणी आराम से रह सकते हैं। मगर यह सारी ज़मीन चार-पाँच बँगलों ं लिए बेची जा रही है। म्युनिसिपैलिटी को दस लाख रुपए मिल रहे हैं इसे वह कैसे छोड़े ! शहर के दस हज़ार मज़दूरों की जान दस लाख के बराबं भी नहीं !'

एकाएक पीछे के आदमियों ने शोर मचाया—पुलीस ! पुलीस आ गई !

कुछ लोग भागे, कुछ लोग सिमट कर और आगे बढ़ आये।

लाला समरकान्त बोले—भागो मत, भागो मत, पुलीस मुझे गिरफ्ता करेगी। मैं उसका अपराधी हूँ। और मैं ही क्यों, मेरा सारा घर उसक अपराधी है। मेरा लड़का जेल में है, मेरी बहू और पोता जेल में हैं। मे लिए अब जेल के सिवा और कहाँ ठिकाना है। मैं तो जाता हूँ। (पुली से) वहीं ठहरिये साहब, मैं ख़ुद आ रहा हूँ। मैं तो जाता हूँ, मगर यह कं जाता हूँ कि अगर लौट कर मैंने यहाँ अपने ग़रीब भाइयों के घरों की पाँतिय फूलों की क्यारियों की भाँति लहलहाती न देखीं, तो यहीं मेरी चिता बनेगी।

लाला समरकान्त कूद कर ईंटों के टीले से नीचे आये और भीड़ को चीरं हुए जाकर पुलीस कप्तान के पास खड़े हो गये। लारी तैयार थी, कप्तान ं लारी में बैठाया। लारी चल दी।

'लाला समरकान्त की जय !' की गहरी, हार्दिक वेदना से भरी हुई ध्वनि किसी बँधुए पशु की भाँति तड़पती, छटपटाती ऊपर को उठी, मानो परवशता के बन्धन को तोड़कर निकल जाना चाहती हो।

एक समूह लारी के पीछे दौड़ा ; अपने नेता को छुड़ाने के लिए नहीं, केवल श्रद्धा के आवेश में, मानो कोई आशीर्वाद पाने की सरल उमङ्ग में। जब लारी गर्द में लुप्त हो गई, तो लोग लौट पड़े।

'यह कौन खड़ा बोल रहा है ?'

'कोई औरत जान पड़ती है।'

'कोई भले घर की औरत है।'

'अरे यह तो वही है, लालाजी की समधिन, रेनुका देवी।'

'अच्छा ! जिन्होंने पाठशाले के नाम अपनी सारी जमा-जथा लिख दी ?'

'सुनो ! सुनो !'

'प्यारे भाइयो, लाला समरकान्त जैसा योगी जिस सुख के लोभ से चलायमान हो गया, वह कोई बड़ा भारी सुख होगा ; फिर मैं तो औरत हूँ, और औरत लोभिन होती ही है। आपके शास्त्र-पुराण सब यही कहते हैं। फिर मैं उस लोभ को कैसे रोकूँ। मैं धनवान् की बहू, धनवान् की स्त्री, भोगविलास में लिप्त रहनेवाली, भजन-भाव में मगन रहनेवाली, मैं क्या जानूँ गरीबों को क्या कष्ट है, उन पर क्या बीतती है, लेकिन इस नगर ने मेरी लड़की छीन ली, मेरी जायदाद भी छीन ली, और अब मैं भी तुम लोगों ही की तरह गरीब हूँ। अब मुझे इस विश्वनाथ की पुरी में एक झोंपड़ा बनवाने को लालसा है। आपको छोड़कर मैं और किसके पास माँगने जाऊँ। यह नगर तुम्हारा है। इसकी एक-एक अंगुल जमीन तुम्हारी है। तुम्हीं इसके राजा हो। मगर सच्चे राजा की भाँति तुम भी त्यागी हो। राजा हरिश्चन्द्र की भाँति अपना सर्वस्व दूसरों को देकर, भिखारियों को अमीर बनाकर, तुम आप भिखारी हो गये हो। जानते हो वह छल से खोया हुआ राज्य तुमको कैसे मिलेगा ? तुम डोम के हाथों बिक चुके। अब तुम्हें अपने रोहितास और सैविया को त्यागना पड़ेगा। तभी देवता तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे। मेरा मन कह रहा है कि देवताओं में तुम्हारा राज दिलाने की बातचीत हो रही है। आज नहीं तो कल तुम्हारा राज

तुम्हारे अधिकार मे आ जायगा। उस वक्त मुझे भूल न जाना। मै तुम्हारे दरबार मे अपना प्रार्थना-पत्र पेश किये जा रही हूँ।'

सहसा पीछे शोर मचा—फिर पुलीस आ गई।

'आने दो। उनका काम है अपराधियो को पकडना। हम अपराधी है। गिरफ्तार न कर लिये गये, तो आज नगर में डाका मारेंगे, चोरी करेंगे, या कोई षड्यन्त्र रचेंगे। मै कहती हूँ, कोई संस्था जो जनता पर न्यायबल से नहीं, पशुबल से शासन करती है, वह लुटेरों की संस्था है। जो लोग ग़रीबो का हक़ लूटकर ख़ुद मालदार हो रहे हैं, दूसरों के अधिकार छीनकर अधिकारी बने हुए हैं, वास्तव में वही लुटेरे हैं। भाइयो, मैं तो जाती हूँ, मगर मेरा प्रार्थना-पत्र आपके सामने है। इस लुटेरी म्युनिसिपैलिटी को ऐसा सबक़ दो कि फिर उसे ग़रीबो को कुचलने का साहस न हो। जो तुम्हे रौंदे, उसके पाँव में काँटे बन-कर चुभ जाओ। कल से ऐसी हडताल करो कि धनियों और अधिकारियों को तुम्हारी शक्ति का अनुभव हो जाय, उन्हे विदित हो जाय कि तुम्हारे सहयोग के बिना वे न धन को भोग सकते हैं, न अधिकार को। उन्हें दिखा दो कि तुम्हीं उनके हाथ हो, तुम्हीं उनके पाँव हो, तुम्हारे बग़ैर वे अपंग हैं।'

वह टीले से नीचे उतरकर पुलीस कर्मचारियों की ओर चली तो सारा जन-समूह, हृदय में उमडकर आँखों मे रुक जानेवाले आँसुओं की भाँति, उसकी ओर ताकता रह गया। बाहर निकलकर मर्यादा का उल्लंघन कैसे करे। वीरों के आँसू बाहर निकलकर सूखते नहीं, वृक्षो के रस की भाँति भीतर ही रहकर वृक्ष को पल्लवित और पुष्पित कर देते हैं। इतने बड़े समूह मे एक कंठ से भी जय-घोष नहीं निकला। क्रिया-शक्ति अन्तर्मुखी हो गई थी, मगर जब रेणुका मोटर में बैठ गई और मोटर चली, तो श्रद्धा की वह लहर मर्यादाओं को तोडकर एक पतली, गहरी वेगमयी धारा में निकल पड़ी।

एक बूढ़े आदमी ने डाटकर कहा—जय-जय बहुत कर चुके। अब घर जाकर आटा-दाल जमा कर लो। कल से लम्बी हड़ताल करनी है।

दूसरे आदमी ने इसका समर्थन किया—और क्या। यह नहीं कि यहाँ तो गला फाड़-फाड़ चिल्लाये और सबेरा होते ही अपने-अपने काम पर

'अच्छा, यह कौन खड़ा हो गया ?'

'वाह, इतना भी नहीं पहचानते। डाक्टर साहब हैं।'

'डाक्टर साहब भी आ गये। तब तो फतह है।'

'कैसे-कैसे सरीफ आदमी हमारी तरफ से लड रहे हैं। पूछो, इन बेचारों को क्या लेना है, जो अपना सुख-चैन छोडकर, अपने बराबरवालों से दुश्मनी मोल लेकर, जान हथेली पर लिये तैयार हैं।'

'हमारे ऊपर अल्लाह का रहम है। इन डाक्टर साहब ने पिछले दिनों जब प्लेग फैला था, ग़रीबों की ऐसी ख़िदमत की कि वाह! जिसके पास अपने भाई-बन्द तक न खड़े होते थे, वहाँ बेधडक चले जाते थे और दवा-दारू, रुपया-पैसा, सब तरह की मदद तैयार। हमारे हाफ़िज़जी तो कहते थे, यह अल्लाह का फरिश्ता है।'

'सुनो, सुनो, बकवास करने को रात भर पडी है।'

'भाइयो! पिछली बार जब आपने हड़ताल की थी, उसका क्या नतीजा हुआ? अगर फिर वैसी ही हड़ताल हुई, तो उससे अपना ही नुक़सान होगा। हममें से कुछ लोग चुन लिये जायँगे, बाक़ी आदमी मतभेद हो जाने के कारण आपस में लडते रहेंगे और असली उद्देश्य की किसी को सुधि न रहेगी। सर-ग़नों के हटते ही पुरानी अदावतें निकाली जाने लगेंगी, गडे मुरदे उखाड़े जाने लगेंगे, न कोई संगठन रह जायगा, न कोई ज़िम्मेदारी। सभी पर आतंक छा जायगा, इसलिए अपने दिल को टटोलकर देख लो। अगर उसमें कच्चापन हो, तो हड़ताल का विचार दिल से निकाल डालो। ऐसी हडताल से दुर्गन्ध और गन्दगी में मरते जाना कहीं अच्छा है। अगर तुम्हे विश्वास हो कि तुम्हारा दिल भीतर से मज़बूत है, उसमे हानि सहने की, भूखों मरने की, कष्ट झेलने की सामर्थ्य है, तो हडताल करो, प्रतिज्ञा कर लो कि जब तक हडताल रहेगी, तुम अदावतें भूल जाओगे, नफ़े-नुक़सान की परवाह न करोगे। तुमने कबड्डी तो खेली ही होगी। कबड्डी में अक्सर ऐसा होता है कि एक तरफ के सब गुइयें मर जाते हैं। केवल एक खिलाडी रह जाता है, मगर वह एक खिलाड़ी भी उसी तरह क़ानून-क़ायदे से खेलता चला जाता है। उसे अन्त तक आशा बनी रहती है कि वह अपने मरे गुइयों को जिला लेगा और सब के सब फिर पूरी

शक्ति से बाज़ी जीतने का उद्योग करेंगे। हरेक खिलाड़ी का एक ही उद्देश्य होता है—पाला जीतना। इसके सिवा उस समय उसके मन में कोई भाव नहीं होता। किस गुइयाँ ने उसे कब गाली दी थी, कब उसका कनकौआ फाड डाला था, या कब उसको घूँसा मारकर भागा था, इसकी उसे ज़रा भी याद नहीं आती। उसी तरह इस समय तुम्हे अपना मन बनाना पड़ेगा। मैं यह दावा नहीं करता कि तुम्हारी जीत ही होगी। जीत भी हो सकती है, हार भी हो सकती है। जीत या हार से हमें प्रयोजन नहीं। भूखा बालक भूख से विकल होकर रोता है। वह यह नहीं सोचता कि रोने से उसे भोजन मिल ही जायगा। सम्भव है मा के पास पैसे न हों, या उसका जी अच्छा न हो; लेकिन बालक का स्वभाव है कि भूख लगने पर रोये, इसी तरह हम भी रो रहे हैं। हम रोते रोते थककर सो जायँगे, या माता वात्सल्य से विवश होकर हमें भोजन दे देगी, यह कौन जानता है। हमारा किसी से वैर नहीं, हम तो समाज के सेवक हैं, हम वैर करना क्या जाने ..'

उधर पुलिस-कप्तान थानेदार को डाँट रहा था—जल्द लारी मँगवाओ। तुम बोलता था अब कोई आदमी नहीं है। अब यह कहाँ से निकल आया!

थानेदार ने मुँह लटकाकर कहा—हुजूर यह डाक्टर साहब तो आज पहली ही बार आये हैं। इनकी तरफ़ तो हमारा गुमान भी नहीं था। कहिये तो गिरफ्तार करके ताँगे पर ले चलूँ।

'ताँगे पर! सब आदमी ताँगे को घेर लेगा। हमें फ़ायर करना पड़ेगा। जल्दी दौड़कर कोई टैक्सी लाओ।'

डाक्टर शान्तिकुमार कह रहे थे—

'हमारा किसी से वैर नहीं है। जिस समाज में ग़रीबों के लिए स्थान नहीं, वह उस घर की तरह है, जिसकी बुनियाद न हो। कोई हलका-सा धक्का भी उसे ज़मीन पर गिरा सकता है। मैं अपने धनवान् और विद्वान् और सामर्थ्यवान भाइयों से पूछता हूँ, क्या यही न्याय है, कि एक भाई तो बँगले में रहे, दूसरे को झोपड़ा भी नसीब न हो! क्या तुम्हें अपने ही जैसे मनुष्यों को इस दुर्दशा में देखकर शर्म नहीं आती! तुम कहोगे, हमने बुद्धिबल से धन कमाया क्यों न उसका भोग करें। इस बुद्धि का नाम स्वार्थ-बुद्धि है, और सब

समाज का सञ्चालन स्वार्थ-बुद्धि के हाथ मे आ जाता है, न्याय-बुद्धि गद्दी से उतार दी जाती है, तो समझ लो कि समाज में कोई विप्लव 'होनेवाला है। गरमी बढ़ जाती है, तो तुरन्त ही आँधी आती है। मानवता हमेशा कुचली नहीं जा सकती। समता जीवन का तत्त्व है। यही एक दशा है, जो समाज को स्थिर रख सकती है। थोड़े-से धनवानों को हरगिज़ यह अधिकार नहीं है, कि वे जनता की ईश्वर-दत्त वायु और प्रकाश का अपहरण करें। यह विशाल जन-समूह उसी अनधिकार, उसी अन्याय का रोषमय रुदन है। अगर धनवानों की आँखें अब भी नहीं खुलतीं, तो उन्हें पछताना पड़ेगा। यह जाग्रति का युग है। जाग्रति अन्याय का सहन नहीं कर सकती। जागे हुए आदमी के घर में चोर और डाकू की गति नहीं...'

इतने में टैक्सी आ गई। पुलिस कप्तान कई थानेदारों और कांसटेबलों के साथ समूह की तरफ़ चला।

थानेदार ने पुकारकर कहा—डाक्टर साहब, आपका भाषण तो समाप्त हो चुका होगा। अब चले आइये। हमे क्यों वहाँ आना पड़े।

शान्तिकुमार ने ईंट-मंच पर खड़े-खड़े कहा—मै अपनी ख़ुशी से तो गिरफ्तार होने न आऊँगा, आप ज़बरदस्ती गिरफ्तार कर सकते है। और फिर अपने भाषण का सिलसिला जारी कर दिया—

'हमारे धनवानों को किसका बल है? पुलीस का। हम पुलीस ही से पूछते हैं, अपने कांसटेबल भाइयों से हमारा सवाल है, क्या तुम भी गरीब नहीं हो? क्या तुम और तुम्हारे बाल-बच्चे सड़े हुए, अँधेरे, दुर्गन्ध और रोग से भरे हुए बिलों मे नहीं रहते। लेकिन यह ज़माने की ख़ूबी है कि तुम अन्याय की रक्षा करने के लिए, अपने ही बाल-बच्चो का गला घोटने के लिए तैयार खड़े हो...'

कप्तान ने भीड़ के अन्दर जाकर शान्तिकुमार का हाथ पकड़ लिया और उन्हे साथ लिये हुए लौटा। सहसा नैना सामने से आकर खड़ी हो गई।

शान्तिकुमार ने चौककर पूछा—तुम किधर से नैना? सेठजी और देवीजी तो चल दिये। अब मेरी बारी है।

नैना मुसकराकर बोली—और आपके बाद मेरी।

'नहीं, कहीं ऐसा अनर्थ न करना। सब कुछ तुम्हारे ही ऊपर है।'

नैना ने कुछ जवाब न दिया। कप्तान डाक्टर को लिये हुए आगे बढ़ गया। उधर सभा में शोर मचा हुआ था। अब उनका क्या कर्त्तव्य है, इसका निश्चय वह लोग न कर पाते थे। उनकी दशा पिघली हुई धातु की-सी थी। उसे जिस तरफ़ चाहें मोड़ सकते हैं। कोई भी चलता हुआ आदमी उनका नेता बनकर उन्हें जिस तरफ़ चाहे ले जा सकता था—सबसे ज्यादा आसानी के साथ शान्ति-भङ्ग की ओर। चित्त की उस दशा में, जो इन ताबड़-तोड़ गिरफ्तारियों से शान्त-पथ-विमुख हो रहा था, बहुत सम्भव था कि वे पुलीस पर पत्थर फेंकने लगते, या बाज़ार लूटने पर आमादा हो जाते। उसी वक्त नैना उनके सामने जाकर खड़ी हो गई। वह अपनी बग्घी पर सैर करने निकली थी। रास्ते में उसने लाला समरकान्त और रेणुका देवी के पकड़े जाने की ख़बर सुनी। उसने तुरन्त कोचवान को इस मैदान की ओर चलने को कहा, और दौड़ी हुई चली आ रही थी। अब तक उसने अपने पति और ससुर की मर्यादा का पालन किया था। अपनी ओर से कोई ऐसा काम न करना चाहती थी कि ससुरालवालों का दिल दुखे, या उनके असन्तोष का कारण हो; लेकिन यह ख़बर पाकर वह सयत न रह सकी। मनीराम जामे से बाहर हो जायँगे, लाला धनीराम छाती पीटने लगेंगे, उसे ग़म नहीं। कोई उसे रोक ले, तो वह कदाचित् आत्म-हत्या कर बैठे। वह स्वभाव से ही लज्जाशील थी। घर के एकान्त में बैठकर वह चाहे भूखों मर जाती; लेकिन बाहर निकलकर किसी से सवाल करना उसके लिए असाध्य था। रोज जलसे होते थे; लेकिन उसे कभी कुछ भाषण करने का साहस नहीं हुआ। यह नहीं कि उसके पास विचारों का अभाव था, अथवा वह अपने विचारों को व्यक्त न कर सकती थी। नहीं, केवल इसलिए कि जनता के सामने खड़े होने में उसे संकोच होता था। या यों कहो कि भीतर की पुकार कभी इतनी प्रबल न हुई कि मोह और आलस्य के बन्धनों को तोड़ देती। बाज़ ऐसे जानवर भी होते हैं, जिनमें एक विशेष आसन होता है। उन्हें आप मार डालिये; पर आगे क़दम न उठायेंगे। लेकिन उस मार्मिक स्थान पर उँगली रखते ही उनमें एक नया उत्साह, एक नया ...न चमक उठता है। लाला समरकान्त की गिरफ़्तारी ने नैना के हृदय में

उसी मर्मस्थल को स्पर्श कर लिया। वह जीवन में पहली बार जनता के सामने खड़ी हुई, निश्शंक, निश्चल, एक नई प्रतिभा, एक नई प्रांजलता से आभासित। पूर्णिमा के रजत प्रकाश में ईंटों के टीले पर खड़ी जब उसने अपने कोमल किन्तु गहरे कण्ठ-स्वर से जनता को सम्बोधन किया, तो जैसे सारी प्रकृति निःस्तब्ध हो गई।

'सज्जनो, मै लाला समरकान्त की बेटी और लाला धनीराम की बहू हूँ। मेरा प्यारा भाई जेल मे है, मेरी प्यारी भावज जेल मे है, मेरा सोने-सा भतीजा जेल मे है, आज मेरे पिताजी भी वहीं पहुँच गये।'

जनता की ओर से आवाज़ आई—रेनुका देवी भी।

'हाँ, रेनुका देवी भी, जो मेरी माता के तुल्य थीं। लड़की के लिए वही मैका है, जहाँ उसके मा-बाप, भाई-भावज रहें। और लड़की को मैका जितना प्यारा होता है, उतनी ससुराल नहीं होती। सज्जनो, इस जमीन के कई टुकड़े मेरे ससुरजी ने ख़रीदे हैं। मुझे विश्वास है, मै आग्रह करूँ, तो वह यहाँ अमीरों के बँगले न बनवाकर ग़रीबो के घर बनवा देगे; लेकिन हमारा उद्देश्य यह नहीं है। हमारी लड़ाई इस बात पर है कि जिस नगर मे आधे से ज्यादा आबादी गन्दे बिलों में मर रही हो, उसे कोई अधिकार नहीं है कि महलों और बँगलों के लिए ज़मीन बेचे। आपने देखा था, यहाँ कई हरे-भरे गाँव थे। म्युनिसिपैलिटी ने नगर-निर्माण-सघ बनाया। गाँव के किसानों की जमीन कौड़ियो के दाम छीन ली गई, और आज वही ज़मीन अशर्फियो के दाम बिक रही है, इसलिए कि बड़े आदमियो के बँगले बनें। हम अपने नगर के विधाताओं से पूछते हैं, क्या अमीरों ही के जान होती है? गरीबो के जान नहीं होती? अमीरों ही को तन्दुरुस्त रहना चाहिये? ग़रीबों को तन्दुरुस्ती की जरूरत नही? अब जनता इस तरह मरने को तैयार नहीं है। अगर मरना ही है, तो इस मैदान में, खुले आकाश के नीचे, चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में मरना बिलों मे मरने से कहीं अच्छा है, लेकिन पहले हमे नगर-विधाताओं से एक बार और पूछ लेना है, कि वह अब भी हमारा निवेदन स्वीकार करेंगे, या नहीं। अब भी इस सिद्धान्त को मानेंगे, या नहीं। अगर उन्हें घमण्ड हो कि वे हथियार के ज़ोर से ग़रीबो को कुचलकर उनकी आवाज बन्द कर सकते हैं,

तो यह उनकी भूल है। गरीबों का रक्त जहाँ गिरता है, वहाँ हरेक बूँद की जगह एक-एक आदमी उत्पन्न हो जाता है। अगर इस वक्त नगरविधाताओं ने ग़रीबों की आवाज सुन ली, तो उन्हें संत का यश मिलेगा; क्योंकि ग़रीब बहुत दिनों ग़रीब नहीं रहेंगे और वह जमाना दूर नहीं है, जब ग़रीबों के हाथ में शक्ति होगी। विप्लव के जन्तु को छेड़-छेड़कर न जगाओ। उसे जितना ही छेड़ोगे, उतना ही झल्लायेगा और जब वह उठकर जम्हाई लेगा और जोर से दहाड़ेगा, तो फिर तुम्हें भागने की राह न मिलेगी। हमें बोर्ड के मेम्बरों को यही चेतावनी दे देनी है। इस वक्त बहुत ही अच्छा अवसर है। सभी भाई म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर चलें। अब देर न करें, नहीं मेम्बर अपने-अपने घर चले जायँगे। हड़ताल में उपद्रव का भय है, इसलिए हड़ताल उसी हालत में करनी चाहिये, जब और किसी तरह काम न निकल सके।'

नैना ने झण्डा उठा लिया और म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। उसके पीछे बीस-पचीस हज़ार आदमियों का एक सागर-सा उमड़ता हुआ चला। और यह दल मेलों की भीड़ की तरह अश्रृङ्खल नहीं, फौज की क़तारों की तरह शृङ्खलाबद्ध था। आठ-आठ आदमियों की असंख्य पंक्तियाँ गम्भीर भाव से, एक विचार, एक उद्देश्य, एक धारणा की आन्तरिक शक्ति का अनुभव करती हुई चली जा रही थीं, और उनका ताँता न टूटता था, मानो भूगर्भ से निकलती चली आती हों। सड़क के दोनों ओर छज्जों और छतों पर दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। सभी चकित थे। उफ़्फ़ोह! कितने आदमी हैं। अभी चले ही आ रहे हैं!

तब नैना ने यह गीत शुरू कर दिया, जो इस समय बच्चे-बच्चे की जबान पर था—

'हम भी मानव तनधारी हैं ..'

कई हज़ार गलों का संयुक्त, सजीव और व्यापक स्वर गगन में गूँज उठा—

'हम भी मानव तनधारी हैं!'

नैना ने उस पद की पूर्ति की 'क्यों हमको नीच समझते हो?'

कई हज़ार गलों ने साथ दिया—

'क्यों हमको नीच समझते हो?'

नैना—क्यों अपने सच्चे दासों पर ?

जनता—क्यों अपने सच्चे दासों पर ?

नैना—इतना अन्याय बरतते हो !

जनता—इतना अन्याय बरतते हो !

उधर म्युनिसिपल बोर्ड में यही प्रश्न छिडा हुआ था।

हाफिज़ हलीम ने टेलीफ़ोन का चोंगा मेज पर रखते हुए कहा—डाक्टर शान्तिकुमार भी गिरफ्तार हो गये।

मि० सेन ने निर्दयता से कहा—अब इस आन्दोलन की जड कट गई। डाक्टर साहब उसके प्राण थे।

पं० ओंकारनाथ ने चुटकी ली—उस ब्लाक पर अब बँगले न बनेंगे। शगुन कह रहे हैं।

सेन बाबू भी अपने लडके के नाम से उस ब्लाक के एक भाग के ख़रीदार थे। जल उठे—अगर बोर्ड मे अपने पास किये हुए प्रस्तावों पर स्थिर रहने की शक्ति नहीं है, तो उसे इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाना चाहिये।

मि० शफ़ीक़ ने, जो युनिवर्सिटी के प्रोफेसर और डाक्टर शान्तिकुमार के मित्र थे, सेन को आडे हाथों लिया—बोर्ड के फ़ैसले ख़ुदा के फ़ैसले नहीं हैं। उस वक्त बेशक बोर्ड ने उस ब्लाक को छोटे-छोटे प्लाटों में नीलाम करने का फैसला किया था, लेकिन उसका नतीजा क्या हुआ ? आप लोगों ने वहाँ जितना इमारती सामान जमा किया, उसका कहीं पता नहीं है। हज़ार आदमी से ज्यादा रोज रात को वहीं सोता है। मुझे यक़ीन है कि वहाँ काम करने के लिए एक मज़दूर भी राजी न होगा। मैं बोर्ड को ख़बरदार किये देता हूँ कि अगर उसने अपनी पालिसी बदल न दी, तो शहर पर बहुत बडी आफ़त आ जायगी। सेठ समरकान्त और शान्तिकुमार का शरीक होना बतला रहा है कि यह तहरीक बच्चों का खेल नहीं है। उसकी जड बहुत गहरी पहुँच गई है और उसे उखाड फेंकना अब क़रीब-क़रीब ग़ैरमुमकिन है। बोर्ड को अपना फ़ैसला रद करना पडेगा। चाहे अभी करे, या सौ-पचास जानों की नज़र लेकर करे। अब तक का तजरबा तो यही कह रहा है कि बोर्ड की सख्तियों का बिलकुल असर नहीं हुआ, बल्कि उलटा ही असर हुआ। अब जो हडताल होगी, वह

इतनी ख़ौफ़नाक होगी, कि उसके ख़याल से रोंगटे खड़े होते हैं। बोर्ड अपने सिर पर बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी ले रहा है।

मि० हामिदअली कपड़े की मिल के मैनेजर थे। उनकी मिल घाटे पर चल रही थी। डरते थे, कहीं लम्बी हड़ताल हो गई, तो बधिया ही बैठ जायगी। थे तो बेहद मोटे, मगर बेहद मेहनती। बोले—हक को तसलीम करने में बोर्ड को क्यों इतना पसोपेश हो रहा है, यह मेरी समझ में नहीं आता। शायद इसलिए कि उसके ग़रूर को झुकना पड़ेगा; लेकिन हक़ के सामने झुकना कमज़ोरी नहीं, मज़बूती है। अगर आज इसी मसले पर बोर्ड का नया इन्तख़ाब हो, तो मैं दावे से कह सकता हूँ कि बोर्ड का यह रिज़ोल्यूशन हर्फ़ ग़लत की तरह मिट जायगा। बीस-पचीस हज़ार ग़रीब आदमियों की बेहतरी और भलाई के लिए अगर बोर्ड को दस-बारह लाख का नुक़सान उठाना और दस-पाँच मेम्बरों की दिलशिकनी करनी पड़े तो उसे...

फिर टेलीफ़ोन की घंटी बजी। हाफ़िज़ हलीम ने कान लगाकर सुना और बोले—पचीस हज़ार आदमियों की फ़ौज हमारे ऊपर धावा करने आ रही है। लाला समरकान्त की साहबज़ादी और सेठ धनीराम साहब की बहू उसकी लीडर हैं। डी० एस० पी० ने हमारी राय पूछी है, और यह भी कहा है कि फ़ायर किये बग़ैर जुलूस पीछे हटनेवाला नहीं। मैं इस मुआमले में बोर्ड की राय जानना चाहता हूँ। बेहतर है कि वोट ले लिये जायँ। ज़ाबते की पाबन्दियों का मौक़ा नहीं है। आप लोग हाथ उठावें—फ़ॉर ?

बारह हाथ उठे।

'अगेन्स्ट ?'

दस हाथ उठे। लाला धनीराम निउट्रल रहे।

'तो बोर्ड की राय है कि जुलूस को रोका जाय, चाहे फ़ायर करना पड़े।'

सेन बोले—क्या अब भी कोई शक है ?

फिर टेलीफ़ोन की घण्टी बजी। हाफ़िज़जी ने कान लगाया। डी० एस० पी० कह रहा था—बड़ा ग़ज़ब हो गया। अभी लाला मनीराम ने अपनी बीबी को गोली मार दी।

हाफ़िज़जी ने पूछा—क्या बात हुई ?

अभी कुछ मालूम नहीं। शायद मिस्टर मनीराम ग़ुस्से में भरे हुए जुलूस के सामने आये और अपनी बीवी को वहाँ से हट जाने को कहा। लेडी ने इन्कार किया। इस पर कुछ कहा-सुनी हुई। मिस्टर मनीराम के हाथ मे पिस्तल था। फौरन शूट कर दिया। अगर वह भाग न जायँ, तो धज्जियाँ उड जायँ। जलूस अपने लीडर की लाश उठाये फिर म्युनिसिपल बोर्ड की तरफ जा रहा है।'

हाफ़िज़जी ने मेम्बरो को यह खबर सुनाई, तो सारे बोर्ड मे सनसनी दौड गई। मानो किसी जादू से सारी सभा पाषाण हो गई हो।

सहसा लाला धनीराम खडे होकर भर्राई हुई आवाज़ में बोले—सज्जनो, जिस भवन को एक-एक कंकड जोड-जोडकर पचास साल से बना रहा था, वह आज एक क्षण में ढह गया, ऐसा ढह गया कि उसकी नींव का भी पता नहीं। अच्छे-से-अच्छे मसाले दिये, अच्छे-से-अच्छे कारीगर लगाये, अच्छे-से-अच्छे नक़शे बनवाये, भवन तैयार हो गया था, केवल कलस बाक़ी था। उसी वक्त एक तूफान आता है और उस विशाल भवन को इस तरह उड़ा ले जाता है, मानो फूस का ढेर हो। मालूम हुआ कि वह भवन केवल मेरे जीवन का एक स्वप्न था। सुनहरा स्वप्न कहिए, चाहे काला स्वप्न कहिये, पर था स्वप्न ही। वह स्वप्न आज भङ्ग हो गया—भङ्ग हो गया!

यह कहते हुए वह द्वार की ओर चले।

हाफ़िज़ हलीम ने शोक के साथ कहा—सेठजी, मुझे, और मैं उम्मीद करता हूँ कि बोर्ड को आपसे कमाल हमदर्दी है।

सेठजी ने पीछे फिरकर कहा—अगर बोर्ड को मेरे साथ हमदर्दी है, तो इसी वक्त मुझे यह अख्तियार दीजिये, कि जाकर लोगों से कह दूँ, बोर्ड ने तुम्हें वह ज़मीन दे दी; वरना यह आग कितने ही घरों को भस्म कर देगी, कितनों ही के स्वप्नो को भङ्ग कर देगी।

बोर्ड के कई मेम्बर बोले—चलिये, हम लोग भी आपके साथ चलते हैं।

बोर्ड के बीस सभासद उठ खड़े हुए। सेन ने देखा कि वहाँ कुल चार आदमी रहे जाते हैं, तो वह भी उठ पडे, और उनके साथ उनके तीनों मित्र भी उठे। अन्त में हाफ़िज़ हलीम का नम्बर आया।